सिद्ध-नाथ एवं प्रमुख हिन्दी सन्त

- डॉ. प्रमिला झीबा

भारतीय संस्कृति और सभ्यता की सुदृढ़ नींव मानवतावादी एवं मंगलकारी धर्म पर आरूढ़ है। निरन्तर बढ़ते कर्मकाण्डों, ब्राह्माचारों ने ना केवल उसे खोखला बनाया वरन् उसकी नींव तक को हिला कर रख दिया। ऐसे में हमारे आलोच्य सिद्ध-नाथों एवं हिन्दी संतों ने पथ भ्रष्ट समाज को सांस्कृति चैतन्य प्रदान कर मानव धर्म को प्रसारित किया।

प्रस्तुत पुस्तक में निर्गुणमत की चिन्तन पृष्ठभूमि का निदर्शन करते हुए विस्तार-पूर्वक सिद्ध-नाथों के दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक चिन्तन एवं शिल्प विधान को हिन्दी संतों के समग्र चिंतन का ठोस आधार बताते हुए अद्भुत ऐक्य सिद्ध किया गया है। सिद्ध-नाथों के मानसपुत्र परवर्ती हिन्दी संतों ने उनकी कल्याणकारी विचार परम्परा को आत्मसात् कर उसका संवर्धन किया। उन्होंने समाज में व्याप्त कर्मकाण्डों, बाह्याचारों, अंधविश्वासों का खण्डन करके सार्वभौम मानव धर्म का प्रसार किया।

सिद्ध-नाथ एवं प्रमुख हिन्दी सन्त

सिद्ध-नाथ एवं प्रमुख हिन्दी सन्त

डॉ. प्रमिला झीबा

नवजीवन पब्लिकेशन

आमुख

हमारे देश में अक्सर बहुत अच्छे शोधकार्य का प्रकाशन के अभाव में व्यापक उपयोग नहीं हो पाता है। क्योंकि शोध ग्रन्थों के प्रकाशन में सामान्यतया प्रकाशक रूचि नहीं लेते हैं, उनका प्रकाशन उन्हें लाभप्रद नहीं लगता। इस प्रकार शोध कार्य का जो लाभ शैक्षिक जगत् को मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पाता।

वनस्थली विद्यापीठ ने निश्चय किया है कि यहाँ जो भी श्रेष्ठ शोधकार्य होगा उसके प्रकाशन का उत्तरदायित्व विद्यापीठ स्वयं लेगा।

विद्यापीठ के इस निर्णय को संभव बनाने में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के परिसीमित अनुदान से मदद मिली है। प्रकाशन का कार्य करने और प्रकाशित साहित्य को व्यापक रूप से उपलब्ध कराने में नवजीवन पब्लिकेशन, निवाई ने सहायता देना स्वीकार किया है। विद्यापीठ दोनों के प्रति आभार व्यक्त करता है।

आदित्य शास्त्री
कुलपति
वनस्थली विद्यापीठ
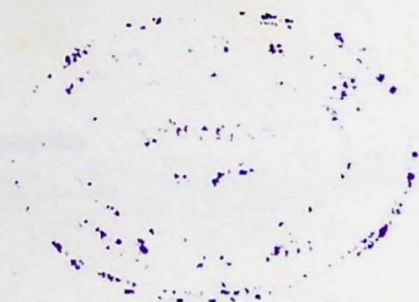
एक दृष्टि में

एक सहस्र वर्ष से ऊपर की अवधि हिन्दी साहित्य की विशाल राशि विभिन्न रचनाकारों द्वारा रची गई। इस कालावधि में विभिन्न प्रकार के घात–प्रतिघात सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक धरातल पर घटित होते रहे। स्पष्ट रूप से इन संघातों का प्रभाव साहित्य सृजन पर भी पड़ा। इस प्रकार साहित्य के इतिहासकारों ने इन प्रभावों को स्वायत्त करते हुए साहित्य का आलोडन–विलोडन किया। फलस्वरूप वैचारिक स्तर पर कई ऐसे संकेत सूत्र हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में प्राप्त होते हैं, जिनसे प्रेरित होकर साहित्य के अनुसंधान और अनुशीलन की नई दिशाएँ उदघाटित होती हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रस्तुत पुस्तक 'सिद्ध–नाथ एवं प्रमुख हिन्दी संत' इसी की परिणति है।

हिन्दी साहित्य का मध्यकाल मुख्यरूप से संत काव्यधारा एवं रीतिकाव्य धारा में विभक्त किया जाता है। संत काव्य धारा के प्रमुख अध्येता डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, डॉ. श्याम सुन्दर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं आचार्य परशुराम चतुर्वेदी हुए हैं। इन विद्वानों ने संत साहित्य में अवगाहन करके उनका आलोडन–विलोडन किया। अपनी दृष्टि से निष्कर्ष प्रस्तुत किये। इन अध्येताओं के समक्ष आदिकाल का सिद्धों और नाथों के द्वारा रचित साहित्य था, तो दूसरी ओर मध्य युग के संतों की तेजस्वी वाणी भी थी। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि चौरासी सिद्धों में अधिकांश समाज के निम्न वर्ग से आये हुए अल्पशिक्षित एवं अशिक्षित जन थे। ठीक इसी भाँति मध्ययुगीन संतों में भी नानक, कबीर, रैदास, दादूदयाल, रज्जब, पलटू आदि भी इसी कोटि में रखे जा सकते हैं। सिद्धों और नाथों की भाँति ही मध्ययुगीन कवि ही रूढ़िभंजक, विद्रोही सामाजिक धरातल पर क्रांतिकारी एवं भविष्य द्रष्टा रचनाकार थे। इसलिए आलोचकों का यह निष्कर्ष उचित भी है कि मध्ययुगीन संत कवि सिद्धों और नाथों के मानस पुत्र कहे जा सकते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में डॉ. प्रमिला झीबा ने भी इसी तथ्य को रेखांकित किया है।

विचार करने की बात यह है कि साहित्य की अन्तर्वस्तु जिसमें दार्शनिक चिन्तन, रहस्यपरक, अनुभूति, अन्तर्मुखी साधना, मौलिक स्थापनाएँ और समाज को बदलने के लिए एक अद्भुत प्रकार की तड़प नाथों–सिद्धों की भाँति मध्ययुगीन कवियों के साहित्य में भी परिलक्षित होती है। डॉ. प्रमिला झीबा ने वेदान्त की पृष्ठभूमि का निदर्शन करते हुए विस्तार–पूर्वक नाथों–सिद्धों और मध्ययुगीन संतों से प्राप्त निष्कर्षों का ऐक्य सिद्ध किया। संक्षेप में कहें तो ब्रह्म, जगत्, माया, जीवात्मा, स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर आदि पर जो चिन्तन प्राप्त होता है वह भी ऊपर वर्णित समानता की ही पुष्टि करता है। तात्विक दृष्टि से वेदान्त के अलावा बौद्ध चिन्तन, वज्रयान की परम्परा और सहज सम्प्रदाय का भी प्रभाव देखने को मिलता है। कुल मिलाकर ये अन्तर्जगत् के साधक थे। सिद्ध परम्परा के आदि कवि सरहप्पा का यह दोहा ध्यान देने योग्य है।

'जेही मन पवन न संचरियै, रवि षषि नाहीं पवेष,

तेहि वत चित्त विषाण कर कहहि करेहि उमेष।।

सरहप्पा पाद की भाँति अन्य साधकों ने भी अन्तश्चेतना की गहराई में प्रवेश करने को सच्ची साधना माना है। कबीर की साखियों में भी साधक को अन्तर्जगत् की गहराइयों में उस निर्गुण निराकार की सत्ता को ढूँढ़ने का मार्ग सुझाया गया है। यहाँ पर यह उल्लेख करना आवश्यक है कि सभी मध्ययुगीन संत कवि निर्गुणनिराकार तत्व के उपासक थे और उसे अनुभूति की गहराइयों में प्रवेश करके समझने और पहचानने की पद्धति पर जोर देते हैं। इस प्रकार अन्तर्वस्तु की दृष्टि से सिद्ध–नाथ साहित्य एवं प्रमुख संत कवियों की वाणी में अद्भुत साम्य परिलक्षित होता है जिसकी विशद् चर्चा डॉ. प्रमिला झीबा ने प्रस्तुत पुस्तक में की है।

अब तनिक नाथों–सिद्धों एवं मध्ययुगीन संतों की रचनाओं में प्राप्त अभिव्यक्ति साम्य पर भी विचार करें। डॉ. प्रमिला झीबा ने सिद्धों की संध्या भाषा और मध्ययुगीन संतों की उलटबासियों को समानान्तर रखते हुए अभिव्यक्ति के इस आश्चर्य–जनक ऐक्य की ओर संकेत किया है। ऊपरी सतह पर यह अभिव्यक्ति निरर्थक और चिढ़ाने वाली–सी प्रतीत होती है; किन्तु गहराई में जाकर हम जब तात्त्विक अर्थ का उद्घाटन करते हैं तो उन्हें गूढ़ तत्त्व बोध के दर्शन होते

हैं। भाषा की दृष्टि से मध्ययुगीन संत कवि नाथों एवं सिद्धों की भाँति चारों दिशाओं से प्रभाव ग्रहण करके संस्कृत की तद्भव शब्दावली, देशज भाषाओं का पुट और लोक जीवन से ग्रहण किये गये बिंबों, प्रतीकों और ध्वनियों का पुट देकर अपनी वाणी को बोध–गम्य बनाने का प्रयास करते हैं। उदाहरण के लिए कबीर की इस पंक्ति को लीजिए–

"जल बिच मीन पियासी, मोहि सुनि–सुनि आवत हाँसी।" या

"जल बिच कुंभ, कुंभ बिच जल है, भीतर बाहर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहिं समाना, यह तत कहेउ गियानी।।"

यहाँ तक की काव्य रूप की दृष्टि से विचार करने पर नाथों और सिद्धों की भाँति मध्ययुगीन कवि भी मुक्तककार ही कहे जा सकते हैं। इन्होंने किसी सुनिश्चित कथा प्रसंग को ग्रहण कर साहित्य रचना नहीं की, अपितु अपनी अनुभूति को प्रकट करने के लिए लोक प्रचलित शब्दचित्रों को ग्रहण कर सखियों और पदों की रचना की। कुल मिलाकर यह कहना उचित होगा कि अनुभूति और अभिव्यक्ति के धरातल पर सिद्धों–नाथों एवं मध्ययुगीन संतों में अद्भुत् साम्य दिखाई पड़ता है।

इन पंक्तियों के लेखक को प्रस्तुत पुस्तक का अवलोकन कर पूर्ण संतोष की अनुभूति हुई है। डॉ. प्रमिला झीबा एम.ए. कक्षाओं में मेरी छात्रा रही है। उनकी अध्ययनशीलता, ज्ञान के प्रति उत्कंठा और अनुसंधान के प्रति विशेष अभिरूचि का प्रतिफलन इस पुस्तक में देखने को मिलता है। मैं आशा करता हूँ कि अपनी इसी दिशा में पुस्तक के साथ वे अपनी सारस्वत यात्रा जारी रखेंगी।

अनेक शुभकामनाओं के साथ...........

डॉ. प्रेमप्रकाश भट्ट
पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर (राज.)

प्राक्कथन

साहित्य के पठन–पाठन में मुझे प्रारम्भ से ही रूचि रही है। भक्ति से परिपूर्ण वातावरण के सानिध्य के कारण बचपन से ही मेरा आकर्षण भक्तिकाव्य के प्रति विशेष रहा है। सुदीर्घ अवधि से 'नाथ निकुंज आश्रम' से पारिवारिक जुड़ाव ने मेरे भगवद् विषयक प्रेम में श्री वृद्धि की है।

धार्मिक प्रवृत्ति के प्रति आस्था–भाव के कारण मेरा झुकाव संत–साहित्य की ओर हुआ। मेरे श्रद्धेय गुरुवर डॉ. राधेश्यामजी जांगिड़ (भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय) ने मुझे 'सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी संत' विषय पी. एच.डी. शोध कार्य हेतु सुझाया। मैंने नाथ–निकुंज के संस्थापक परम आदरणीय गुरुवर श्री रविनाथजी महाराज से आशीर्वाद ग्रहण कर कार्य आरम्भ किया।

सिद्ध–नाथों को यदि हिन्दी संतों के पूर्वज कहें, तो अतिश्योक्ति नहीं होगी; क्योंकि सिद्ध–नाथों के दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक कल्याणकारी विचार परम्परा को हिन्दी संतों ने विरासत रूप में ग्रहण कर उसका संवर्धन किया है। सिद्ध–नाथ साधकों ने तदयुगीन रूढ़ समाज एवं धर्म में व्याप्त कुरीतियों, कुप्रथाओं तथा कुव्यवस्थाओं के विरुद्ध जो क्रांति की मशाल प्रज्वलित की थी, उसे हिन्दी–संतों ने न केवल प्रज्वलित रखा वरन् उस क्रांति–मशाल से समाज में व्याप्त अत्याचार, कुप्रथाओं, रूढ़ियों की कालिमा को अपनी वाणी से दूर किया। संतों ने सिद्ध–नाथों की अनुभूतियों को ही नहीं, वरन् उनकी अभिव्यक्ति परम्परा को भी आत्मसात् किया। ऐसा करके हिन्दी संतों ने अपने पूर्ववर्ती सिद्ध–नाथों की विचार–परम्परा को पुष्पित, पल्लवित एवं फलित किया। संतों ने इस परम्परा में अपनी मौलिक भावनाओं, विचारों के रंगों को समाहित करके लोक–कल्याण की भावना के रंगों को अधिक चटक बना उसे अपने परवर्ती संतों को उपहार स्वरूप भेंट किया। लोक कल्याण से युक्त इनकी वाणी आहत मानवता को सदैव शीतलता प्रदान करती रहेगी –

"आग लगी आकाश में भू पर गिरे अंगार।
जो संत न होते जगत् में जल जाता संसार।।"

प्रस्तुत पुस्तक में मैंने इसी कल्याणकारी विचार परम्परा को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है, तथापि इस अध्ययन में त्रुटि एवं भूलों का होना सर्वथा संभव है। आशा है कि विज्ञ पाठक गण मुझे इस संबंध में अपने सुझावों से अनुगृहीत करने की कृपा करेंगे, ताकि आगे सुधार कर सकूँ।

इस कार्य को पूर्ण करने में सर्व प्रथम मैं 'नाथ–निकुंज' के संस्थापक गुरुवर श्री रविनाथजी महाराज की अनुग्रही हूँ जिनका आशीर्वाद मुझ पर सदैव बना रहा है। साथ ही मेरे सुयोग्य निर्देशक डॉ. राधेश्याम जांगिड़ जी का प्रोत्साहन भी मेरे लिए प्रेरणादायी रहा। यही नहीं डॉ. प्रेम प्रकाश भट्टजी ने कृपाकर प्रस्तुत कृति की भूमिका लिख कर इसमें चार चाँद लगा दिये हैं। इसके लिए मैं अपने इन गुरुजनों के प्रति किसी प्रकार की कृतज्ञता प्रकट करके उनका महत्व कम नहीं करना चाहती। मैं उन विद्वानों के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझती हूँ जिनकी रचनाओं से मुझे इस प्रकार के लेखन में सहायता मिली है। साथ ही मैं मेरे पूज्य पिताजी श्री गुलाबदानजी एवं पूज्य माता श्रीमती हंसादेवी तथा पूज्य भ्राता श्री जितेन्द्र सिंह जी के अविस्मरणीय सहयोग को भुला नहीं सकती। इनके अतिरिक्त श्री सवाईसिंहजी हापावत, श्री हेमन्तसिंहजी हापावत, मीनाक्षी शर्मा, श्रीमती गोपाल हापावत, श्रीमती उर्मिला हापावत, श्री सार्दुलसिंहजी (सुश्री अन्नपूर्णा शुक्ला) एवं अपने मित्रों–हितैषियों के प्रति भी मैं कृतज्ञता प्रकट करती हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से मुझे सहायता प्रदान की। इनके अतिरिक्त वनस्थली विद्यापीठ के कुलपति श्री आदित्य शास्त्री जी एवं श्री हीरालालजी मित्तल तथा नवजीवन प्रकाशन, निवाई के प्रति आभार प्रदर्शित करती हूँ जिनकी सतत् प्रकाशन सम्बन्धी लगन के कारण ही मेरे ये विचार पुस्तकाकार रूप में विज्ञ पाठकों के सम्मुख उपस्थित हो रहें हैं।

धन्यवाद!

- डॉ. प्रमिला झीबा

विषयानुक्रमणिका

पीठिका

निर्गुण मत की चिन्तन-पृष्ठभूमि

भारतीय साहित्य में निर्गुणमत आज एक विशालकाय वृक्ष के रूप में स्थापित है। जिसने अपने परवर्ती साहित्य में निर्गुण मत के चिन्तन को एक दृढ़ आयाम प्रदान कर उसे कृतार्थ किया है। इसी निर्गुण मत ने मध्यकालीन भारतीय साहित्य एवं संस्कृति को दिव्य सौन्दर्य प्रदान कर प्रोद्भासित किया तथा इस दिव्य सौन्दर्य की रश्मियाँ आज भी साहित्य एवं संस्कृति को आलोकित करके अज्ञान के गर्त में दम तोड़ती मानवता को प्रज्ञा के प्रकाश में सन्मार्ग दिखाती हैं।

निर्गुण–मत रूपी विशाल विटप की जड़ें भी उसी के समान बहुत गहरे में समाई है। जिसका अंकुर वैदिक साहित्य में परिलक्षित होता है। अतः निर्गुण मत की चिन्तन पृष्ठभूमि से अवगत होने के लिए वैदिक काल से मध्यकाल तक निर्गुण मत का श्रृंखलाबद्ध विवेचन अपेक्षित है।

0.1 वैदिक संस्कृति

विश्व–साहित्य के आदि वाङ्मय वेद हैं। वेदों में भारतीय संस्कृति, सदाचार, सनातन धर्म, दर्शन, ज्ञान–विज्ञान, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन से आबद्ध सभी विषय उपलब्ध हैं। वेद भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ हैं तथा यहाँ उत्पन्न विविध विचारधाराओं की जन्मस्थली भी हैं। सृष्टि के आदिकाल में पुण्यपुंज ऋषियों के अन्तःकरण ने ईश्वर–निर्मित इस विश्व में जिस विभु की व्यापक सत्ता के दर्शन किये, सम्पूर्ण वैदिक साहित्य उन्हीं अनुभूतियों का अदभुत उदगीथ है।

1.1 वेदों का प्रतिपाद्य

वेदों के सभी भाष्यकार इस विषय पर एक मत हैं कि चारों वेदों (ऋग्वेद,यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) में प्रधानतः तीन विषयों का प्रतिपादन किया गया है। यथा –

(क) **कर्मकाण्ड अर्थात् यज्ञ कर्म :** जिसमें याज्ञिक को इस लोक में अभीष्ट फल की प्राप्ति हो व मरने के बाद श्रेष्ठ सुख मिले।[1]

---

1 विश्व धर्म दर्शन – सॉवलिया बिहारी लाल, पृ 20

(ख) **ज्ञान काण्ड** : जिसमें इहलोक तथा परलोक विषयक वास्तविक तत्त्व एवं रहस्य उद्‌घाटित हों।[2] इसका विस्तार उपनिषदों में हुआ है।

(ग) **उपासना काण्ड** : ईश्वर–भजन जो मानव की लौकिक व पारलौकिक सिद्धि का मार्ग दिखाता है।

1.1.1 वेदों में वर्णित ब्रह्मविषयक विचारणा

वैदिक धर्म में बहुदेववादी विचारणा को प्रश्रय मिला है। यहाँ देवों की संख्या निश्चित नहीं है। ऋक्–संहिता (1/158/1) तथा निरुक्त में देवों की संख्या तीन कही गयी है– अग्नि, वायु या इन्द्र तथा सूर्य।[3] ऋक्–संहिता (1/139/1) में देवों की संख्या आकाश, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी प्रत्येक में 11 बताई है। अतः कुल मिलाकर देवों की संख्या (11×3=33) तैतीस बताई है।

वैदिक साहित्य में देवों का मानवीकृत रूप में वर्णन मिलता है। उनमें मानव–शरीर जैसे अंगों की कल्पना की गई है।[4] देवताओं को मानवीय स्वरूप में कल्पित किए जाने से उनका समाज भी मानवीय समाज जैसा प्रतीत होता है। यहाँ युग्म रूपी देवों की कल्पना भी की गई है यथा– मित्रावरुण, द्यावापृथ्वी। इस कल्पना में एक देव के गुण अन्य दूसरे पर आरोपित कर दिये गये हैं।[5]

वेदों में मूलतः सभी देव एक जैसे हैं। ऋषिगणों द्वारा भिन्नता के साथ उनका वर्णन किए जाने के कारण ही भेद उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार वेदों में बहुदेववादी उपासना के संकेत दिखाई देते हैं, किन्तु ऋग्वेद में ये (सभी देव) एक ही शक्ति के ब्रह्म प्रतीक हैं। वेदों में एकेश्वरवादी मत को प्रतिष्ठित किया है। यहाँ सूक्ष्म रूप से ब्रह्म के अद्वैत स्वरूप को ही स्थापित किया गया है।

यथा – एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति (1/164/46) ऋग्वेद अर्थात् ब्रह्म एक है उसी एक प्रभु को विद्वज्जन अनेक नामों से पुकारते हैं। यहाँ ब्रह्म को सब लोकों का स्वामी कहा गया है–

'एको विश्वस्य भुवनस्य राजा' (6/36/4) ऋग्वेद

यजुर्वेद में एक ब्रह्म की कल्पना करके उसी एक को अग्नि, आदित्य, चन्द्रमा, वायु, आप, ब्रह्म, प्रजापति एवं शुक्र कहा है।[6] अथर्ववेद में परमेश्वर ही पूजा के योग्य है

---

2. उपरिवत्
3. भारतीय दर्शन – नन्द किशोर देवराज, पृ. 32
4. छायावाद और वैदिक दर्शन – डॉ. प्रेम प्रकाश रस्तोगी, पृ. 34
5. प्राचीन भारत का इतिहास (प्रारम्भ से 78 ई.) – पृ. 46
6. तवेदाग्निस्तदादित्यस्त द्वायुस्तद चन्द्रमा, तदेव शुक्रं तद ब्रह्म तद् आपः स प्रजापति – यजुर्वेद – 32/5

और प्रजाओं में स्तुत्य है, ऐसा वर्णन करके एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा की है– एक एव नमस्योविक्ष्वीडय: (अथर्ववेद 2/2/1)

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि वेदों का मूल स्वर एकेश्वरवादी है। यही एकेश्वरवादी विचार परवर्ती साहित्य में विकसित हुआ है।

1.1.2 जगत्/सृष्टि

ऋग्वेद के नासदीय–सूक्त में सृष्टि की प्रारम्भिक स्थिति का वर्णन हुआ है। जब कोई भी चिह्न विद्यमान नहीं था उस समय एक ही तत्त्व बिना हवा के साँस ले रहा था। (10/129/1–2)

यह सृष्टि जहाँ से उत्पन्न हुई है अथवा इसका कोई आधार है या नहीं यह सब कुछ वही जानता है जो परम व्योम में व्याप्त है। यथा–

इयं विसृष्टिर्यत आनभूत यदि वा दधे यदि वा न यो अस्याध्यक्ष: परमे त्योमन्त्सों अंगवेद यदिवा न वेदं – (ऋ. 10/129/7)

इससे स्पष्ट होता है कि सृष्टि का नियंता ब्रह्म है। वेदों में आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारों के साथ–साथ मानवोपयोगी शिक्षाओं का भी विवेचन हुआ है जो हमारे जीवन मूल्यों की ठोस आधारशिला है।

1.1.3 एकता-समता

'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे' (यजु. 36/17) अर्थात् हम सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखे। सं गच्छध्वं संवदध्वम् (ऋ. 10/191/2) द्वारा मिलकर चलो, मिलकर बोलो का आह्वान किया गया है। इन सबका मूलभाव आपसी एकता एवं समता को बनाये रखना है।

1.1.4 सत्य-अहिंसा

वेद सत्य मार्ग के अनुसरण पर बल देते हैं। यथा – ऋतस्य यथा प्रेत (यजु. 7/48)

सामवेद में हिंसारहित यज्ञ में सत्य धर्म का प्रचार करने वाले अग्नि की स्तुति करो' कहकर अहिंसा का मार्ग दिखाया गया है।

1.2.5 देश-प्रेम

उप सर्प मातरं भूमिम्[8] द्वारा ऋग्वेद में मातृभूमि की सेवा की शिक्षा दी गई है। यजुर्वेद में भी राष्ट्र कल्याण का मांगलिक संदेश प्रेषित[9] किया गया है।

---

7 अध्वरेसत्यधर्माणं कवि अग्नि उप स्तुहि – सामवेद 32

8. ऋ. 10/17/10

9. यजु. स. 22/22

सम्यक् विवेचन के उपरांत स्पष्ट होता है कि वेद दार्शनिकता, रहस्यात्मकता, गांभीर्यता एवं मौलिक नवीन कल्पना के आगार हैं एवं सम्पूर्ण भारतीय साहित्य के अग्रदूत हैं। भारतीय दर्शन का बीज यहीं से अंकुरित हुआ और युगों के पोषण से निरन्तर समृद्ध हुआ है।

0.2 उपनिषद्-चिन्तन

उपनिषद् स्वतः प्रकाशित ज्ञान राशि अर्थात् वेदों से सम्बद्ध है। वेदों में निहित विचारोंका परिपक्व रूप उपनिषदों में देखा जा सकता है।

2.1 उपनिषद् का अर्थ

उपनिषद् का अर्थ है जो ईश्वर के समीप पहुँचावे अथवा जो गुरू के समीप पहुँचाये।[10]

शंकराचार्य इसका मुख्य अर्थ ब्रह्म–विद्या या ब्रह्म–विद्या–विषयक ग्रंथ मानते हैं।[11]

2.2 उपनिषदों का प्रतिपाद्य

उपनिषदों का प्रमुख वर्ण्य विषय 'अध्यात्म' है। ब्रह्म, आत्मा, जीव, जगत, कर्म, आदर्श, आचार–व्यवहार इत्यादि अध्यात्म में समाहित है। इन सभी के दर्शन उपनिषदों में होते हैं।

2.2.1 आत्मा

उपनिषदों में आत्मा की परमात्मा के साथ अभिन्नता स्वीकार की गई है। माण्डूक्योपनिषद् में आत्मा को तुरीय बताया है। वहाँ कहा गया है कि जीव की चार अवस्थाएँ होती हैं – जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय। जाग्रत में ज्ञाता को वैश्वानर, स्वप्न में दृष्ट को तैजस, सुषुप्ति में आनन्द के अणुकर्त्ता को प्रज्ञा कहा गया है। तुरीय आत्मा वैश्वानर, तैजस व प्रज्ञाका मूलाधार है। वह अदृष्ट, अग्राह्य, अव्यवहार्य, अचिंत्य, अलक्षण, अव्यपदेश्य है। वह प्रपंचोपशम, शिव, शांत और अद्वैत है।[12]

आत्मा एक व्यापक तत्त्व है। उपनिषदों में आत्मा–परमात्मा की एकता प्रतिपादित की गई है।

2.2 ब्रह्म

उपनिषद् में ब्रह्म – सत्, चित्, आनन्द स्वरूप है।[13] सर्व खल्विदं ब्रह्म[14]

---

10. कठ, तैतिरीय और वृहदारण्यक में शंकर की भूमिका
11. भारतीय–दर्शन – स. नन्द किशोर देवराज पृ 63
12. भारतीय दर्शन – वाजपेयी पृ 73
13. सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म – तैत्तिरीय उपनिषद् – 2,1
14. छन्दोग्य उ – 3/64/1

कहकर संसार को ब्रह्म रूप बताया है। कठोपनिषद में कहा है–

अणोरणी यान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम [15]

अर्थात् ब्रह्म अणु से सूक्ष्म है व महान से भी महान है। उपनिषद ब्रह्म के अकथनीय एवं विराट् स्वरूपको मानते हैं।

तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार – सभी प्राणी जिस ब्रह्म से उत्पन्न हुए हैं जिसके द्वारा जीवित हैं और अंत में जिसमें लीन हो जाते हैं वही ब्रह्म है।'[16]

ईशोपनिषद में ब्रह्म के सगुण–निर्गुण स्वरूप की चर्चा की गई है।

2.2.1 ब्रह्म का निर्गुण स्वरूप – वृहदारण्यक उपनिषद (3/7/23) में ब्रह्म को अदृष्टो दृष्टा कहा गया है। वहीं उसे नेति–नेति कहा गया है। वृहदारण्यक (3/8/8) में ब्रह्म को मन व वाणी से रहित कहा है।

ब्रह्म अपने निर्गुण रूप में स्वतः प्रकाशित, अगम्य, अरस, अगोचर, अगंधवत्, अनादि, अनन्त, अवर्णम्, अचक्षु, हाथ–पांव रहित, अखण्ड, अस्पर्श, अरूप, अव्यय, आदि है। वाणी उसके स्वरूप वर्णन में असमर्थ है तभी उसके विषय में नेति–नेति कह दिया गया है।

2.2.2 सगुण स्वरूप – सृष्टि की सृजन शक्ति के साथ ब्रह्म के सगुण स्वरूप को जोड़ा गया है। तैतिरीय उपनिषद (2/6) में सगुण ब्रह्म के स्वरूप का विवेचन मिलता है। सभी उपनिषदे सगुण ब्रह्म को एक स्वर में सृष्टि का निर्माता बताती हैं। ब्रह्म अपने स्वरूप को अनेक स्वरूपों मे दिखाता है –

एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।[17]

इस प्रकार ब्रह्म, नित्य चेतन, साक्षी है। वह सृष्टि का स्वामी, भर्त्ता, संहारकर्त्ता व नियंता है।

2.3 जगत्

उपनिषद में विश्व को ब्रह्म रूप माना है। अतः सृष्टि स्वतः ब्रह्म ही है।[18] तैत्तिरीय उपनिषद् में जगदुत्पत्ति के क्रम में कहा गया है कि सर्वप्रथम ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ, उससे वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियाँ, औषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य तथा वीर्य से पुरुष उत्पन्न हुआ।[19]

इस प्रकार ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति हुई।

15. कठ. उ. 1/2/20
16. सस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ. रामदेव साहु पृ. 20
17. कठ उ. – 5/12
18. शंकर अद्वैत वेदांत का निर्गुण काव्य पर प्रभाव – शातिस्वरूप त्रिपाठी, पृ. 40
19. सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 21

2.4 माया

यहाँ माया ब्रह्म की शक्ति है वह जगत् की प्रतिभासित सत्ता को बनाये रखती है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में माया शब्द कपट अथवा कुटिलता के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है।

मायां तु प्रकृति विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्[20] कहकर माया एवं प्रकृति का तादात्म्य स्थापित किया है।

परमेश्वर का ध्यान कर उसमें लीन रहने पर माया का आवरण हट जाता है, जिससे जीवात्मा मुक्त हो सांसारिकता के ऊपर उठ कर ब्रह्ममयी हो जाती है तथा परमानंद का अनुभव करती हैं।

2.5 नैतिकता, सदाचार एवं विश्वबंधुत्त्व

उपनिषदों में निहित नैतिक उपदेश मानव–जीवन को उदात्त एवं उन्नत बनाते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा है –

सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमद, मातृदेवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव। यानि अनवद्यानि कर्माणि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।[21] आदि बातें मानव को उन्नति पथ पर ले जाने वाली हैं। ईशोपनिषद में विश्व–बंधुत्व के भाव भी दिखाई देते हैं।

सारांशतः उपनिषद् दार्शनिक, आध्यात्मिक विचारों के साथ सदाचार, नैतिकता, लोक–मंगल की भावना के आगार हैं।

0.3 बौद्ध आन्दोलन

ईसा पूर्व छठीं शताब्दी धार्मिक दृष्टि से क्रांति एवं महान् परिवर्तन का काल माना गया है। ऐसे विषम समय में बौद्ध आन्दोलन एक ऐसे आन्दोलन के रूप में उभर कर सामने आया जिसने पुरोहितों के अत्याचारों, धर्म के कर्मकाण्डीय स्वरूप, जाति–भेदभाव, ब्राह्मणों के प्रभुत्व का विरोध कर अस्त–व्यस्त समाज में नव–जीवन का संचार किया।

बौद्ध धर्म के आदि प्रवर्तक गौतम बुद्ध थे। उन्होंने जिस धर्म का प्रवर्तन किया वह कालान्तर में एक अन्तर्राष्ट्रीय धर्म बन गया।

3.1 बौद्ध-साहित्य

महात्मा बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार मौखिक रूप में किया। आज हमें उनके निजी उपदेशों का जो ज्ञान मिलता है, उसके आधार त्रिपिटक हैं। यथा – सुत्त पिटक, विनय पिटक, अभिधम्म पिटक। ये ग्रंथ ही प्रारम्भिक बुद्ध धर्म और दर्शन के जानने के लिए मूल स्रोत हैं।[22]

---

20 श्वे. उ – 4/10

21. सस्कृत साहित्य का इतिहास – पृ. 21

22 विश्व धर्म दर्शन – श्री साँवलिया बिहारी लाल वर्मा, पृ 138

3.2 बौद्ध-सिद्धांत

महात्मा बुद्ध ने जो ज्ञान प्राप्त किया उनका सार उनके चार आर्य सत्यों में पाया जाता है। वे निम्न हैं –

3.2.1 दुःख – दुःखवाद बौद्धों का विशिष्ट सिद्धांत है। इसके अनुसार संसार दुखों का सागर है, सर्वत्र दुःख व्याप्त है। सुख भी वस्तुतः दुःख ही है। ये सांसारिक सुख क्षणिक हैं, अतः इन्हें सुख मानना केवल अदूरदर्शिता है। बौद्धों के दुःखवाद का प्रभाव संतों पर स्पष्ट देखा जा सकता है।

3.2.2 दुःख का हेतु – दुःख की उत्पत्ति को ही दुःख हेतु कहा है। दुःख का कारण तृष्णा है। यह तृष्णा तीन प्रकार की होती है –

2.1 काम–तृष्णा – विषयों का भोग इसी के अन्तर्गत आता है।[23]

2.2 भव–तृष्णा – संसार में बारम्बार जन्मने की इच्छा भव तृष्णा है।[24]

2.3 विभव–तृष्णा – यह आत्मा मरके नष्ट हो जाती है, ऐसे विचार रखना विभव तृष्णा है।[25]

3.2.3 दुःख-निरोध – दुःख के कारण का निराकरण करना ही दुःख निरोध है। दुःख निरोध आर्य सत्य उस तृष्णा से अशेष–सम्पूर्ण वैराग्य का नाम है, उस तृष्णा का त्याग, प्रतिसर्ग, मुक्ति तथा अनालय, स्थान न देना यही है।[26]

दुःख रहित अवस्था को बौद्ध दर्शन में निर्वाण कहा गया है। जिसे व्यक्ति अपने जीवन काल में ही पा सकता है। निर्वाण राग–द्वेष तथा तज्जन्य दुःख के नाश की अवस्था है।[27] निर्वाण बौद्ध धर्म का अन्तिम लक्ष्य है।

3.2.4 दुःख-निरोध-मार्ग (उपाय) – दुःख की शांति अर्थात् निर्वाण प्राप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को दुःख–निरोध–गामिनी प्रतिपदा कहते हैं। मध्यम–मार्ग (मज्झिमा पटिपदा) भी इसी का नाम है।[28]

---

23. भारतीय दर्शन – डॉ. देवराज, पृ. 162
24. उपरिवत्, पृ. 162
25. उपरिवत् – पृ. 163
26. इदंखो पन भिक्खवे दुक्ख निरोधं अरिय सच्चं।
    सो तस्यायेक तण्हाय असेसविराग निरोधो चागो पटिनिस्सागो मुक्ति अजालयो।
    बौद्ध दर्शन मीमांसा– बलदेव उपाध्याय, पृ. 66.
27. भारतीय दर्शन – सतीश चन्द्र चट्टोपाध्याय एवं श्री धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ. 81.
28. हिन्दी संत साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव – डॉ. विद्यावती मालविका, पृ. 36.

महात्मा बुद्ध ने निर्वाण प्राप्ति हेतु जो मार्ग बताया हैं, उसके आठ अंग है। जो अष्टांगिक मार्ग कहलाये हैं। यथा – 1. सम्यक् दृष्टि 2. सम्यक् संकल्प, 3. सम्यक् वाक्, 4. सम्यक् कर्मान्त, 5. सम्यक् आजीव, 6. सम्यक् व्यायाम, 7. सम्यक् स्मृति 8. सम्यक् समाधि।[29] इन्हें प्रज्ञा, शील और समाधि के विभाग में विभक्त किया है। ये प्रज्ञा, शील एवं समाधि बौद्ध धर्म की आधारशिला हैं।

3.3 बुद्ध उपदेशों में अन्तर्निहित दार्शनिक विचार

3.3.1 प्रतीत्यसमुत्पाद – प्रतीत्य समुत्पाद का प्रायः अर्थ सापेक्षकारणवाद है। बौद्ध धर्म में कार्य कारण सिद्धांत को प्रतीत्य समुत्पाद कहा है।' प्रतीत्य समुत्पाद का शाब्दिक अर्थ है एक वस्तु के उपस्थित होने पर किसी अन्य वस्तु की उपस्थिति।[30]

अतः कोई वस्तु न पूर्णतया नश्वर है न शाश्वत। प्रत्येक वस्तु अपने बाद कुछ शेष छोड़ कर जाती है, समी एक दूसरे पर निर्भर हैं। इस प्रकार प्रतीत्य समुत्पाद शाश्वतवाद व उच्छेदवाद के बीच का मार्ग है। यह मध्यम मत है।

प्रतीत्य समुत्पाद में कार्य से कारण की ओर तथा कारण से कार्य की ओर प्रस्थान किया जाता है। दुःख रूपी कार्य से आरम्भ कर अज्ञान रूपी कारण तक एवं अज्ञान रूपी कारण से दुःख रूपी कार्य तक पहुँचा जा सकता है।[31]

इसी दर्शन के आधार पर इनकी मान्यता है कि न जीवन आरम्भ है न अंत। वर्तमान जीवन पुनर्जन्मों का परिणाम है और भावी का आधार वर्तमान जीवन है। जैसे एक दीपक दूसरे को प्रज्वलित करता है, वैसे ही एक जीवन दूसरे जीवन को।

3.3.2 कर्मवाद – कर्मवाद के अनुसार व्यक्ति को उसके वर्तमान जीवन में किये कर्मो का फल भविष्य में प्राप्त होता है तथा अतीत जीवन में किये कर्मो के आधार पर हमारा वर्तमान जीवन निर्मित होता है। परिणाम के दृष्टिकोण से कर्म चार प्रकार के हैं–[32]

3.2.1 शुभ कार्य – जिनका फल भी शुभ हो।

3.2.2 अशुभ कार्य – जिनका फल भी अशुभ हो।

3.2.3 अंशतः शुभ और अंशतः अशुभ कर्म – इनके फल भी अंशतः शुभ व अंशतः अशुभ होते हैं।

बौद्ध धर्म में कायिक, वाचिक, मानसिक कर्म माने गये हैं। यह दर्शन कर्मवाद में अटूट विश्वास रखता है।

---

29. भारतीय दर्शन – डॉ. देवराज पृ. 163.
30. भारतीय दर्शन – डॉ. आर. पी. शर्मा पृ. 62–63.
31 भारतीय दर्शन – डॉ. आर. पी. शर्मा, पृ 63
32 उपरिवत् – पृ 63

3.3.3 क्षणिक वाद – भगवान बुद्ध ने स्वयं कहा है – जितनी वस्तुएँ हैं सब की उत्पत्ति कारणानुसारहै, ये सभी सब तरह से अनित्य हैं। – (महापरिनिर्वाण सूत्र) अतः प्रत्येक वस्तु नश्वर है यही क्षणिकवाद / अनित्यवाद है। सांसारिक नश्वरता को समझने हेतु बुद्ध ने अनित्यवाद का प्रतिपादन किया जिसका रूपान्तरण उनके शिष्यों ने क्षणिकवाद में किया। सभी वस्तुएँ क्षणिक, नश्वर है तो संसार क्षण भंगुर है। क्षणिकवाद शाश्वतवाद एवं उच्छेदवाद के मध्य का मार्ग है। यह सत्–असत् के बीच का मार्ग है।

3.3.4 अनात्मवाद – अनात्मवाद बौद्ध धर्म की दार्शनिक भित्ति है। बुद्ध ने आत्मा के अस्तित्व का निराकरण किया है। वे इस मत को नहीं मानते कि आत्मा अजर–अमर, ध्रुव, नित्य है।[33]

नित्य आत्मा के विश्वास को दुःख का कारण मानने वाले बुद्ध ने आत्मा को अनित्य कहा है। ये पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं।

3.3.5 अनीश्वरवाद – बुद्ध के अनित्य, दुःख एवं अनात्मवाद में ईश्वर के लिए कोई स्थान नहीं है। त्रिपिटक में जहाँ ईश्वर का जिक्र हुआ है, वहाँ बुद्ध ने ईश्वर का निराकरण किया है। बौद्ध नास्तिक धर्म है।

प्रारम्भ में बौद्ध दर्शन अनीश्वरवादी रहा, परंतु बुद्ध की मृत्यु के बाद बुद्ध को ही ईश्वर मान लिया गया।

3.3.6 निर्वाण – बौद्ध धर्म की चरम परिणति निर्वाण है। इसे जीवन में ही अनुभव किया जा सकता है। निब्बानंपरमं सुखं[34] अर्थात् निर्वाण परम सुख है तथा उसे प्राप्त कर परम–शांति प्राप्त होती है।[35]

निर्वाण के विषय में बुद्ध ने बताया है – भिक्षुओं वह एक आयतन है, जहाँ न तो पृथ्वी है, न जल, न तेज, न वायु, न आकाशानन्त्यायतन न विज्ञानानत्यायतन, न आकिंचन्यायतन, न नैव संज्ञानासंज्ञायतन है, वहाँ न यह लोक है, न परलोक, न चन्द्रमा, न सूर्य, न उसे मैं अगति कहता हूँ न गति कहता हूँ। न स्थित न च्युति कहता हूँ वह न कही ठहरा है न प्रवर्तित है न उसका आधार है यही दुःखोंका अंत है।[36]

महात्मा बुद्ध के उपदेशों का यही सार है।

3.4 बौद्ध-दर्शन के धार्मिक सम्प्रदाय

बौद्ध–सम्प्रदाय दो भागों में विभक्त हुआ –

---

33. भारतीय दर्शन –डॉ. देवराज पृ. 175.
34. धम्मपद – 15,8
35. थेरी गाथा (18) भिक्षु उत्तमा द्वारा प्रकाशित 1937.
36. उदान – भिक्षु जगदीश कश्यप, महाबोधि सभा, सारनाथ, 1941 पृ 109.

4.1 हीनयान – यह बौद्ध उपदेशों पर विश्वास रखता है। यह रूढ़िवादी सिद्धांत है। वह परम्पराओं का कट्टर समर्थक है। इसके प्रमुख सम्प्रदाय – वैभाषिक तथा सौत्रान्त्रिक हैं।[37]

4.2 महायान – हीनयान की संकीर्णताओं ने महायान को जन्म दिया। यह लोक–कल्याण, लोक–हित व परमार्थ के पथ को आलोकित करता है तथा सामूहिक मुक्ति पर बल देता है।

यह सिद्धांत सर्वसाधारण के लिए व्यावहारिक है। महायान के उपदेशों का पालन करते हुए अधिकसे अधिक लोग निर्वाण केअधिकारी हो सकते है। इसमें बुद्ध को ही ईश्वर मान लिया गया है। महायान के सम्प्रदाय – शून्यवाद (माध्यमिक), विज्ञानवाद (योगाचार) हैं।

अपने उदात्त विचारों के कारण ही महायान का प्रभाव परवर्ती साहित्य पर परिलक्षित होता है।

निष्कर्षतः बौद्ध धर्म ने जीवन के विविध फलकों को अनुप्राणित करने में बहुमूल्य योगदान दिया। इस आन्दोलन ने धार्मिक आडम्बरों, रूढ़ियों पर प्रहार कर व्यावहारिक धर्म की नींव डाली। कर्म की प्रधानता पर बल दे सामाजिक समानता का शंखनाद किया। जन–जीवन में सदाचार, सच्चरित्रता, नैतिकता के भावों को जगाकर लोक–कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया।

0.4 जैन-आन्दोलन

भारत वर्ष में जन साधारण के कल्याण एवं हिन्दू धर्म में निरन्तर बढ़ने वाली कुरीतियों, कर्मकाण्डों, कुप्रथाओं, छुआ–छूत, ऊँच–नीच आदि के विरूद्ध जैन आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ।

अरूढ़िवादी सम्प्रदायों के आचार्यो में महावीर स्वामी का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है। जैन धर्म के 24 तीर्थकर माने गये हैं।[38] छठी शताब्दी में 23 वे तीर्थकंर महावीर स्वामी जैन आन्दोलन के पुरोधा कहलाये।

4.1 जैन-धर्म के सिद्धांत एवं शिक्षाएँ

जैन धर्म में सम्पूर्ण सृष्टि को दुःख मूलक माना है। व्यक्ति माया–मोह में आसक्त रहता है इनके मुक्ति का मार्ग संन्यास है। सांसारिक बंधनों से मुक्ति को यहाँ निर्वाण कहा है।

4.1.1 स्यादवाद एवं सप्तभंगी नय – स्यादवाद जैन दर्शन का वह ज्ञान शास्त्रीय सिद्धांतहै, जिसके अनुसार व्यक्ति के निर्णय या परामर्श आंशिक रूप से सत्य होते हैं।[39]

37. प्राचीन भारत का इतिहास और संस्कृति – श्रीवास्तव पृ. 858.
38. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति – श्रीवास्तव पृ. 840.
39. भारतीय दर्शन – डॉ. आर. पी. शर्मा पृ. 68.

इसके अनुसार किसी वस्तु के अनेक पहलू हैं तथा व्यक्ति अपनी सीमित बुद्धि द्वारा केवल कुछ धर्मो (पहलू) को जान पाता है। पूर्ण ज्ञान तो 'केवलिन' के लिए ही संभव है।[40] अतः जैन धर्म में प्रत्येक निर्णय से पूर्व स्यात् लगाने को कहते हैं।

वस्तुओं को विभिन्न दृष्टिकोण से देखने पर विभिन्न पहलुओं का ही आंशिक ज्ञान होता है यही ज्ञान नय है।[41] ये 7 हैं, तभी ये सप्तभंगी नय कहलाते हैं। प्रत्येक नय के आरम्भ में स्यात् शब्द जोड़ दिया जाता है।

स्यात्वाद सापेक्षतावाद कहा जाता है। इसके अनुसार ज्ञान सदैव स्थान, काल एवं परिस्थिति के आधार पर ही सत्य होता है।[42]

4.1.2 आत्मा या जीव विषयक विचार – जैन दर्शन में आत्मा की एकता को अस्वीकार किया गया है। आत्मा न पूर्णतः नित्य ही है और न ही पूर्णतः परिवर्तनशील ही है। जीव या आत्मा स्थान घेरने वाला द्रव्य है जिसमें जीवन पाया जाता है। ये आत्मा व जीव को एक मानते हैं। जीव का आवश्यक गुण चैतन्य स्वीकार करते हैं।[43]

जैन दर्शन में पौधों में भी आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया है।[44]

4.1.3 मोक्ष-मार्ग – जैन दर्शन में कैवल्य की प्राप्ति ही जीवन का मूल लक्ष्य है। माया – मोह, तृष्णा मनुष्य को बाँधे रहती है तथा अज्ञान ही इन बंधनों का कारण होता है। ये सब मोक्ष मार्ग की बाधाएँ हैं।

जो जैसा कर्म करेगा उसी के अनुरूप उसे फल प्राप्तहोगा जैन धर्म 'संकल्प स्वातंत्र्य'[45] को स्वीकार करता है।

जैन दर्शन में बंधन दो प्रकार के हैं[46] – भव बंधन, द्रव्य बंधन।

बद्ध जीव एवं पुद्गल एक दूसरे में प्रवेश करते रहते हैं। इस प्रकार जीव और पुद्गलों का पारस्परिक प्रवेश ही बंधन है तथा जीव का पुद्गल से मुक्त होना मोक्ष है।

सांसारिक माया–मोह पर विजय ही मोक्ष है। मोक्ष–प्राप्ति हेतु आवश्यक है कि मनुष्य अपने पिछले कर्मफल का नाश करे और इस जन्म में किसी प्रकार का फल संग्रहित न करे।[47] इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु महावीर स्वामी ने तीन उपाय बताये हैं जो त्रिरत्न[48] कहलाते हैं। ये त्रिरत्न है–[49]

---

40. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति – पृ. 843.
41. भारतीय दर्शन – देवराज पृ. 130.
42. भारतीय दर्शन – डॉ. आर. पी. शर्मा पृ. 70.
43. भारतीय दर्शन – डॉ. शर्मा पृ. 72.
44. प्राचीन व मध्यकालीन भारत का सांस्कृतिक व राजनीतिक इतिहास – अग्रवाल व सेठी पृ. 199.
45. भारतीय दर्शन – डॉ शर्मा पृ. 74.
46. भारतीय दर्शन – धीरेन्द्र चट्टोपाध्याय पृ. 67.
47. प्राचीन व मध्यकालीन भारत का सांस्कृतिक व राजनीतिक इतिहास – पृ. 197.
48. भारत का इतिहास और संस्कृति (प्रथम भाग) – डॉ. राजशेखर व्यास पृ. 123.
49 उपरिवत्

3.1 सम्यक्–दर्शन – सत् में विश्वास को सम्यक् दर्शन कहा है।

3.2 सम्यक् ज्ञान – पूर्ण और सच्चा ज्ञान।

3.3 सम्यक् चरित्र – मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर ही सत्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

मोक्ष हेतु त्रिरत्नों के साथ पांचमहाव्रतों का पालन भी आवश्यक बताया गया है। जिन पर विचार पृथक् रूप से करेंगे।

4.1.4 पंच-महाव्रत

4.1 अहिंसा – जैन धर्म का प्रमुख सिद्धांत अहिंसा है। मन, वचन, कर्म से किसी के प्रति अहित की भावना नहीं रखना वास्तविक अहिंसा है।[50]

अहिंसा के पूर्ण पालन हेतु जैन धर्म में निम्न आचारों का निर्देश हुआ है–[51]

4.1.1 इर्या समिति – संयमसे चलना ताकि मार्ग में कीट पतंगों के कुचलने से हिंसा न हो।

4.1.2 भाषा समिति – संयम से बोलना ताकि कटु वचन से किसी को कष्ट न हो।

4.1.3 एषणा समिति – संयम से भोजन ग्रहण करना जिससे जीव हत्या न हो।

4.1.4 आदान निक्षेप समिति – किसी वस्तु को उठाके रखने में सावधानी बरतना।

4.1.5 व्युत्सर्ग समिति – मल–मूत्र का त्याग ऐसे स्थान पर करना जिससे जीव हत्या न हो।

4.2 सत्य – इसका आचरण निम्नवत है–[52]

2.1 सोच–विचार कर बोलना चाहिए (अनुषिम भाषी)

2.2 क्रोध आने पर शांत रहना (कोहं परिजानाति)

2.3 लोभ होने पर मौन रहना (लोभं परिजानाति)

2.4 हँसी में भी झूठ न बोलना (हासं परिजानाति)

2.5 भय में भी झूठ न बोलना (भयं परिजानाति)

---

50. भारत का इतिहास एवं संस्कृति – डॉ. राजशेखर व्यास पृ. 124.
51. प्राचीन भारत का इतिहास और संस्कृति – श्रीवास्तव पृ. 842.
52. उपरिवत्

4.3 अस्तेय – अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना ।[53]

4.4 अपरिग्रह – संग्रह न करना, अपरिग्रह धर्म है। मन, वचन, तथा शरीर से संचय वृत्ति का सर्वथा परित्याग अपरिग्रह है।[54]

4.5 ब्रह्मचर्य – उपर्युक्त चारों बातों का पालन तब तक नहीं होगा जब तक मनुष्य विषय–वासनाओं से दूर नहीं रहता है।

इसीलिए महावीर स्वामी ने पार्श्वनाथ के चार उपायों में ब्रह्मचर्य का पाँचवाँ उपाय जोड़, इन्हें त्रिरत्नों की प्राप्ति का साधन बताया।[55] किसी स्त्री से न बोलना, न देखना, न संसर्ग की सोचना, शुद्ध अल्प भोजन करना, वहाँ न जाना जहाँ कोई स्त्री अकेली रहे, ऐसे नियम महावीर ने ब्रह्मचर्य के अन्तर्गत भिक्षुओं को निर्देशित किये।[56] महावीर स्वामी ने गृहस्थों के लिए इन व्रतों का सरल ढंग से पालन का विधान रखा तभी गृहस्थ जीवन के संबंध में इन्हें अणुव्रत कहा गया।[57]

4.1.5 नारी समानता तथा स्वतंत्रता – महावीर स्वामी ने अपने संघ के द्वार नारी के लिए खोल दिये। उन्होंने कहा कि पुरूषों के समान नारी भी निर्वाण की अधिकारिणी है। भिक्षुणी बन संघ की सदस्य बनी नारी श्रवणी व जो गृहस्थी बनकर संघ में प्रवेश करती वह श्राविका कहलायी।[58]

4.2 जैन-धर्म का विभाजन

मतमतान्तरों के कारण यह धर्म दो भागों में विभक्त हुआ श्वेताम्बर एवं दिगंबर।

दिगम्बरों के अनुसार स्त्री जब तक पुरूष रूप में जन्म नहीं लेगी मोक्ष की प्राप्ति उसे नहीं होगी; किंतु श्वेताम्बरों ने स्त्री–पुरुष सभी के लिए मोक्ष–मार्ग खोल दिये।[59]

सारांशतः तदयुगीन धार्मिक रूढियों, कुरीतियों, कुप्रथाओं का खण्डन कर लोक कल्याण का पथ युग प्रवर्तक महावीर स्वामी ने आलोकित किया।

0.5 सिद्ध-साधना

सिद्ध सम्प्रदाय बौद्ध–धर्म का पर्याप्त रूपान्तरण है। बौद्ध धर्म से हीनयान एवं महायान का प्रादुर्भाव हुआ। समय के साथ उदात्त विचारधाराओं के महायान सम्प्रदाय में शैव–शाक्त योग के प्रभाव से इसमें तंत्रों का प्रवेश हुआ। जिससे मंत्रयान की प्रशाखा

---

53. भारत का इतिहास एवं संस्कृति – पृ. 124.
54. भारतीय दर्शन – डॉ. शर्मा – पृ. 76.
55. भारत का इतिहास और संस्कृति (भाग प्रथम) – व्यास पृ. 124
56. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति – श्रीवास्तव पृ. 843
57. उपरिवत्
58. प्राचीन व मध्यकालीन भारत का सांस्कृतिक व राजनीतिक इतिहास – पृ. 200
59. भारतीय दर्शन – डॉ. शर्मा पृ. 66

विकसित हुई और मंत्रयान से वज्रयान, सहजयान एवं सिद्ध सम्प्रदाय विकसित हुए।

0.5.1 **सिद्ध-सम्प्रदाय के सिद्धांत** – सिद्ध मूलतः क्रांतिकारी व्यक्तित्व के धनी थे। अतः उन्होंने तद्‌युगीन धार्मिक एवं सामाजिक रूढ़ियों तथा कुरीतियों को खुली चुनौती दी।

5.1.1 **विद्रोहात्मकता** – सिद्धों ने समाज में व्याप्त रूढ़ियों, बाह्याचारों, कर्मकाण्डों एवं प्रचलित मान्यताओं की कटु आलोचना की। इस विद्रोही जीवन में ही उन्होंने सहज जीवन का पक्ष लिया। इन्होंने अपनी मुद्राओंका नाम डोंबी, चांडाली आदि रख कर लोगों को चौका दिया। खुले में आम मुद्राओं का आलिंगन कर उन्होंने पुरानी मान्यताओं व मर्यादाओं का मिथ्या दम भरने वाले वर्ग को झकझोर दिया।

5.1.2 **पुस्तकीय ज्ञान का विरोध** – सिद्धों ने पुस्तकीय ज्ञान को कोरा बुद्धि विलास एवं ब्राह्मण वर्ग का उनके हित वर्धन का साधन मान कर उसका उपहास किया। साथ ही लोगों को उनके इस मिथ्या ज्ञान से सचेत रहने की सीख भी दे डाली। पुस्तकीय ज्ञान के स्थान पर उन्होंने स्वानुभूति को महत्त्व दिया।

5.1.3 **सहज जीवन पर बल** – सिद्ध सहज जीवन के पक्षधर थे। उन्होंने माना कि जीवन आनन्दपूर्ण है, अतः यहाँ सहज हँसते–गाते जीवन जीओं। उन्होंने राग से ही विराग की प्राप्ति का संदेश प्रेषित किया।

0.5.4 **समाज व धर्म में व्याप्त बाह्याचारों का खण्डन** – सिद्धों ने डंके की चोट पर एलान किया कि सभी बाह्याचार व्यर्थ हैं। वे तथ्यहीन व साधना से विरक्त करने वाले हैं। अतः उन्होंने तीर्थ, व्रत, उपवास, मूर्तिपूजा इत्यादि का निषेध किया।

तद्‌युगीन समाज में व्याप्त भेद–नीति के चक्र को भी इन सिद्ध–साधकों ने तोड़ा और निम्न समझी जाने वाली जाति कोअपने गले से लगाया। उन्होंने जातिगत भेद–भाव का बहुत स्पष्ट एवं निर्भीक ढंग से विरोध किया।

0.5.5 **नारी के प्रति उदात्त भाव** – सिद्धों ने नारी को अपनी साधना का परमावश्यक तत्त्व घोषित किया। उसे नैरात्य ज्ञान स्वरूप मानते हुए उसके प्रज्ञा रूप को हृदयंगम किया।

सारांशतः सिद्ध आन्दोलन का उद्देश्य तद्‌युगीन समाज में व्याप्त आचार की जटिलता और बुद्धि ज्ञान की गुह्यता का पटाक्षेप करके उसके स्थान पर सहज–स्वाभाविक वृत्तियों के अस्तित्व को अपनाकर महासुख की प्राप्ति था। इसके लिए उन्होंने विद्रोह एवं खण्डन की प्रवृत्ति को अपनाया।

0.6 नाथ-सम्प्रदाय

सिद्ध पंथ के वामाचारों की प्रतिक्रिया रूप में उसी के अन्तर्गत एक ऐसा वर्ग उठ खड़ा हुआ जिसने उसमें सुधार की चेष्टा की। गुरू गोरखनाथ ने वामाचारी– प्रवृत्ति

में आबद्ध हुए अपने गुरु मत्स्येन्द्र नाथ का उद्धार किया और नाथसम्प्रदाय को वाममार्गी साधना से विमुख कर अपना मार्ग अलग किया। वर्तमान में गोरखनाथ का मत ही नाथ–सम्प्रदाय के नाम से जाना जाता है।

6.1 नाथ-सम्प्रदाय के सिद्धांत

नाथ सम्प्रदाय सिद्ध समुदाय में विलासिता की प्रतिक्रिया का परिणाम था। अतः उसमें विरोध का उग्र होना स्वाभाविक है। उनका विरोध बहुआयामी है। नाथ–सम्प्रदाय के सिद्धांतों का विस्तार से विवेचन आगामी अध्याय में किया गया है। अतः यहाँ संक्षिप्त चर्चा अपेक्षित होगी।

6.1.1 बाह्याडम्बरों का खण्डन – तत्कालीन समाज में व्याप्त बाह्याडम्बर आचरणहीनता, ब्राह्मणवाद,अंधविश्वास, कुप्रथाओं के प्रति नाथों ने खण्डनात्मक दृष्टिकोण को अपनाया।

6.1.2 नारी के प्रति दृष्टिकोण – नाथ साधकों ने नारी के वासनात्मक एवं मायिक स्वरूप की घोर निन्दा करतेहुए उसे साधना मार्ग की बाधा माना। साथ ही नारी के मातृ स्वरूप के प्रति अपना मस्तक झुका कर उसे गौरवान्वित किया।

6.1.3 गुरू की महिमा – 'गुरू कीये लाभे है अवधू' द्वारा गुरू के महत्त्व का निरूपण किया। गुरू को मोक्ष दिलाने वाला कहकर गुरू के प्रति समर्पण भाव को जगाया।

6.1.4 सहज एवं उदात्त जीवन – नाथों ने हँसते–खेलते सहजता के साथ जीवन जीने की शिक्षा प्रदान की।

6.1.5 सामाजिक जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा – तद्युगीन दिशाभ्रांत युग को राह दिखाने हेतु नाथों ने समाज से लुप्त होते बहुमूल्य जीवन–मूल्यों–सत्य, अहिंसा, दया, दान, धर्म, प्रेम एवं करूणा का संदेश प्रेषित किया।

6.1.6 हठयोग-साधना – नाथ योगियों की साधना का मूलाधार हठयोग है। नाथ साधकों ने ब्रह्म का ज्ञान हठयोग के माध्यम से किया। गोरखनाथ ने षडांग योग का उपदेश दिया।

6.1.7 इन्द्रिय-निग्रह, प्राणसाधना व मन-साधना – नाथों की साधना त्रिमुखी है। जिसमें इन्द्रिय–निग्रह, प्राण–साधना एवं मन–साधना पर विशेष बल दिया गया।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि नाथ–सम्प्रदाय ने नैतिकता व संयम पर विशेष बल देते हुए सहज एवं उदात्त जीवन पद्धति का पक्ष लिया एवं तद्युगीन समाज में व्याप्त आडम्बरों, रूढ़ियों, मिथ्याचारों का कड़े शब्दों में विरोध किया।

0.7 रसेश्वर-मत

रसेश्वर–सम्प्रदाय वस्तुतः शैव–सम्प्रदाय ही है। रस को ईश्वरीय अभिधान देने के कारण ही यह रसेश्वर दर्शन कहलाया। इस दर्शन की आधारशिला तैत्तिरीय उपनिषद का निम्न श्लोक माना जाता–

रसौवै सः । रसंहयेवायंलब्धाऽऽनन्दी भवति। [60]

रसेश्वर दर्शन का लक्ष्य साधक को दिव्य शरीर की उपलब्धि कराना है। इनका मत है कि रूग्ण शरीर से ब्रह्म साक्षात्कार सम्भव नहीं। अतः साधक को अपने नश्वर शरीर को दिव्य अमर बनाना चाहिए। इस प्रकार देह को स्थिर, वज्रमय, दृढ़, नित्य बनाना ही रसेश्वर दर्शन का परम लक्ष्य है। ये रसायनके प्रयोग द्वारा नश्वर शरीर को अमर बनाने के लिए कृतसंकल्प हैं।

ये चात्यक्य शरीरा हरगौरी सृष्टिजाँ तनु प्राप्ताः।

मुक्तास्ते रससिद्धा मंत्रगणः किंकरो येषाम्। (रस हृदय– 1/7)

अर्थात् पारद शिव का वीर्य एवं अभ्रकभगवती का रज है। ये सामान्य धातु नहीं वरन् विशिष्ट है। इनके समन्वित प्रयोग से शरीर नाशवान न रहेगा बल्कि दिव्य होगा। इन दोनो का समन्वय मृत्यु का सदा के लिए अंत कर, शरीर को अमर बनाता है।

सिद्ध–साहित्य में इसकी विधि बताई हैं – पहले रस (पारे) का परिशोधन करना चाहिए। पारा मूर्छित और बद्ध दो प्रकार का होता है। जिसमें आर्द्रता, प्रगाढ़ता और चमक होती है वह मृत पारा है। मूर्छित पारे के परिशोधन की अठारह विधियाँ गोविन्द भागवत तथा सर्वज्ञ रसेश्वर द्वारा बताई गई हैं। इस विधि में पारा और वायु तत्त्व प्राण का व्यवहार होता है। दोनों का उचित मिश्रण रोगों का शमन करता है, मृत्यु का अवरोध करता है। बद्ध पारा प्राण में बिद्ध होने पर उड्डयन या उड़न की सिद्धि प्रदान करता है।[61]

सायण माधव–कृत सर्वदर्शन–संग्रह में इस सम्प्रदाय को दर्शन का विशेष सम्प्रदाय बताते हुए इसे रसेश्वर दर्शन नाम दिया है।

रसेश्वर दर्शन के साधक आत्मा का इसी शरीर में दर्शन करना जीवन का लक्ष्य मानते हैं। तभी वे वायु के नियंत्रण तथा रस के वैज्ञानिक प्रयोग से काया को अमर बनाना चाहते हैं। सिद्धनाथों में भी सोमरस एवं हठयोग (वायु निरोध) का विशिष्ट महत्त्व बताया गया है। सम्भवतः ऐसा मानना रसेश्वर दर्शनका प्रभाव ही है।

योग दर्शन में इस सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव रहा है।

0.8 दक्षिण का भक्ति-आन्दोलन

भारतीय भक्ति आन्दोलन का विस्तृत कलेवर रहा है। मध्यकाल में कई धार्मिक विचारकों तथा सुधारकों ने भारत के सामाजिक–धार्मिक जीवन में सुधार लाने के उद्देश्य से भक्ति को साधन बनाकर एक आन्दोलन प्रारम्भ किया जो, 'भक्ति आन्दोलन' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[62]

60. तैत्तिरीय उपनिषद् 2/7/1
61. सिद्ध साहित्य – धर्मवीर भारती, पृ. 127
62. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति – के. सी. श्रीवास्तव, पृ. 833

भारत में भक्ति की उत्पत्ति को लेकर विचारकों में मतभेद रहे हैं। पद्म पुराण में भक्ति की उत्पत्ति दक्षिण में बताते हुए कहा है –

उत्पन्ना द्राबिड़े चाहं मर्णाहि बुद्धिमागता।

स्थिता किंचिन्महाराष्ट्रे गुर्जर जीर्णता गाता।।– (पद्म पुराण)

"भक्ति द्रविड उपजी लाये रामानन्द, प्रकट कियो कबीर ने सात द्वीप नौ खण्ड।" वाली उक्ति भी भक्ति का आरम्भ दक्षिण में होना ही सिद्ध करती है।

8.1 आलवार एवं नयनार भक्तों का परिचय

दक्षिण भारत में भक्ति के विकास में आलवार एवं नयनार संतों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इनका उदय और विकास युग दूसरी शताब्दी से लेकर दसवी शताब्दी तक माना जाता है।[63] दक्षिण में शैव मत को नयनारों ने व्यापक बनाया इनकी संख्या 64 थी। आलवार संतों ने दक्षिण में वैष्णव भक्ति को विकसित करने में अपना योग दिया। इन आलवार संतों की संख्या बारह मानी जाती है। इनमें से अनेक भक्त उन जातियों में उत्पन्न हुए थे, जिन्हें अस्पर्श कहा जाता है।[64]

8.2 आलवार एवं नयनारों का योगदान

छठी और सातवीं शताब्दियों में तमिल भक्तिवाद ने बहुत अधिक लोकप्रियता प्राप्त की और यह भक्तिवादिता 'नयनारों' (शैव संतो) तथा 'आलवारों' (वैष्णव संतो) के पदों में अक्षुण्य रही। शिव और विष्णु के पद दो अलग–अलग संग्रहों 'तिरुमुरई' तथा नलंयिर प्रबंधम' में संकलित है।[65]

दक्षिण के इन संतों ने अपनी रचनाएँ तमिल भाषा में लिखी। तथा इन्हें तमिलवेद[66] नाम से भी पुकारा गया। ये ग्रंथ वेद के सदृश आदरणीय है। इन संतों ने लोगों में भक्ति की बुझती हुई लौ को पुनः उद्दीप्त कर भगवत् प्रेम को जगाया। ये संत मिथ्यावादी न थे। ये स्वयं निम्नजाति से सम्बन्धित थे। ये संत समाज में व्यवस्थित जातीयभेदभावों को अस्वीकार करते हैं एवं भेद–भावों, ऊँच–नीच सम्बन्धों की निन्दा करते हैं।

आलवार संतों की सबसे प्रमुख विशेषता उनकी भक्ति भावना थी। उनकी भक्ति में भावों की एक विचित्र तीव्रता, समर्पण की एक अनोखी लालसा पाई जाती है।[67]

आलवार वैष्णव भक्त थे। आलवारों की भक्ति में दास्य, वात्सल्य तथा कांता तीनों भावों की प्रधानता है। भगवद् भक्तों की सेवा को भी वे भगवान की सेवा का ही एक

---

63. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठ भूमि – त्रिगुणायत, पृ 346.
64. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रंथावली – 3, पृ. 72.
65. भारत का इतिहास – रोमिला थापर, पृ. 170.
66. भागवत सम्प्रदाय – बलदेव उपाध्याय, पृ. 187.
67. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि – त्रिगुणायत, पृ. 347.

अंग मानते हैं और परमेश्वर को वासुदेव, नारायण, भगवान राम, कृष्ण आदि नामों से पुकारते है।[68]

आलवार संतों की भक्ति–भावना में प्रेम एवं श्रद्धा की अधिकता थी। वे स्वयं को ईश्वर का सेवक मानकर ईश्वर की भक्ति करते थे।

उनके जीवन का एकमात्र सार प्रपत्ति या विशुद्ध भक्ति है। जिस पर ब्राह्मण, शूद्र, पुरूष तथा स्त्री सबका समान अधिकार है। रागानुराग भक्ति में आलवार अग्रगण्य हैं। भक्त की विविध मनोदशाएँ – आत्म–समर्पण, अनुतप्त हृदय की विह्वलता, भगवान की महिमा का स्तवन, विरह की वेदना, प्रेम में मग्नचित्त का आनन्द, गोपी भाव की मादकता, प्रपत्ति में बाह्य अवलम्बनो का तिरस्कार – इनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है।[69]

इस प्रकार इन संतों ने भक्ति के विकास के साथ ही समाज में व्याप्त रूढ़ियों, ऊँच–नीच, भेद–भावों को अस्वीकार करते हुए भक्ति को सभी के लिए ग्राह्य बनाया। दक्षिण के इन संतों ने वैष्णव एवं शैव मतों को लोकप्रियता प्रदान की।

इसी प्रकार ब्रह्म तटस्थ लक्षणधारण कर जगत् की रचना करता है तथा सगुण हो जाता है; किन्तु परमार्थतः वह निर्गुण और निर्विकार ही है। यही उसका स्वरूप लक्षण है, जो किसी भी प्रकार की उपाधियों के द्वारा बाधित नहीं किया जा सकता।[70]

0.9 चार वैष्णव आचार्य

बारहवीं शताब्दी के आसपास दक्षिण में सुप्रसिद्ध शंकराचार्य के दार्शनिक मत अद्वैतवाद की प्रतिक्रिया शुरू हो गई।[71] अब शंकर का अद्वैतवाद सामान्य जन के लिए ग्राह्य नहीं हुआ। दक्षिण के आलवार भक्तों की भक्ति परम्परा का उत्तरदायित्व दक्षिण के वैष्णव आचार्यो ने निभाया। चार प्रबल सम्प्रदाय अद्वैतवाद के विरोध में आर्विभूत हुए, जो आगे चलकर सम्पूर्ण भारतीय साधना के रूप को बदल देने में समर्थ हुए।[72]

इन आचार्यों ने वेदान्त सूत्र की नवीन प्रस्तुति कर भक्ति परम्परा को दार्शनिक स्वरूप दिया। इनके मतों का विवेचन इस प्रकार है –

9.1 रामानुजाचार्य

वैष्णव भक्ति के जन्मदाता यमुनाचार्य माने जाते हैं। ये रामानुजाचार्य के आदि गुरू थे। रामानुजाचार्य चार वैष्णव आचार्यों में अग्रणी हैं। वे श्री रंग के मन्दिर में उपदेश दिया करते थे।[73] इनका जन्म तिरूपति के निकट 1016 ई. में हुआ।[74]

---

68. भक्ति का विकास – मुंशीराम शर्मा, पृ 360
69. मध्यकालीन भक्त कवियों की ब्रह्म परिकल्पना – प्रेम सागर, पृ 32.
70. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति – श्रीवास्तव, पृ. 894
71. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली – 3 पृ. 73 (हिन्दी साहित्य की भूमिका)
72. उपरिवत्
73. अद्भुत भारत – ए. एल. बाशम पृ. 240
74. मध्यकालीन भारत (प्रथम भाग) बी. के. शर्मा पृ. 313

रामानुजाचार्य ने श्री सम्प्रदाय की स्थापना की। इनके द्वारा प्रतिपादित मत विशिष्टाद्वैतवाद कहलाया।[75] इनके अनुसार यद्यपि ईश्वर ही एकमात्र पारमार्थिक सत्ता है, तथापि वह अचेतन प्रकृति तथा चेतन आत्मा से विशिष्ट अथवा समन्वित है। इस कारण इनका मत विशिष्टाद्वैतवाद कहा जाता है।[76] इनके दार्शनिक मत का विवेचन इस प्रकार है –

9.1.1 ब्रह्म – ईश्वर को सगुण मान उसके इसी स्वरूप को लोकप्रिय बनाने का प्रयास इन्होंने किया तथा इसे मोक्ष मार्ग बताया। ये ब्रह्म को ईश्वर कहते हैं। ईश्वर क्षमाशील, दयालु, उदार–हृदय, भक्त–वत्सल, शरणागत रक्षक, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिशाली आदि गुणों से युक्त है। इन्होंने 'नारायण' को ईश्वर माना है।

9.1.2 आत्मा – आचार्य जी के अनुसार आत्मा और परमात्मा एक रूप नहीं है यद्यपि आत्मा परमात्मा से उसी प्रकार निकलती है जैसे अग्नि से चिनगारी।[77] ब्रह्म जीवों में निवास करता है, अतः सभी जीवों पर उसी का नियंत्रण है। बद्ध जीव, मुक्त–जीव, नित्य जीव के रूप में वे जीवों को तीन श्रेणियों में विभक्त करते हैं।[78]

9.1.3 जगत् – जगत् का निर्माता ईश्वर है। इनमें कार्यकारण का सम्बंध है। ब्रह्म के समान संसार भी सत्य है मिथ्या नहीं।

9.1.4 मोक्ष – वे मोक्ष को जीवन का अन्तिम लक्ष्य स्वीकारते हैं। वे मोक्ष प्राप्ति का सीधा साधन ज्ञान को मानते हैं; किन्तु ज्ञान का तारतम्य भक्ति से जोड़ते हैं। कर्म व ज्ञान से भक्ति का उदय होता है। मोक्ष ईश्वर की कृपा से संभव है और कृपा भक्ति के माध्यम से मिलती है।[79] अतः साधक को भक्ति के माध्यम से ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पित होना चाहिए इसी का नाम शरणागति है।[80]

इस प्रकार रामानुजाचार्य ने मोक्ष को सर्वसाधारण के लिए सुलभ बनाया। साथ ही प्रपत्ति मार्ग के माध्यम से उच्च वर्ग के संग निम्न वर्गों, निम्न जातियों को वैष्णव धर्म में आने का अधिकार प्रदान किया।

9.2 मध्वाचार्य –

दक्षिण भारत के बोलिग्राम में संवत् 1256 में मध्वाचार्य का जन्म हुआ।[81] ब्रह्म सम्प्रदाय के संस्थापक मध्वाचार्य पहले शैव थे, बाद में वैष्णव हो गये।[82] इनका मत

75. मध्यकालीन भारत– शर्मा – पृ. 222
76. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति – श्रीवास्तव पृ. 900
77. मध्यकालीन भारत – शर्मा – पृ. 313
78. भारतीय दर्शन – आर. पी. शर्मा, पृ.181
79. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, श्रीवास्तव पृ. 908
80. उपरिवत् – पृ. 909
81. विश्व धर्म दर्शन – साँवलिया बिहारी लाल वर्मा पृ. 285
82. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली 3, पृ. 77

द्वैतवाद कहलाया। इन्होंने विष्णु को जगत् का नियंता बताया। आरम्भ में एक मात्र अद्वितीय स्वरूप भगवान नारायण थे तब न ब्रह्म थे, न शंकर। नारायण सर्वगुण–सम्पन्न, स्वतंत्र तथा आनन्द स्वरूप हैं उन्हीं के शरीर से ब्रह्मादि देव एवं सृष्टि उत्पन्न हुई।[83]

उनकी उपासना के तीन अंग हैं– अंकन, नामकरण एवं भजन।[84]

वे ईश्वर दर्शन को मानव का परम लक्ष्य मानते हैं। ज्ञानसे भक्ति व भक्ति से मोक्ष मिलता है, ऐसी इनकी धारणा है। अतः ये भी मोक्ष का साधन भक्ति को सिद्ध करते हैं। वे भक्ति की दस विधियाँ बताते है – सत्य, हित वाक्य बोलना, सूतपात को दान, प्रिय भाषण, स्वाध्याय, विपन्न का उद्धार, शरणागत रक्षा, दरिद्र का दुःख दूर करना, भगवान का दास बनने की इच्छा, गुरू व शास्त्रों का विश्वास।[85]

9.3 निम्बकाचार्य

इनका जन्म 1162 में निजाम राज्य (दक्षिण हैदराबाद) में हुआ।[86] इन्होंने सनकादि सम्प्रदाय बनाया तथा इनका मत द्वैताद्वैतवाद कहलाया।[87]

ये कृष्ण के उपासक थे तथा कृष्ण को ईश्वर का अवतार मानते थे। इनके अनुसार जीव एवं ईश्वर व्यवहार में भिन्न तथा वैसे अभिन्न है। इन्होंने निर्गुण ब्रह्म के सिद्धांत का खण्डन किया।[88]

ये जगत् को मिथ्या नहीं मानते। जीव कृष्ण के अनुग्रह द्वारा ही उनकी भक्ति से मोक्ष प्राप्त कर सकता है। अर्थात् वे भक्ति को मुक्ति का साधन सिद्ध करते हैं।

9.4 विष्णु-स्वामी

दक्षिण भारत के एक अन्य भक्त आचार्य विष्णु स्वामी हैं। विष्णु स्वामी द्वारा प्रवर्तित रूद्र सम्प्रदाय असल में वल्लभाचार्य के प्रवर्तित सम्प्रदाय के रूप में ही जीवित है। इन्होंने भक्ति को मुक्ति से अधिक महत्त्व दिया है।[89]

निष्कर्षतः भक्ति को सबल बनाने में इन चार आचार्यों ने अपना अविस्मरणीय योगदान प्रदान किया।

---

83. विश्व धर्म दर्शन – पृ. 285
84. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली–3, पृ. 77.
85. उपरिवत्
86. विश्व धर्म दर्शन – पृ. 286
87. मध्यकालीन भक्त कवियों की ब्रह्म परिकल्पना – प्रेम सागर पृ. 33
88. मध्यकालीन भारत – हरिशंकर शर्मा पृ. 224.
89. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली भाग– 3 पृ. 78

0.10 रामानन्द का भक्ति-आन्दोलन

हिन्दी साहित्य में भवित्त काल के कर्णधार एवं युगप्रवर्तक आचार्य प्रवर स्वामी रामानन्द का विशिष्ट स्थान है। विक्रम संवत् 1356 में कान्यकुब्ज कुल में स्वामी रामानन्द का जन्म हुआ।[90]

विशिष्टाद्वैतवादी राघवानन्द रामानन्द के गुरु थे। गुरु–शिष्य में मधुर संबंध अधिक दिनों तक स्थायी न रह सके और किसी अनुशासन विषयक बात को लेकर रामानन्द का अपने गुरू से मतभेद हो गया। मतभेदोपरान्त वे प्रभावशाली एवं सम्पद्शाली सम्प्रदाय के भावी गुरू बनने का विचार सहज ही त्याग, उत्तर भरत की ओर आए। रामानन्द ही थे जो दक्षिण में जन्मी भक्ति को अपने साथ उत्तर भारत लाए तथा यहाँ उसका प्रचार–प्रसार किया। 'सच पूछा जाए तो मध्ययुग की समग्र स्वाधीन चेतना के गुरू रामानंद ही थे।[91]

रामानन्द भक्ति काल के कर्णधार थे, युग प्रवर्तक थे। युग प्रवर्तक वही हो सकता है जो जीर्ण पुरातन के ध्वंसावशेष पर नव निर्माण कर सके। रामानन्द ने मध्यकालीन विषम विकट परिस्थितियों का शौर्य से सामना करने के लिए समाज में अपनी उदारवादी विचारधाराओं को फैलाया। रामानन्द ने अपने उदार मानवतावादी विचारों की सहायता से तद्युगीन संकीर्ण विचारधाराओं के बंधनों को शिथिल किया।

रामानन्द की उदारता का प्रथम परिचय तो उनकी उपासना पद्धति द्वारा मिलता है। रामानन्द ने विशिष्टाद्वैतवाद के सिद्धांतों को अपनाया, किन्तु अपनी स्वतंत्र चिन्तन प्रवृत्ति के कारण उन सिद्धांतों को भिन्न दिशा में मोड़ा जो युगानुकूल था। रामानन्द ने अपनी उपासना का आधार श्रीसम्प्रदाय के विष्णु को न मान, विष्णु के अवतार श्री राम को माना। रामानन्द द्वारा गठित सम्प्रदाय रामानन्द सम्प्रदाय कहलाया। रामोपासना का वास्तविक प्रवर्तन रामानन्द ने किया।[92]

रामानन्द के समय समाज में विषमता व्याप्त थी। अस्थिर एवं क्षुब्ध धार्मिक वातावरण को स्थिर बनाने के लिए उन्होंने राम को आराध्य बनाया। समय की माँग के अनुसार ही रामानन्द ने दुष्टों के संहारक श्री रामचन्द्र के लोक–रक्षक स्वरूप की स्थापना की जो हतोत्साहित जनता में वीरता, साहस, त्याग और कष्टसहिष्णुता एवं उत्साह का संचार कर सके।

रामानन्द द्वारा रचयित ब्रह्मसूत्र की टीका 'आनन्द भाष्य' में उन्होंने ब्रह्मवाच्य श्री राम को ठहराया और उसी को सगुण तथा निर्गुण दोनों माना है।[93] इस तरह ब्रह्म

---

90. उत्तरी भारत की संत परम्परा – परशुराम चतुर्वेदी – पृ. 222.
91. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रथावली – भाग 3 (हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ. 73
92. संस्कृति के चार अध्याय – दिनकर, पृ. 318.
93. संस्कृति के चार अध्याय – दिनकर, पृ. 318.

को श्री राम मानते हुए स्वामी रामानन्द ने उत्तर–भारत में राम भक्ति की सगुण–निर्गुण नामक कालजयी पावन मंदाकिनी प्रवाहित की। रामानन्द के प्रयासों ने ही दक्षिण की वैष्णव भक्ति को उत्तर में जनप्रिय बनाया।

उदारवादी विचारों के धनी युगप्रवर्तक स्वामी रामानन्द ने भक्ति को सर्वजनीय बनाया। 'रामानन्द ने देखा कि भगवान् के शरणागत होकर जो भक्ति के पथ में आ गया उसके लिए वर्णाश्रम का बंधन व्यर्थ है, इसीलिए भगवद् भक्त को खान–पान के झंझट में नहीं पड़ना चाहिए। यदि ऋषियों के नाम पर गोत्र एवं परिवार बन सकते हैं तो ऋषियों के भी पूजित परमेश्वर के नाम पर सबका परिचय क्यों नहीं दिया जा सकता है? इस प्रकार सभी भाई–भाई हैं; सभी एक जाति के हैं। श्रेष्ठता भक्ति से होती है जन्म से नहीं।[94] (श्री क्षितिमोहन सेन कृत 'भारतीय मध्ययुगीन साधना से उद्धत) ऐसे मानवतावादी विचारों के प्रबल पोषक रामानन्द ने तद्‌युगीन जटिल जातीय बंधनों को शिथिल कर निम्न समझी जाने वाली जातियों एवं वर्णों के लिए युगों से बंद भक्ति के कपाट खोल दिए। उन्होंने जाति–वर्णों के भेदों को दूर कर मनुष्य मात्र की एकता की ओर जन सामान्य का ध्यान आकृष्ट किया।

रामानन्द ने मात्र हिन्दुओं में जाति एवं वर्णों के भेद–भाव को निन्दनीय नहीं माना; बल्कि तद्‌युगीन हिन्दु–मुसलमानों में जो भेद दृष्टि समाज में पनप रही थी, उसे भी मिटानेका प्रयास किया। उन्होंने रामोपासक वैरागियों का संगठन एक स्वतंत्र सम्प्रदाय के रूप में किया और उस सम्प्रदाय में प्रवेश पाने का अधिकार उन्होंने उन वैष्णवों को भी दिया जो जन्मना शूद्र अथवा मुसलमान थे।[95] रामानन्द संकीर्ण दायरों को तोड़ उदारवादी विचारों में विश्वास रखते थे। तभी उन्होंने ऊँच–नीच, जातिगत भेदभाव एवं हिन्दू–मुसलमानों के (साम्प्रदायिक–भेद) भेद–भाव की बेड़ियों को काट समानता एवं मानवता का संदेश दिया।

रामानन्द मात्र भक्त, परमज्ञानी ही नहीं थे, वरन् रामानन्द ज्ञान, भक्ति, योग एवं वैराग्य – इन चारों के मिलन बिन्दु थे।[96] इस प्रकार रामानंद में ज्ञान, भक्ति, योग एवं वैराग्य का समन्वय देखा जा सकता है।

रामानन्द के शिष्यों की संख्या बारह मानी जाती है। उनके अधिकांश शिष्य निम्न जातियों में उत्पन्न हुए थे। उनके बारह शिष्य है – रैदास (चमार), कबीर (जुलाहा), धन्ना (जाट), सेना (नाई), पीपा (राजपूत), भवानंद, सुखानंद, आशानंद, सुरसुरानन्द, परमानन्द, महानन्द तथा श्री आनन्द।[97] रामानन्द ने अपने किसी भी व्यक्तिगत मत को अपने शिष्यों पर नहीं लादा। उनके अनुसार 'गुरू को आकाशधर्मी होना चाहिए, जो

94. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली – भाग 3, पृ. 75.
95. संस्कृति के चार अध्याय – दिनकर पृ. 318.
96. हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि – गोविंद त्रिगुणायत पृ. 24
97. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली – 3 पृ. 74

पौधे को बढ़ाने के लिए उन्मुक्तता दे, न कि शिलाधर्मी जो पौधे को अपने गुरूत्व से दबाकर उसका विकास ही रोक दे।[98] अपनी कथनी के अनुरूप करनी करने वाले स्वामी रामानन्द ने आकाशधर्मी गुरू का उत्तरदायित्व निभाया।

जब रामानन्द स्वर्गीय हुए तो उनके अनुयायी दो दलों में बंट गए। एक धारा उन भक्तों की बनी जो विशिष्टाद्वैत को मानते थे एवं जिनका विश्वास वेद और वर्णाश्रम धर्म में भरपूर था। गोस्वामी तुलसीदास एवं नाभादास इसी धारा के भक्त कवि थे। इसके विपरीत दूसरी धारा के भक्त वे हुए जो वेद और वर्णाश्रम के विरूद्ध थे जिनका विश्वास विशिष्टाद्वैत में नहीं था; किंतु जो रामानन्द के भक्ति धर्म को आदर्श समझते थे।[99]

रामभक्ति की पावन धारा को उत्तर भारत में प्रवाहित करने का श्रेय रामानन्द को ही है। उन्होंने भक्ति को भेदभावों के संकीर्ण दायरे से मुक्त कर सर्वजनीय एवं सर्वसुलभ बनाया। मानवतावादी विचारों के प्रतिष्ठापक रामानन्द ने उत्तर भारत में सशक्त भक्ति आन्दोलन को जन्म दिया। उनके उन्मुक्त, उदारवादी एवं मानवतावादी विचारों के बीज उनके प्रधान शिष्यों के माध्यम से विशाल कल्पतरू में परिणित हो, युगों से दग्ध मानवता को भव–संताप से मुक्ति दिला, शीतलता प्रदान कर रहे हैं।

0.11 सूफी-इस्लामी चिन्तन

सूफी इस्लामी चिन्तन को जानने से पूर्व इस्लाम धर्म को जानना अत्यावश्यक है। अतः यहाँ सर्वप्रथम इस्लाम का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है –

11.1 इस्लाम-धर्म

विश्व के प्राचीन धर्मों में इस्लाम महत्वपूर्ण धर्म है। इस्लाम के प्रवर्तक मुहम्मद साहब[100] थे।

सांसारिकता से विरक्त हो मुहम्मद साहब ने चिंतन–मनन किया। चालीस वर्ष की आयु में इक्रा विइस्मिरब्विक से लेकर मरने के सत्रह दिनों पूर्व रब्विकल् अकम् (प्रभु तू अति महान है) वाक्य के उतरने तक जो दिव्योपदेश तेईस वर्षों में मुहम्मद साहब द्वारा प्रचारित हुए उन्हीं के संग्रह का नाम कुरान पड़ा और यही इस्लाम धर्म का स्वतः प्रमाण ग्रंथ है।[101]

11.2 इस्लाम के सिद्धांत

मुहम्मद साहब के उपदेश ही इस्लाम के सिद्धांत है।

98. वही
99. संस्कृति के चार अध्याय – दिनकर पृ. 319.
100. विश्व धर्म संग्रह – श्री सांवरिया बिहारी लाल वर्मा पृ. 251
101. उपरिवत् – पृ. 253

11.2.1 एकेश्वरवाद

इस्लाम ईश्वर की एकता में यकीन रखता है। इसका मूल सिद्धांत 'लाइलाह इल्लिलाह' है[102] अर्थात् सृष्टि का सबसे बड़ा एक मात्र 'देवता अल्लाह है तभी कहा भी गया है – ला इलाहे इल्लीलाह मुहम्मद रसूल इल्लाल।

अर्थात् अल्लाह का कोई अल्लाह नहीं और मुहम्मद ही उसका रसूल और पैगम्बर है।

इस प्रकार अल्लाह सर्वशक्ति शाली, सर्वज्ञ, असीम, करूणा का सागर है।[103] वही संसार का नियंता है, सभी मानव उसी की संतान है।

11.2 कर्मवाद

इस्लाम में कर्मवाद को मान्यता दी गई है यह भले कर्मों की ओर उन्मुख होने की बात कहता है। इसमें पुनर्जन्म का सिद्धांत मान्य नहीं है।[104]

11.3 समानता एवं नैतिकता का पक्ष

इस धर्म मे मनुष्यों की समानता पर जोर दिया जाता है। इसकी नैतिक शिक्षाएँ क्षमाशीलता, ईमानदारी, दूसरों की भलाई के लिए कार्य करना, निर्धनों की सहायता व इसके लिए जकात देना, प्रतिशोध न लेना, संयम से काम लेना आदि है।[105]

संक्षेप रूप से इस्लामी सिद्धांतों के चार स्कन्ध है –

1. सोम (रमजान के मास में उपवास)
2. सलात (नमाज)
3. हज्ज (मक्का–मदीना की यात्रा)
4. जकात (दान)

इस्लाम में स्वर्ग–नरक, न्याय दिवस (कयामत का दिन) पुनर्जन्म में अविश्वास, अल्लाह की सर्वव्यापकता, उसकी एकता आदि अनेक बातों का उल्लेख किया है।

0.12 सूफी वाद

सूफीवाद इस्लाम के अन्तर्गत एक सुधारवादी आन्दोलन के रूप में ईरान में प्रारम्भ हुआ। 13वीं–14 वीं शताब्दी तक भारत में इस्लाम धर्म के साथ सूफी–सम्प्रदाय भी व्यापक तौर पर स्थापित हुआ।[106]

---

102 विश्व धर्म संग्रह – श्री सांवरिया बिहारी लाल वर्मा– पृ. 254

103. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति – पृ. 912

104. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति – पृ. 912

105 उपरिवत्

106 भारत का इतिहास – कामेश्वर प्रसाद भारती भवन पटना पृ. 162

सूफी–संतों ने हिन्दू–मुस्लिम सामंजस्य स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस्लाम के अतिरिक्त इस पर हिन्दू वेदान्त, बौद्ध, ईसाई आदि मतों के सिद्धांतों का भी व्यापक प्रभाव पड़ा।[107]

सूफीवाद ऐसी धारा थी जिसने अपने मार्ग में आने वाली विविध विचारधाराओं को आत्मसात कर एक नवीन उदार दृष्टिकोण का प्रचार–प्रसार किया।

12.1 सूफी शब्द का अर्थ

सूफी शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानों मे मतैक्य का अभाव है। यथा –

1.1 सूफी शब्द अरबी भाषा के सफा से बना, सफा अर्थात् पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले साधु सूफी नाम से विख्यात हुए।[108]

1.2 सूफी अर्थात वह व्यक्ति जो मनसा, वाचा, कर्मणा से पवित्र हो।[109]

अतः सूफी ब्रह्मवादी संत–फकीर थे, जो आम जनता को रहस्यात्मक उपदेश देते थे तथा सरल–सादगी पूर्ण जीवन जीते थे।

12.2 सूफी सम्प्रदायों का भारत में विकास

सूफीवाद भारत में चार सम्प्रदायों के माध्यम से निरन्तर प्रचारित होता रहा। यथा –

2.1 चिश्ती सम्प्रदाय

2.2 सुहरावर्दी सम्प्रदाय

2.3 कादरी सम्प्रदाय

2.4 नक्शबंदी सम्प्रदाय

12.3 सूफी-मत के सिद्धांत

3.1 ब्रह्म – सूफी मत में परमात्मा के लिए 'हक'[110] शब्द का प्रयोग किया गया है। ये ब्रह्म की एकता में विश्वास करते हैं। वे मानते हैं कि इस दृश्यमान जगत् में परिव्याप्त एक मात्र वही सत्य है उसी की एक मात्र सत्ता है जो पहले भी थी व भविष्य में भी रहेगी।[111]

सूफी मत में ब्रह्म को अद्वैत रूप में स्वीकार किया है। वह सर्वव्यापी, सर्वस्रष्टा, सर्वज्ञाता है। वह निर्गुण, निराकार, ज्योतिर्मान अद्भुत शक्ति सम्पन्न, सृष्टि के कण–कण में व्याप्त, अरूप, अवरण, तथा संसार का सृजनकर्त्ता है।

3.2 जीव – जीव परमात्मा का प्रतिरूप है। सूफी जीव के दो रूप मानते हैं

107. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति – श्रीवास्तव पृ. 915
108. वृहत् साहित्यिक निबंध – शांति स्वरूप गुप्त व रामसागर त्रिपाठी पृ. 546
109. मध्यकालीन भारत – हरिशंकर शर्मा – पृ. 230.
110. हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि – पृ. 292
111. वृहत् साहित्यिक निबंध – पृ. 549.

प्रथम रूह, जो आत्मा की ईश्वरीय शक्ति का दर्शन हृदय के स्वच्छ दर्पण में कराती है तथा दूसरा नफ्स, जो मानव को पाप की ओर ले जाती है। नफ्स को मारना ही मानव का प्रथम कर्त्तव्य है।[112]

3.3 माया – यहाँ नफ्स को अविद्या माया कहा गया है। यही नफ्स शुद्ध जीव (रूह) को संसार के विषयों में प्रवृत्त करता है। सूफी नफ्स को समस्त दुर्गुणों की जड़ मानते हैं। नफ्स पर विजय प्राप्त करके ही मनुष्य (जीव) ब्रह्म से एकाकार होता है।[113] माया का दूसरा नाम शैतान भी है इनके अनुसार खुदा ने साधक की परीक्षा हेतु शैतान को बनाया है इसकी परीक्षा में उत्तीर्ण होकर ही साधक परमात्मा से मिल सकता है।[114]

3.4 जगत् – सूफी सृष्टि को 'खल्क' नाम देते हैं। वे इसे ईश्वर की अभिव्यक्ति स्वीकार करते हैं। वे मानते हैं कि यह दृश्यमान जगत् जो अवास्तविक है असत् के दर्पण में प्रतिबिम्बित होने वाला उस परमात्मा का प्रतिबिम्ब है।[115]

सम्पूर्ण सृष्टि ईश्वर से प्रतिबिम्बित है तथा उसी में लीन होती है।

3.5 मोक्ष – यह जीव का परम लक्ष्य है। जीव का परम तत्व में लीन होना मोक्ष है। मनुष्य की इच्छाएँ जब समाप्त हो जाती हैं, तब वह ब्रह्म (अल्लाह) में मिल जाता हैं। इसे अन–अलहक अर्थात् 'मै ही ब्रह्म हूँ' कहा गया है। यही सूफी दर्शन का चरम लक्ष्य है।[116]

3.6 गुरू की महत्ता – सूफी साधना में गुरू ज्ञान का बड़ा महत्त्व है। वही साधक को परमात्मा के दर्शन कराता है। यही साधक को शैतान द्वारा प्रस्तुत की गयी विघ्न–बाधाओं से निकाल परमात्मा मिलन का मार्ग दिखाता है। सूफी गुरू का अंधानुकरण श्रेयस्कर मानते हैं।[117] वह साधक के अज्ञान का नाश कर ज्ञान चक्षुओं को खोलता है।

3.7 प्रेम की महत्ता – प्रेम या इश्क परमात्मा से मिलने का साधन है। सूफियों ने स्वयं को पुरूष रूप में तथा परमात्मा को नारी रूप में स्वीकार किया है। साधक परमात्मा के सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट हो निरन्तर प्रेम पथ पर अग्रसर होता रहता है।

निष्कर्षतः सूफी मत ने इस्लाम धर्म को उदारता से अपना कर उसके उज्ज्वल गुणों का प्रचार कर इसे भारत में व्यापक बनाया तथा हिन्दू–मुस्लिम सम्प्रदायों को एकता के सूत्र में पिरोने का यथासम्भव प्रयास किया। इन्होंने तद्युगीन धार्मिक, सामाजिक सांस्कृतिक रूढ़ियों तथा कुरीतियों का खुलकर विरोध किया व लोक–कल्याण का आलोक फैलाया।

–––––

112. वृहत् साहित्यिक निबंध– पृ. 55.
113. निर्गुण काव्य पर सूफी प्रभाव – डॉ. शर्मा पृ. 109.
114. वृहत् साहित्यिक निबंध – पृ. 550.
115. निर्गुण काव्य पर सूफी प्रभाव – पृ. 119.
116. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति – पृ. 915.
117. वृहत् साहित्यिक निबंध – पृ. 551–552

प्रथम-अध्याय

सिद्ध मतः उद्भव, विकास, सैद्धान्तिक स्वरूप एवं साहित्य

0.1 भारत भूमि अनेक धर्मो की जन्मस्थली रही है। जो धर्म दर्शन थे वे समय के साथ लुप्त हो गये; किन्तु जो परम प्रौढ़ थे वे दिग्विजयी रहे। इन्हीं दिग्विजयी धर्मो में एक नाम बौद्ध धर्म का है। सिद्ध मत बौद्ध धर्म से पूर्णतः प्रभावित था। अतः सिद्धमत के सम्यक विवेचन हेतु प्रथम बौद्ध धर्म के उदय और विकास पर प्रकाश डालना परमावश्यक है।

1.1 बौद्ध-धर्म का विकास

ईसा पूर्व छठी शताब्दी का काल खण्ड महान परिवर्तन का युग था। उस समय समाज एवं वैदिक धर्म में कुरीतियों, पाखण्डों, छुआछूत, कुप्रथाओं, ऊँच–नीच आदि का बोलबाला था। चिरकाल से संचित असंतोष की परिणति क्रांति एवं धार्मिक–सामाजिक आन्दोलनों द्वारा मुखर हुई। समय की धारा में नवीन विचार धाराओं का जन्म हुआ। इसी उथल–पुथल के बीच बौद्ध विचारधारा का आर्विभाव हुआ। जिसने पुरोहितों के अत्याचारों, धर्म के कर्मकाण्डों जाति–भेदभाव, नारी दशा, ब्राह्मणों के प्रभुत्व का विरोध कर अस्तव्यस्त समाज में नव जीवन का संचार किया।

1.1.1 बुद्ध और बौद्ध-धर्म – बौद्ध–धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध का जन्म कपिल वस्तु के शाक्यवंश में हुआ। सांसारिक बंधन उन्हें बांध न सके तथा एक रात वे सत्यकी खोज हेतु निकल पड़े। छः वर्षो की कठोर साधना के बाद वैशाख पूर्णिमा की रात पीपल वृक्ष के नीचे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। जिस धर्म का ज्ञान उन्होंने पाया वही बौद्ध–धर्म कहलाया।[1]

बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय की भावना को आत्मसात कर परम करूणालु बुद्ध ने ज्ञान–प्राप्ति के उपरांत आजीवन सामान्य जन को धर्मोपदेश लाभ प्रदान किया।

1. प्राचीन व मध्यकालीन भारत का सांस्कृतिक व राजनीतिक इतिहास – अग्रवाल, पृ 213

1.1.2 बौद्ध-धर्म की देन – भारतीय संस्कृति के विविध फलकों के निर्माण व विकास में बौद्धधर्म का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यथा –

2.1 बौद्ध–धर्म ने लोगों के जीवन में नैतिक स्तर ऊँचा उठाया। उन्हें सदाचार, सच्चरित्रता की शिक्षा प्रदान की।

2.2 बौद्ध–धर्म ने अहिंसा, शांति, बंधुत्व, सह–अस्तित्व के आदर्श प्रस्तुत कर समाज को कृतार्थ किया।

2.3 बौद्ध–धर्म ने समाज को एक सरल एवं आडम्बर रहित धर्म प्रदान कर तद्‌युगीन समाज व धर्म में व्याप्त रूढ़ियों तथा कुरीतियों का विरोध किया।

2.4 महात्मा बुद्ध ने तद्‌युगीन नारी की दारुण दशा से मुक्ति हेतु यथा–सम्भव प्रयास किये। बौद्ध–धर्म में नारी को ज्ञान, साधना व मुक्ति की अधिकारिणी माना गया। संघ के द्वार नारी के लिए खोल दिये गये। अपने संघ में कुलीन नारियों के साथ गणिकाओं (आम्रपाली, विमला, अड्ढकाशी) जैसी पतिता नारियों को भी प्रवेश का अधिकार दे अपनी उदारता का परिचय दिया और क्रांतिकारी कदम उठाया।

1.2 बौद्ध-धर्म के विकास में संगीतियों का योगदान

महात्मा बुद्ध के महानिर्वाण के उपरांत बौद्ध–धर्म को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने हेतु संगीतियों की योजना बनाई गई। जिनका बौद्ध–धर्म के विकास मे अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

2.1 प्रथम बौद्ध-संगीति – महाकश्यप की अध्यक्षता में प्रथम संगीति राजगृह[2] में हुई। इसमें बुद्ध की शिक्षाओं का संकलन हुआ तथा उन्हें सुत्त एवं विनय पिटकों में विभक्त कर दिया गया। सुत्त व विनय पिटकों में क्रमशः धर्म एवं आचार के नियम संकलित किए गये।

2.2 द्वितीय बौद्ध-संगीति – बौद्ध–धर्म के विनय के कठोर नियमों के प्रति वैशाली में रहने वाले भिक्षुओं में असंतोष पनपा। जिससे उन्होंने अपने अनुकूल दस नियम बनाये। असंतोष के शमन हेतु 329 ई. पूर्व वैशाली में दूसरी बौद्ध–संगीति हुई।[3] इसमें बौद्ध–धर्म दो संघों–स्थविरवादी (रूढ़िवादी विचारधारा वाले) तथा महासांघिक (प्रगतिवादी विचारों वाले) में विभक्त हुआ।

2.3 तृतीय बौद्ध-संगीति – तीसरी बौद्ध–संगीति पाटलिपुत्र में सम्पन्न हुई। इसमें बुद्ध की शिक्षाओं का विभाजन नवीन रूप से किया गया तथा उसमें अभिधम्म नामक

2 प्राचीन भारत का इतिहास तथा सस्कृति – श्रीवास्तव, पृ. 855

3 मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव – सरला त्रिगुणायत, पृ. 58

तीसरा पिटक जोड़ दिया गया। तृतीय–संगीति के उपरांत सम्राट् अशोक ने बौद्ध–धर्म को विश्व–धर्म बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

2.4 चतुर्थ बौद्ध संगीति – यह कनिष्क के समय हुई। इसका लक्ष्य बौद्ध–धर्म को व्यवस्थित कर प्रचारित करना था।

इन संगीतियों ने बौद्ध–धर्म का चहुमुखी विकास किया।

1.3 बौद्ध-धर्म के स्थूल विभाग

द्वित्तीय बौद्ध–संगीति में बौद्ध–भिक्षु स्थविरवाद व महासांघिक दो संघों में विभक्त हुए। तभी से महासांघिक स्वयं को उच्च मानने लगे महायान व हीनयान की उत्पत्ति का प्रथम संकेत यहीं प्राप्त होता है।

महायान, हीनयान दोनों विचार धाराओं का उद्गम स्थल भिक्षु–संघ ही था; किंतु वैचारिक मतभेदों ने इन्हें प्रथम स्वरूप प्रदान किया। सिद्ध मत तक की यात्रा को समझने हेतु इन दोनों का विवेचन अपेक्षित है।

3.1 हीनयान – हीनयान बौद्ध–धर्म की आरंभिक शाखाओं में से था। यह चार आर्य–सत्य, अष्टांगिक–मार्ग व प्रतीत्य–समुत्पाद की देशना पर ही निर्भर था। जिसके अनुसार साधक नैतिकता एवं सदाचार का मार्ग अवलम्ब कर अपनी व्यष्टि सिद्धि तथा बुद्ध देशना के समानान्तर चला जाता था। ये साधक थेरवादी कहलाये।[4] इन्होंने मुक्ति को मृत्यु–उपरांत निश्चित घटना माना।[5] इनका विश्वास बौद्ध–उपदेशों में था। ये संसार को क्षण–भंगुर, अनित्य मानते हैं व संन्यास को आदर्श मानते हैं। संसार–मार्ग में पारिवारिक बंधन को बाधा माना गया। इस प्रकार हीनयान रूढ़िवादी सिद्धांत था। जिसमें परम्पराओं का कट्टर समर्थन किया गया।

आगे चलकर हीनयान के दो वैभाषिक व सैजान्त्रिक सम्प्रदाय बने।

3.2 महायान – हीनयान के कठोर नियमों, परम्परागत सिद्धांतों तथा रूढ़िवादिता के परिणाम स्वरूप महायान का जन्म हुआ। इसका विकास लोक–धर्म एवं प्रवृत्तियों को ग्रहण करने के कारण हुआ।[6] इनकी विचारधारा प्रगतिशील थी।

महायान ने गौतम बुद्ध को आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने करुणा एवं शरणागति को अपनाते हुए सामूहिक कल्याणकारी विचारों को आत्मसात किया। उन्होंने अनगिनत बौद्धिसत्वों की कल्पना की। उन्होंने बुद्ध को अवतार माना। महायान में लोकहित लोक–कल्याण के पथ को आलोकित किया गया। महायान के सिद्धांत सर्वसाधारण के लिए सुलभ थे। यह मुख्यतः गृहस्थ धर्म था। जिसमें भिक्षुओं के साथ

---

4. सहज सिद्ध – साधना और सृजना– रणजीत कुमार साहा, पृ. 33
5. साहित्येतिहास – सुमल राजे, पृ. 147–48
6. उपरिवत्– पृ. 147

सामान्य उपासकों को भी महत्त्व दिया गया। महायान आत्मा व पुनर्जन्म तथा मूर्तिपूजा में विश्वास रखता है।

इससे स्पष्ट है कि महायानकी महानता का रहस्य उसकी निस्वार्थ सेवा तथा सहिष्णुता थी। महायान ने बुद्ध की शिक्षाओं के महत्त्व का खण्डन किए बिना बौद्ध–धर्म के मौलिक क्षेत्र को विस्तृत कर दिया।

आगे चलकर महायान में शून्यवाद (माध्यमिक) तथा विज्ञानवाद (योगाचार) नामक उप–सम्प्रदाय बने।

1.4 बौद्ध-धर्म में मंत्रों तथा तांत्रिक प्रभाव

प्राचीन बौद्ध धर्म में भी तांत्रिक तत्त्वों का समावेश था।[7] मंत्रयान में इसका सम्यक स्फुरण हुआ। महायान में भक्ति व योग दोनों का महत्त्व था। अतः योग पर शैव–शाक्त तंत्रों का यथासंभव प्रभाव पड़ा। महायानियों ने हीनयान के सैकड़ों पृष्ठों के सूत्रों के स्थान पर उन्हें मंत्र रूप में संक्षिप्तता प्रदानकी। हर्ष के समय तक मंजुश्रीमूलकल्प, गुह्य–समाज और चक्र संवर आदि कितने ही मंत्रों की सृष्टि हुई।[8] इस प्रकार महायान से मंत्रयान विकसित हुआ। इसमें प्रारम्भ में तो ज्ञान के संक्षिप्तिकरण की प्रवृत्ति दिखाई दी। बहुत से निरर्थक शब्द मंत्रों के नाम से जुड़े। जिससे धीरे–धीरे मंत्रनय से ही तांत्रिक साधनाओं का विकास हुआ।[9] महायान का तांत्रिक रूप वज्रयान के रूप में अभिहित किया जाने लगा।

इस प्रकार बौद्ध–धर्म में विभाजन स्वरूप हीनयान व महायान का जन्म हुआ। महायान की उदात्तता के कारण उसमें शैव–शाक्त योगों का समावेश हुआ और महायान में तंत्रों का प्रवेश हुआ। जिससे मंत्रयान की शाखाएँ बनी। मंत्रयान से वज्रयान, सहजयान व सिद्ध धाराएँ उत्तरोत्तर विकसित होती चली गई।

1.2 वज्रयान-सहजयान और सिद्ध

1.2.1 वज्रयान – महायान में मंत्रतंत्रों के विधान ने बौद्ध–धर्म का पर्याप्त रूपान्तरण किया। जिससे महायान का स्वरूप तांत्रिक हुआ और वज्रयान के रूप में अभिहित किया जाने लगा।[10] वस्तुतः वज्रयान कोई नवीन विचार धारा का सम्प्रदाय नहीं था; वरन् यह तो महायान की ही विचारधाराओं को विरासत के रूप में सम्भाले हुए था। दोनों में मूलतः भेद नहीं था। महायान एवं मंत्रयान की सभी प्रवृत्तियाँ प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से इसमें मान्य थी ही, साथ ही कुछ नवीन बातों का भी इसमें समावेश हुआ था। धर्मवीर भारती मंत्रयान में वज्र की नवीन कल्पना के आधार पर ही वज्रयान को मंत्रयान का नवीन

---

7. बौद्ध दर्शन मीमांसा – बलदेव उपाध्याय, पृ. 368
8. बौद्ध चर्या– राहुल जी, पृ. 9
9. साहित्येतिहास– सुमन राजे पृ. 10
10. सिद्ध साहित्य– धर्मवीर भारती, पृ. 112

नामकरण मानते हैं।[11]

वज्रयान बौद्ध–धर्म का ही गुणात्मक विकास था। इसमें साध्यसाधक, साध ाना–विधि, पूजा मंत्र सभी को वज्र कहा गया। जिससे इस सम्प्रदाय को वज्रयान कहा जाने लगा।

वज्रयानियों ने महायान की शून्यता एवं करुणा को क्रमशः प्रज्ञा एवं उपाय के नाम दे दिए और इन दोनों के मिलन को युग नद्ध की दशा बताकर उसे ही प्रत्येक साध ाक का अन्तिम लक्ष्य ठहराया।[12] वज्रयानियों का शून्यवाद महायानियों के शून्य से आगे बढ़ चुका था। इसमें सम्यक् सम्बोधि प्राप्ति का मार्ग वज्रसाधना को माना गया। यही नहीं वज्र–सत्व, वज्र–स्वभाव, वज्र–ज्ञान, वज्र–योग, वज्र–वर्ण, वज्रवाराही, वज्र मोहिनी आदि देवी–देवताओं की कल्पना कर ली गयी और तिल, यव, आसन, ध्वज, पात्र, अक्षत, अंजलि, पंचामृत – ये सभी उनकी उपासना में वज्र–सिक्त होने आवश्यक हो गए।[13] वज्र–यान में उपास्य देव बुद्ध भी वज्र कहलाने लगे।

प्राचीन बौद्ध–धर्म के दुःखवाद का वज्रयानियों के विपरीत रूप में महा सुखवाद का प्रवर्तन किया। वज्रयानियों ने प्रज्ञा को (शून्य) निष्क्रिय ज्ञान माना और उसे स्त्री समझते हैं। उनके अनुसार उपाय पुरुष तत्त्व है और वह क्रियाशील है। इन दोनों तत्त्वों का मिलन की समरस अवस्था ही महासुख है जो उनका परम ध्येय माना जाता है।[14] यही शून्य के साथ रमण में प्राप्त महासुख ही निर्वाण है। वज्रयान में इस विकृत अवस्था पर शैव–शाक्त तंत्रिकों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

बौद्ध–धर्म जो सदाचारी था उसी में वज्रयान के माध्यम से अश्लीलता का प्रवेश हुआ। वज्रयान में मद्य, मंत्र, हठयोग और स्त्री मुख्य रूप से सम्मिलित हो गए।[15] बौद्ध–धर्म जो सदाचार, पंचशील, सत्य, अहिंसा, सहिष्णुता, त्याग पर अवलम्बित था, उसी ने वज्रयान के रूप में विकराल स्वरूप धारण किया। अब धर्म के नाम पर व्यभिचार को बढ़ावा मिलने लगा जिससे वज्रयान घोर वाममार्गी हो गया। इस तरह महात्मा बुद्ध ने जो क्रांति की गंगा बहाई थी, उसमें शैवाल उसी के भीतर से उत्पन्न हुए।[16] वज्रयान भी बौद्ध–धर्म का शैवाल बन गया।

वज्रयानियों की साधना में पंचमकारों को स्थान दिया जाने लगा जिनकी योग परक व्याख्याएँ भी प्रस्तुत की जाने लगी।[17] वज्रयान में सिद्धि प्राप्त करने के लिए अनेक

11. वही, पृ. 141
12. उत्तरी भारत की संत परम्परा–परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 34
13. सिद्ध साहित्य–धर्मवीर भारती, पृ. 141
14. संस्कृति के चार अध्याय– दिनकर, पृ. 194.
15. पुरातत्व निबंधावली– राहुल सांकृत्यायन, पृ. 143
16. संस्कृति के चार अध्याय– दिनकर, पृ. 187
17. साहित्येतिहास– सुमनराजे, पृ. 150

देवी–देवताओं, बुद्धों की कल्पना की गई थी। वहीं शांति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन और मरण आदि छः अभिचारों का विधान बनाया गया।

साधक की अवस्थानुसार साधना–पद्धति अपनाने की दृष्टि से चार पद्धतियाँ प्रमुख थी। उन्हीं के नाम पर वज्रयान के चार तंत्र हो गए – क्रियातंत्र, चर्यातंत्र, योगतंत्र, अनुत्तर–तंत्र। इनमें योग–तंत्र के तीन भेद मिलते हैं – महायोगतन्त्रयान, अनुत्तर योगतंत्रयान, अतियोग तंत्रयान।[18]

तंत्रों के सामान्य दस तत्त्वों का विकास वज्रयान में दिखाई दिया। – देह, गुरु का महत्त्व, मंत्र, तंत्र, हठयोग, जाति–पाँति का तिरस्कार, मैथुन तथा गुह्य साधनाएँ, सिद्धियाँ, मण्डल–चक्रादि, अनुष्ठान आदि। मुक्ति की अपेक्षा सिद्धियों के प्रति आग्रह, रस रसायन की कल्पना, अमर शरीर एवं गुह्याचार आदि की प्रवृत्तियाँ वज्रयान में पाई जाती हैं।[19]

इस प्रकार वज्रयान तांत्रिक पद्धतियों का ही बौद्ध संस्करण है। ये वज्रयानी साधक मूल लक्ष्य से भटक पथ–भ्रष्ट हो गए। बौद्ध–धर्म अपने विकास के अन्तिम सोपान तक पहुँचते–पहुँचते वज्रयान के रूप में तंत्र–मंत्र के प्रभाव के कारण विकृतियों का शिकार हुआ। जिससे उसका पावन स्वरूप मलिन हो गया।

2.2 सहज-यान – महात्मा बुद्ध ने जिस बौद्ध–धर्म की नींव चारित्रिक संयम एवं सदाचरण पर रखी थी। आगे आने वाले साधकों के लिए उनके सिद्धान्तों को उसी रूप में अपनाना भारी होने लगा। तभी बौद्ध–धर्म के दो भाग हुए–जिसमें भी महायान आगे भी विभाजित होता चला गया। साधकों ने अपने को धर्म के प्राचीन बंधनों में आबद्ध नहीं रखा तथा सदाचार से उनकी दूरी निरन्तर बढ़ती ही गई। जिसके फलस्वरूप वज्रयान सम्प्रदाय बना और वज्रयान की अन्तिम परिणति के रूप में सहजयान अस्तित्व में आया।

वज्रयानी साधना के जटिल एवं विकृत स्वरूप धारण करने पर उसी का परिष्कार कर सहजयान का प्रवर्तन हुआ। अतः सहजयान कोई पृथक् नव विचारधारा अथवा नवीन सम्प्रदाय नहीं; वरन् यह तो वज्रयान का ही परिष्कृत रूप है। जिसमें उच्च–कोटि के अनुत्तर–साधकों के लिए तंत्र–मंत्र का निषेध कर केवल सहज भाषा–भाव से विनिर्मुक्त होकर महासुख की साधना का विधान किया।[20]

इससे दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं– प्रथम तो सहजयान, महायान से स्वतंत्र सम्प्रदाय नहीं है और दूसरी वज्रयानकी रूढ़, कट्टर, शास्त्रीय साधना–पद्धति की प्रतिक्रिया है।वस्तुतः सहजयान वज्रयान का ही अन्तिम सोपान है।

---

18. सिद्ध साहित्य – धर्मवीर भारती, पृ. 146–147.
19. सिद्ध साहित्य – धर्मवीर भारती, पृ. 146
20. सिद्ध साहित्य – धर्मवीर भारती– पृ. 148

सहज–यान में सहज और यान दो शब्दों का योग हुआ है। सहज का अर्थ है – सगाभाई, स्वभाव, साथ उत्पन्न होने वाला स्वाभाविक,सरल, सुगम एवं साधारण।[21] इससे स्पष्ट होता है कि सहजयान वज्रयान की जटिल प्रक्रिया के स्थान पर सहज, सरल, सुगम, स्वाभाविक जीवन में विश्वास करता है। सहजयान की साधना पद्धति में भी इसी के दर्शन होते हैं। वज्रयानी जिस प्रकार साध्य–साधक साधना–पद्धति हेतु वज्र का प्रयोग करते थे। उसी तरह सहजयान में भी उपास्य, उपासक साधना–पद्धति आदि को सहज रूप मानते हैं।

सहजयान तात्त्विक दृष्टि से वज्रयान से पृथक् नहीं है; वरन् सहजयानियों ने साधना के क्षेत्र में नया विकास किया है । सहजयान में हठयोग, मद्य, गुरू, मंत्र तथा तंत्र आदि वज्रयान की प्रवृत्तियाँ विद्‌यमान थी।

सहजयान साधनामें सरल नैसर्गिक जीवन पर बल दिया। सहज यानियों के अनुसार संसार की सभी वस्तुओं का स्वरूप सहज है। सरह पाद जिन्हें सहजवाद का प्रथम आचार्य माना जाता है[22] ने भी सहज–जीवन में विश्वास रखते हुए कहा है कि 'वैसे रहो जैसे बालक रहता है।[23] सहजयान में ऋद्धि–सिद्धि का लाभ छोड़ सहज भावना को कल्याण–प्रद मानते हुए सरह कहते हैं –

सहजे सहज बि बुज्झइ जब्बे, अन्तराल गइ नुदृइ तब्बें।

रिद्धि–सिद्धि हलेंवेण्णिन काज्ज पाप–पुण्य तहिपाड़हु बाज्ज। [24]

सहजयान में संसार को दुःख का सागर मात्र मानकर बुद्ध का अनुसरण नहीं कर नवीन विचार प्रस्तुत किया है। उनका मानना है कि केवल दुःखों को भोगने के लिए हम संसार में उत्पन्न नहीं हुए हैं। इसी लोक में सुख भी है। अतः नाचते, गाते, विलास करते हुए सुखों का उपभोग किया जाना चाहिए।[25]

सहज भावना को ही ऋजुमार्ग कहा गया है। जिसमें जीवन को अपने नैसर्गिक रूप में बिताना पड़ता है।[26]

सहयान में योगिनी का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। उनका होना आवश्यक माना जाता था। योगिनी पर कोई जातिगत बंधन नहीं थे। वे किसी भी जाति की हो सकती थी। प्रायः योगिनियाँ डोम, चमार आदि निम्न समझे जाने वाली जातियों की हुआ करती

---

21. नालन्दा विशाल शब्द सागर सं. श्री नवल जी पृ. 1423
22. दोहाकोश– राहुल सांकृत्यायन, पृ. 28
23. वही
24. दोहाकोश – पृ. 20, दोह संख्या 82, 83
25. जइ जग पूरिउ सहजानन्दे, णाच्चहु गाअहु विलसहु चगें– दोहाकोश, पृ. 136
26. उजुरे उजु छाड़िड मा लेहु रे बंक, णिअहि बोहि मा जाहु रे लांक वाम दहिणे जो खाल–विखाला, सरहल भण्ड बया उजुबार भाइल – बौद्ध गान ओ दोहा, पृ 48

थी। सहजयान में माना गया कि नर के भीतर नारी के निमित्त और नारी के भीतर नर के भीतर जो आकर्षण है वह अपने आप में सहज, स्निग्ध तथा पवित्र है और धर्म से इसका विरोध नहीं। वाममार्गी साधकों ने नारी को बौद्ध तंत्र की मनोवैज्ञानिक शक्तियाँ माना। जिससे उनका नारी सेवन कुरूप–कुत्सित एवं वीभत्स हो गया। सहजयान में वाममार्गी साधकों की ऐसी साधना में अविश्वास रखते हुए नर–नारी समागम की सारी सार्थकता प्रेम को माना।[27] सहजयानियों की मिथुन परक साधना वज्रयान से भी आगे बढ़ गयी। ये लौकिक सुख सें वंचित होकर साधना करना नहीं चाहते थे।

बौद्ध–धर्म में 'बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्मम् शरणं गच्छामि, संघम् शरणं गच्छामि' की भावना को अपनाते हुए बुद्ध, धर्म, एवं संघ को त्रिशरण माना जाता था। सहजयानियों ने इसमें एक तत्त्व की वृद्धि करते हुए चतुः शरण की महत्ता को प्रचारित करते हुए चौथा शरणस्थल गुरू को बताया। सहजयान में गुरु का वचन सर्वोपरि माना जाता था। सरह के दोहा कोश में जगह–जगह पर इस भावना पर जोर दिया गया है।[28] गुरू के वचनों को अमृत तुल्य बताते हुए सरह गुरु–वचनों की विशिष्टता बताते हुए कहते है –

गुरू के वचन अमिय रस, धाइ न पीयेउ जेहि।

बहु शास्त्रार्थ–मरूस्थले, तृषिते मरिबो तेहि।।[29]

तिब्बत में लामा गुरू का ही पर्याय है। वहाँ त्रिशरण (बुद्ध, धर्म, संघ) से पूर्व गुरूं शरणं गच्छामि कहते हुए चतुः शरण लिया जाता है। तिब्बत में उक्त परम्परा का जन्म दाता इन सहजयान के साधकों को ही माना जा सकता है।

सहजयान भावना में शून्यता तथा करुणा प्रधान रूप से है; किन्तु जो शून्यता के बिना करुणा–भावना करता है, वह हजारों जन्मों तक मुक्ति नहीं पा सकता।[30] सहजयान में कोरे शून्यता–भाव का निषेध कर करुणा तथा शून्यता दोनों का योग आवश्यक माना है। इन दोनों का योग ही सिद्धि हेतु सहायक है। इनके समरस से ही सिद्धि प्राप्त होती है। सरहपाद ने इसी शून्य–करुण समरस के भाव को अपनाया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि करुणा के अभाव में केवल शून्य की साधना से उत्तम मार्ग प्राप्त नहीं होता[31] तथा शून्य के अभाव में कोरी करुणा से मोक्ष प्राप्त नहीं होता।[32] सहजयान में शून्य एवं करुणा को संसार का मूल धर्म माना। इन्हीं भावनाओं के योग से मानव मुक्त हो परम सुख–निर्वाण को प्राप्त करता है।

---

27 संस्कृति के चार अध्याय– दिनकर, पृ. 195
28. दोहाकोश–पृ 6
29. वही, पृ. 13 दोहा– 44.
30. सिद्ध साहित्य– धर्मवीर भारती, पृ. 177
31. करुणा रहिउ ज्जो सुण्णहि लग्गा, णड सो पावइ उत्तिम मग्गा– दोहाकोश, पृ. 4
32 अथवा करुणा केवल सावा, सोजन्मांतरे मोक्ष न पावा– दोहा कोश, स. 17

सहजयान मिथुनपरक होने के कारण यह मानता है कि करुणा से परिभाषित शून्य रूपी भगवती से योग और उसके चिन्तन से सिद्धि का साक्षात्कार होता हैं। मुक्ति स्वयं सिद्ध मानी गयी है। ब्रह्म या किसी सनातन सत्ता को नहीं मानाहै। लोक क्षणिक है; किन्तु वहीं सहजानंद भी सम्भव है। अतः पीछे की बातों में न पड़कर प्रत्यक्ष का आनन्द अनुभव उत्तम माना गया है। जब मन का भ्रम दूर हो जाता है और चंचलताएँ मिट जाती हैं तब परमसुख की स्थिति आती है।[33]

परम–पद – परम महासुख आदि अन्त – मध्यरहित हैं। न उसे संसार कहा जा सकता है, न निर्वाण। उसमें अपना और पर का भेद नहीं। आगे–पीछे दसों दिशाओं में जहाँ देखें, वहीं–वही है।[34] सहजयानियों का जो परम–पद है उसे स्पष्ट करते हुए सरहपाद उसे शून्य निरंजन मानते हुए कहते हैं–

सुण्ण णिरंजन परमपउ..... / [35]

जब तक चित्त स्थिर नहीं हो जाए तब तक इसकी भावना आवश्यक है। इसकी भावना से प्राप्त महासुख की प्राप्ति अवस्था अक्षर–वर्ण–विवर्जित है। वह न त्याज्य है और न ग्राह्य ही है।[36]

सहजयान में नैसर्गिक जीवन, सहज–जीवन, भोग में योग, सहज योग, मूल तत्त्व योगिनी की महत्ता करुणा एवं शून्य का समरस स्वरूप, देह में तीर्थ तथा संसार में सुख–सार आदि को विवेचित किया गया।

2.3 **सिद्ध** – सहज यान से सिद्धों का प्रादुर्भाव हुआ। सहजयान साधकों एवं सिद्धों के मध्य स्पष्ट विभाजन रेखा खींच पाना असम्भव है।

3.1 सिद्ध का अर्थ –

1. जिसकी आध्यात्मिक साधना पूर्ण हो चुकी हो।
2. जिसे अलौकिक सिद्धि प्राप्त हो।
3. जो योग की विभूतियाँ प्राप्त कर चुका हो।
4. सफल।
5. प्रामाणिक।
6. काया साधना के उपयुक्त बनाया हुआ।
7. प्रसिद्ध।

---

33. दोहा कोश– पृ. 35
34. वही – पृ. 36 तथा दोहा (52)
35. दोहा कोश– दोहा सं. 138
36. दोहाकोश – पृ. 36

8. पूर्णयोगी या ज्ञानी।
9. पहुँचा हुआ संत महात्मां।
10. एक प्रकार का देवता।[37]

उपर्युक्त विशेषताओं से युक्त साधक सिद्ध कहलाये।

3.2 समय/काल – इन सिद्ध–साधकों का समय ईस्वी सन् 800 से 1200 ई. तक माना गया है।[38]

3.3 सिद्धों की जाति व संख्या – राहुल जी ने सिद्धों की संख्या 84 मानी है। इन्होंने सरहपाद को प्रथम सिद्ध माना है।[39]

ऐसा नहीं कि इस 84 संख्या के बाद सिद्ध न हुए हों। उसके बाद भी सिद्ध हुए। अधिकांश सिद्ध–साधक निम्न जातीय थे। यथा– लूइपा, (कायस्थ), कंकालीपा (शूद्र), खडगपां (शूद्र), थगनपा (शूद्र), शीलपा (शूद्र), छत्रपा (शूद्र), धोम्भिपा (धोबी), तंतेपा (शूद्र) जोगीपा (डोम), चर्पटी (कहार), कंथालीपा (दर्जी), सर्वभक्षपा (शूद्र) आदि।[40]

ये सिद्ध विभिन्न निम्न जातियों से आये थे। अतः इनके बीच वर्ण–भेद की थोथी मान्यताएँ नहीं थीं।

3.4 क्रांतिकारी व्यक्तित्व

सिद्ध क्रांतिकारी व्यक्तित्व के धनी थे। वे जातिगत संकीर्णताओं में आबद्ध नहीं थे। वे सभी को समानता के भाव से देखते थे। उन्होंने सभी के लिए साधना के मार्ग खोले। तद्युगीन आडम्बर ब्राह्मण सृष्टाब्राह्मण वर्ग की धार्मिक भूमिका पर इन्होंने प्रहार किया व उसके थोथे ज्ञान को सत्य से दूर ले जाने वाला बताकर अनुपयोगी ठहराया।

सिद्धों ने निम्न–वर्ग के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण को अपनाते हुए उनके निराश–हताश मन में आशा का आलोक फैलाया। उन्होंने श्रम की महत्ता प्रतिपादित कर निम्न–वर्ग के हाथों में आत्मविश्वास व स्वाभिमान का हथियार थमाया।

सिद्धों ने युगों से अवहेलनीय नारी को अपनी साधना का परमावश्यक अंग बना कर उसके अस्तित्व की रक्षा की। वे उसे शक्ति रूपा सहसाधिका का पद प्रदान कर गौरवान्वित करते हैं। सिद्धों ने सिद्धांतों के स्थान पर व्यावहारिकता पर बल दिया।

1.3 सिद्ध-साधना पक्ष

1.3.0 – सिद्धों ने बुद्ध–वचन के गौरव को कभी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं

---

37. नालन्दा विशाल शब्द सागर – स. नवल जी, पृ. 1446
38. पुरातत्त्व निबंधावली– पृ. 156
39. पुरातत्त्व निबंधावली, पृ. 156
40. सिद्ध साहित्य– पृ. 31–32

होने दिया। बुद्ध के बताए गए मार्ग स्वनिर्भर होकर स्वतंत्र–चिन्तन करने तथा पूर्व विश्वास को स्वानुभूत निष्कर्षों की कसोटी पर कसकर ही मानने को साधक की जीविका बताई थी। उस स्वतंत्र–चिन्तन प्रणाली को सिद्धों ने अपनाया, तभी सिद्धों ने बौद्ध–धर्म को व्यैक्तिक अनुभूतियों के स्तर पर ग्रहण किया। साम्प्रदायिक एवं प्रचलित मतवाद के स्तर पर नहीं।

1.3.1 तत्त्व चिन्तन/दर्शन – सिद्धों के साधना–पक्ष को समझने से पूर्व उनके तत्त्व चिन्तन पर प्रकाश डालना आवश्यक है। सिद्धों के समस्त तत्त्व–दर्शन का मूलाध ाार महायान के सम्प्रदाय विज्ञानवाद (योगाचार) का परमार्थ सिद्धांत है।[41] साथ ही जहाँ सिद्धों के दोहों में वसुबंधु प्रवर्तित विज्ञानवाद समर्थक पद हैं, वहीं नागार्जुन प्रवर्तित शून्यवाद (मात्ययिकवाद) से प्रभावित दोहे भी दिखाई देते हैं और कहीं–कहीं बुद्ध–वचन की गरिमा को अक्षुण्य रखते हुए दोनों मतों की उपेक्षा करते हुए सिद्धों का अपना स्वतंत्र–चिन्तन उभरा है।

1.3.1.1 जगत् – 'अद्वयार्थो ही परमार्थः' के सिद्धांत को मानने वाले विज्ञानवादी चित्त की सत्ता को स्वीकारते हुए, संसार को चित्त की भ्रांति मानते हैं। जब चित्त इस भ्रांति से मुक्त हो सृष्टि के वास्तविक स्वभाव को जान लेता है उसी समय वह सदेह निर्वाण प्राप्त कर लेता है। सिद्धों के दर्शन का मूलाधार विज्ञानवाद का परमार्थ सिद्धांत है जो अद्वय है। जिसमें शून्य तथा अशून्य, अभाव तथा भाव अद्वय हो जाते हैं।[42]

सिद्धों ने भी जगत् को चित्त की भ्रांति बताया है। सरहपाद का उक्त दोहा इसी का समर्थन करता प्रतीत होता है –

जिम बाहिर तिम अभ्यन्तरू, चउदहभुवणे ठिअउ निरन्तरू। [43]

सरहपाद जगत् एवं चित्त की द्वयताको त्याग अद्वय स्थिति बताते हुए दोनों की एकता की बात कहते हैं, क्योंकि जो अभ्यन्तर है वही बाहर है। एक ही तत्व है जो 14 भुवनों में निरन्तर स्थिर है। वह तत्त्व चित्त है अतः उसेअन्य रूप में देखना भ्रांति है।

इस प्रकार सिद्धों ने जगत् के अस्तित्व को अस्वीकृत कर उसे मानव चित्त का प्रक्षेपण माना है। जगत् अस्थिर एवं प्रवाहमय है। जिस प्रकार व्यक्ति रस्सी में सर्प की कल्पना से भयभीत होता है वही दशा अनभिज्ञ लोगों की है जो वास्तविक सत्य से अनजान बन मिथ्या–जनित भ्रम को ही सत्य स्वीकार कर लेते हैं। जब व्यक्ति जगत् की वास्तविकता को जान लेता है तब उसे यह जगत् प्रतिभासित लगता है।

भवणइ गहण गम्भीर वेगवारी,

दुआन्ते चिखिलं, माझेन थारी। (चार्या. 41)

41. सिद्ध साहित्य – धर्मवरी भारती, पृ. 159
42. वही
43. बागची दोहाकोश– पृ 35

उपर्युक्त चर्या में सिद्ध चाटिल्लपाद जगत् की प्रवाह मानता को इंगित करते हुए कहते हैं कि – यह संसार की नदी बड़ी गहरी है तथा भवरूपी नदी गहन–गम्भीर वेग से प्रवाहित है। इसके दोनों तटों की ओर कीचड़ सा जान पड़ता है, परन्तु मध्य में इसकी गहराई का कोई आभास नहीं होता।

जगत् का स्वरूप बतलाते हुए सिद्धों ने चित्त की उत्पत्तियों – आयतन, स्कन्ध, भूत तथा इन्द्रियों की ओर संकेत किया है।[44]

सिद्ध तिल्लोपा संसार को स्कन्ध, भूत, आयतन तथा इन्द्रियों द्वारा निर्मित्त मानते हैं।[45]

सिद्धों ने लोक–कल्याण हेतु ही जगत् के वास्तविक स्वरूप को बताने का प्रयास किया है। जिससे चित्त इसकी मृग–मरीचिका में नहीं भटके।

लोक–कल्याण के लिए ही सरह कहते हैं – पंडित लोग जो इस ज्ञान को यत्नपूर्वक छिपाकर रखते हैं, मुझे क्षमा करें; क्योंकि मैं इसमें विकल्प नहीं करूँगा, मै कृत संकल्प हूँ कि नये–नये दोहा छन्दों में इस ज्ञान को, जगत्– बोध को विकीर्ण करूँ। यह जगत् जो स्कन्ध,भूत, आयतन, इन्द्रिय आदि के विषय विचार का ही मायाजाल है। मेरे गुरू ने यह ज्ञान मुझे दिया तो मैं इसे गोप्य क्यूँ रखूँ। क्योंकि इसी अज्ञान के कारण असावधान जीव विषय–तृष्णा में भटक–भटककर प्यासे मर जाते हैं जैसे मीन, पतंग, करी, भ्रमर और हरिण।[46]

इन सिद्धों ने भूत, स्कन्ध, आयतन तथा इन्द्रियों से संसार अथवा जगत् को निर्मित्त माना है। अतः इन सभी पर संक्षिप्त विचार करना इनके चिन्तन को समझने में सहायक होगा।

1.3.1.2 **पंच-महाभूत** – 'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा' कहकर पृथ्वी, जल, अग्नि, गगन एवं वायु को पंच महाभूत मानाजाता है। सिद्ध काण्हपा ने पृथ्वी, आप, तेज,वायु तथा गगन को पंच महाभूत मान, इन्हें संसार का बीज रूप स्वीकार किया है।[47]

सरहपाद ने क्षिति, जल, वायु तथा हुताशन, 4 महाभूतों का उल्लेख किया है किन्तु गगन–तत्त्व को विस्मृत न करके वे गगन तत्व को विशिष्ट नैरात्म्यरूप में स्वीकार करते हैं।[48]

---

44. सिद्ध साहित्य– धर्मवीर भारती, पृ. 160
45. बागची– दोहाकोश, पृ. 35
46. सिद्ध साहित्य–धर्मवीर भारती, पृ. 161
47. दोहाकोश – पृ0 41
48. सिद्ध साहित्य– धर्मवीर भारती, पृ. 162

1.3.1.3 पंच इन्द्रिय – सिद्ध साहित्य में इन्द्रियों एवं उनके विषयों की चर्चा हुई है। वे पंच महाभूतों पर इन्द्रियों को आश्रित मानते हैं। इन्हीं इन्द्रियों का उल्लेख करते हुए बताया गया है – क्षिति अथवा पृथ्वी का विषय है गन्ध, उसे ग्रहण करने वाली इन्द्रिय है नासिका, जल का विषय है रस–स्वाद अतः उसकी ग्राहक इन्द्रिय है रसना। तेजस् का विषय रूप है अतः ग्राहक इन्द्रिय है चक्षु वायु की इन्द्रिय है। त्वचा आकाश का विषय शब्द अतः इन्द्रिय है श्रोत्र।[49]

इस प्रकार पंच इन्द्रियों में नासिका, रसना, चाक्षु, त्वचा एवं श्रोत्र की ओर संकेत करते हुए पंच महाभूतों से सम्बद्ध किया है। विज्ञानवाद में षडेन्द्रियां को माना है। इन पाँच इन्द्रियों के साथ मन को छठी इन्द्रिय माना है। सिद्ध साहित्य में चर्याओं में पंचेन्द्रियों के स्थान पर षडेन्द्रियों का उल्लेख मिलता है।[50]

1.3.1.4 आयतन – आयतन का अर्थ है निवास अथवा गृह। इनकी संख्या 6 मानी जाती है।[51]

1.3.1.5 स्कन्ध – रूप, वेदना, संस्कार, संज्ञा तथा विज्ञान आदि पंच स्कन्ध है।[52]

1.3.1.6 चित्त का स्वरूप – सिद्ध संसार एवं चित्त को एक मानते हैं। चित्त के दो रूप बतलाए गए हैं प्रथम बद्ध जो कर्मों में बंधा है तथा द्वित्तीय मुक्त जो प्रज्ञा द्वारा कम करने से उन्हीं से मुक्त हो जाता है। सभी सरहपाद स्थान–स्थान पर कहते हैं कि हे मूर्ख अपने को जान, अपने को पहचान तभी बद्ध–जीव मुक्त हो सकेगा। 'बद्धोधावइ दस दिसहिं, म्मुक्कों णिच्चल ट्टाअ[53] कह संकेत किया है कि जब चित्त सांसारिक बंधनों में बँधा रहता है तो दसों दिशाओं में भागता है। इसके विपरीत इनसे मुक्त होता है तो निश्चिल होता है। मुक्त होता है। चंचल चित्त लोकाचार में लीन रहता है; किन्तु निश्चल निर्मल चित्त शून्य–निरंजन में वास करता है। बद्ध–चित्त के लिए यही लोक मोहजाल है, माया जाल है, मुक्त निर्मल चित्त के लिए यही भव परमज्ञान रूप निर्वाणमें परिवर्तित होता है।[54]

1.3.1.7 भव एवं निर्वाण में अभेद – सिद्धों ने भव एवं निर्वाण की एकता को प्रतिपादित किया है। निर्वाण वह है जो इन भ्रांत कल्पनाओं से मुक्त, ज्योतिर्मय, रागादि मलों से शुद्ध तथा निर्लिप्त ग्राह्य तथा ग्राहक भाव से परे नित्य होता है।[55] सिद्धों ने संसार

49. सिद्ध साहित्य– धर्मवीर भारती, पृ. 167
50. वही
51. वही, पृ. 164
52. वही
53. दोहाकोश– सरहपाद, पृ. 7 पद –26
54. सिद्ध साहित्य– धर्मवीर भारती, पृ 167
55. वही

अथवा भव को माया कहा है। जिससे चित्त आबद्ध हो जाता है। परन्तु माया–आवरण ज्ञान प्राप्त होते ही स्वतः हट जाताहै।

मैं ही जगत् हूँ, तीनों भुवन मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं, सभी दृश्यमान जगत् में मैं ही व्याप्त हूँ। ऐसा जानने वाला योगी निश्चय ही सिद्ध हो जाता है।[56] व्यक्ति उस निज स्वभाव को जानने पर जग को अपने से पृथक् नही मानता।

1.3.1.8 **शून्य व सहज** – परम पद को सरहपाद ने शून्य निरञ्जन कहा है। यथा – सुण्णनिरंजण परमपउ, सुइणो (अ) माअ सहाव।[57] निर्वाण से चित्त का हनन करने के बाद त्रिभुवन शून्य निरन्जन में प्रवेश करता है। चित्त जब शून्यात्मक हो जाता है तो इन्द्रिय–जनित विषयों का लोप हो जाता है। सिद्धों ने शून्य–तत्त्व, शून्यताज्ञान, शून्य–स्वभाव को विज्ञानवादियों के अनुसार अपनाया है। शून्य के लिए सिद्धों ने एक नवीन शब्द को अपनाया है वह है सहज। सहज परम तत्त्व है। सहज एवं शून्य दोनों में समान गुण है।

1.3.1.9 **करुणा एवं शून्य** – सहज शब्द करुणा तथा शून्य की एकता का द्योतक हैं। सरहपाद कहते हैं –

करुण–रहिअ ज्जो सुण्णहिं लग्गा। णउ सो पावइ उत्तिम मग्गा।

अहवा करुणा केवल साहअ।सो जंमन्तरें मोक्ख का पावअ।।

जइ पुण वेण्णवि जोडण सावक्कअ। णउ भव णउ णिव्वाणें थावक्कअ।। [58]

अर्थात् करुणा रहित जो केवल शून्य में लीन रहता है वह उत्तम मार्ग, सहज मार्ग नहीं ग्रहण कर पाता। साथ ही जो शून्यरहित करुणा की भावना करता है वह सहस्र जन्मों तक मोक्ष नहीं पाता। जो इन दोनों का समरस करता है वह भव–निर्माण से मुक्त हो जाता है। वास्तव में यही शून्य एवं करूण समस्त ब्रह्माण्ड में मूल धर्म है।[59]

नागार्जुन ने संस्कृत कृति 'पंचक्रम' में चार शून्य बताए हैं। यथा– शून्य, अतिशून्य, महाशून्य एवं सर्वशून्य। प्रथम शून्य आलोक ज्ञान प्रज्ञा है इन्हीं समस्त मायाओं में सर्वश्रेष्ठ माया स्त्री है, जो इस शून्य प्रज्ञा की अभिव्यक्ति है। द्वितीय है अतिशून्य, जो आलोक का आभास देता है वह उपाय है, दक्षिण है, वज्र है, सूर्यमण्डल है, पुरूष है। तृतीय महाशून्य है, जो आलोक तथा आलोकाभास के युगबद्ध से उदित होता है। उपर्युक्त तीनों क्रमों में दोषों से मुक्त होने पर प्रज्ञोपाय अद्वैत का सर्वशून्य रूप उदित होता है यही

---

56. बागची दोहाकोश, पृ 65
57. दोहा कोश – दोहा सं0 138
58. दोहाकोश– पृ. 4–5 दोहा संख्या –14
59. सिद्ध साहित्य– धर्मवीर भारती, पृ. 181

परमतत्व है। आदि अन्त से विहीन, गुणदोष रहित भाव–अभाव से रहित तथा भावाभाव से भी रहित।[60]

पत्तो चउद्द चउ मूणाल ठिअ महासुह वासे।।5।। [61]

कण्हपा ने इसमें महासुख की स्थिति वाले कमल के चार पाँखुरियाँ और 4 मृणाल बताए हैं यही चार पाँखुरियाँ एवं चार मृणाल ही उपयुक्त 4 शून्य हैं।

इस प्रकार प्रज्ञा, उपाय, प्रज्ञोपाय तथा दोनों के सहगमन से उत्पन्न सहज को एक ही रूप मान कर सिद्धों ने चतुर्विध शून्य द्वारा सबको एक ही तत्व के क्रमिक विकास के रूप में चित्रित किया है।[62]

3.1.1.10 **प्रज्ञोपाय** – सिद्धों की चिन्तन एवं साधना प्रणाली का मूल प्रज्ञा तथा उपाय का युगबद्ध स्वरूप है। दोहों में विभिन्न रूपकों के माध्यम से इसे ही अभिव्यवित मिली है। भगवान वज्रधर तथा भगवती नैरात्मा, चित्त वज्र तथा नैरात्मस्वभाव वज्र और खासम, कुलिश और कमल, मणि और पद्म, शुक्र और रज, चन्द्र एवं सूर्य आदि रूपकों में प्रज्ञोपाय सिद्धान्त की अभिव्यक्ति हुई है। इनका स्वरूप मिथुन परक है।[63]

1.3.1.11 **युगनद्ध** – बुद्ध–धर्म और संघ बौद्ध–धर्म के तीन रत्न माने गए हैं। नमः रत्नत्रयाम कहकर इन्हें अक्सर नमस्कार किया जाता है।[64] उत्तरी महायानी बौद्ध–धर्म में इन त्रिरत्नों को युगनद्ध में ढाल दिया है। प्रज्ञा धर्म है, उपाय बुद्ध तथा संघ दोनों का युगनद्ध रूप। त्रिकाय सिद्धांत का चरम विकास सिद्धों में देखा जाता है। सिद्ध इन तीनों को स्वीकार करते हैं तथा इस दिशा में प्रज्ञोपाय सिद्धान्त की प्रतिष्ठा करते हुए उन्होंने एक चतुर्थ काया की प्रतिष्ठा की है। जिसे वे स्वभावकाया, वज्रकाया, सहजकाया या महासुख काया कहते हैं। इनमें सहजकाया सर्वश्रेष्ठ है। युगनद्ध की काया यही सहजकाया है। यही बुद्ध का निरंजन रूप है।[65]

सिद्धों का उपर्युक्त तत्त्व–दर्शन ही उनकी साधना–पद्धति का ठोस आधार है। सिद्धों के तत्त्व–दर्शन के सम्यक् विवेचन के उपरांत अब हम उनकी साधना–पद्धति को विवेचित करेंगे।

1.3.2 **सिद्धः साधना-पद्धति** – सिद्ध साधना का केन्द्र बिन्दु चित्त को माना गया है। चित्त का ज्ञान ही सांसारिक ज्ञान माना है। जब तक चित्त में सहज बोधि जाग्रत

---

60. वही
61. बा0 दोहा कोश – पृ. 40
62. सिद्ध साहित्य– पृ0 182
63. सिद्ध साहित्य– धर्मवीर भारती, पृ. 182
64. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन– भरत सिह उपाध्याय, पृ. 247
65. सिद्ध साहित्य–धर्मवीर भारती, पृ. 186–187

नहीं होती तब तक वह चंचल रहता है और काल में प्रवेश कर जाता है। उसे दृढ़ (वज्र रूप) करना अभीष्ट है।[66]

चित्त के दो स्वरूप हैं प्रथम बद्ध चित्त जो अपने संकल्पों द्वारा जगत् की निर्मिति करता है, दूसरा मुक्त चित्त, जो ज्ञान–मार्ग में प्रवृत्त होने के बाद की स्थिति है।

इस प्रकार बद्ध चित्त ही सम्पूर्ण सांसारिक बंधनों का मूल है, जब चित्त ज्ञान प्राप्त कर वास्तविक सत्य से साक्षात्कार करता है तो चित्त अपने वास्तविक रूप मुक्त रूप को धारण कर लेता है। बद्ध एवं मुक्त चित्त की स्थिति की ओर संकेत करते हुए सरह कहते हैं –

बद्धों धावै दस दिसहिं, मुक्तों निश्चल स्थाय। [67]

अर्थात् जब चित्त इन सांसारिक आसक्तियों से आबद्ध रहता है तो दसों दिशाओं में भ्रम वश भ्रमण करता रहता है, परन्तु जब अपने एवं पर (संसार) के अभेद का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो मुक्त चित्त दशा को प्राप्त हो एक स्थान पर निश्चल हो जाता हैं।

विज्ञानवाद में चित्त को भव–जाल से मुक्त कर करुणा से समन्वित कर साधना हेतु अग्रसर करने की प्रणाली को समुत्पाद कहा है।[68] सिद्धों ने बोद्धिचित्त समुत्पाद हेतु चार शब्द विशोधन, हनन्, स्थिरीकरण एवं दृढ़ीकरण[69] प्रयुक्त किए हैं।

चित्त विशोधन शब्द को सिद्धों ने अपने समकालीन तांत्रिक परम्परा से ग्रहण किया। चित्त विशोधन का विशेष प्रयोग सिद्ध–साहित्य में हुआ है। सरहपाद चित्त को महासुख एवं तिल्लोपा उसे सहज ज्ञान द्वारा शोधित करने की बात करते हैं।[70] जब चित्त का विशोधन होगा तब मोक्ष प्राप्त होगा ऐसा सिद्धों का मानना है।

सिद्धों में चित्त हनन शब्द का भी उल्लेख हुआ है। चंचल मूषक एवं शतरंज की गोटी के हनन के उदाहरणों अथवा रूपकों के माध्यम से वे चित्त हनन को व्यक्त करते हैं। भुसुकपा चंचल चित्त रूपी मूषक को मारने का आदेश योगियों को देते हैं, ताकि वे मुक्ति को प्राप्त कर सके।[71]

1.3.2.1 राग और महाराग – सिद्ध वैराग्य मूलक निवृत्ति–मार्ग के उपदेशक नहीं थे; वरन् सिद्धों के दर्शन में, उनके चिन्तन में प्रवृत्ति की प्रधानता रही है। वे प्रवृत्ति को प्रधानता देते है; किन्तु आसक्ति की अवहेलना भी करते हैं। अतः व्यक्ति को सांसारिक राग का परित्याग कर विराग का भी परित्याग कर उस राग का स्वरूप पहचानना चाहिए जो मोक्ष का ज्ञान का कारण है और वह राग उस तरूणी महामुद्रा

66. बा0 दोहाकोश, पृ. 107
67. दोहाकोश–राहुल जी, पृ. 7 दोहा सं. 26
68. सिद्ध साहित्य– धर्मवीर भारती, पृ. 190
69. सिद्धसाहित्य– धर्मवीर भारती, पृ. 191
70. सिद्ध साहित्य–धर्मवीर भारती, पृ. 191
71. वही

ज्ञानरूपी प्रज्ञा के प्रति स्नेह के रूप में है, उसके बिना इस जन्म में बोधि चित्त की उपलब्धि एवं साधना नहीं हो सकती।[72]

जिस प्रकार काँटे से काँटा निकाला जाता है उसी प्रकार राग से राग लिप्सा का निराकरण होता है। राग से राग का शमन ही उनके जीवन दर्शन का मूलाधार है।

1.3.2.2 **गुरू** – सहजयान में बौद्ध धर्म के त्रिरत्न बुद्ध, धर्म एवं संघ के साथ चतुर्थ रत्न गुरू को भी महत्त्व दिया और त्रिशरण के स्थान पर चतुःशरण की महत्ता प्रतिपादित की गई। सिद्धों ने भी बौद्ध–धर्म के मूल संदेश 'आत्मदीपोभव' को स्वीकार नहीं किया और सहजयानियों के चतुर्थरत्न गुरू की प्रधानता स्वीकार की। सिद्ध–साहित्य में गुरू के महत्त्व के तीन प्रमुख कारणों को उल्लेखित किया है–[73]

(1) गुरू जगत्–प्रवाह में बहते साधक को निरूद्ध कर लेता है।

(2) जो तत्व शिष्य अपनी अज्ञानता के कारण नहीं ग्रहण कर पाता वह गुरू की प्रसन्नता से सहज में ही प्राप्त हो जाता है।

(3) साधना में गुरू के वचन पतवार के समान हैं। वह शिष्य की साधना का निर्देशन करता रहता है।

सिद्धों में गुरू के महत्त्व का एक कारण तांत्रिक प्रवृत्ति का प्रभाव भी माना जा सकता है।

सिद्धों ने गुरू के वचन अमियरस,[74] गुरू वचन संसिद्धउ जब्बो इन्द्रजाल सब टूटै तब्बै[75] आदि दोहों में गुरू के वचनों को अमृत तुल्य एवं इन्द्रजाल नाशक बताकर उनकी महत्ता को इंगित किया है। गुरू की महत्ता के कारण ही सिद्धों ने गुरू के लिए वर गुरू पाद, श्रीगुरूनाथ आदि आदरसूचक शब्दों का प्रयोग किया है।

सिद्ध गुरू को महत्त्व जरूर देते हैं; किन्तु गुरू वही है जो सहज – साधना में निष्प्राण हो या अनंगवज्र के शब्दों में प्रज्ञोपायोपदेशक हो, अन्यथा 'जाका गुरू भी अंधला चेला खरा निरंध, अंधै अंधे ठेलिया दोन्यूँ कूप पड़न्त' वाली स्थिति होगी। अतः गुरू का ज्ञानी होना जरूरी है। जिससे वह सच्चा पथ प्रदर्शक बन अपने उपदेशों से शिष्य की अज्ञानता का शमन कर उसे जगत् प्रवाह से मुक्त कर सके।

सिद्ध समस्त बाह्य अनुष्ठानों को नकारते हैं तथा इन अनुष्ठानों को अनुपयोगी, भ्रांत एवं अविश्वसनीय बता उनका विरोध करते हैं। सरहपाद ने तंत्र–मंत्र इत्यादि बाह्यनुष्ठानों के प्रति खण्डनात्मक दृष्टिकोण अपनाया है। ये बाह्य अनुष्ठान व्यक्ति को

---

72. सिद्ध साहित्य – धर्मवीर भारती, पृ. 195
73. सिद्ध साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ. 196
74. दोहाकोश – राहुल सांकृत्यायन, दोहा – 44, पृ. 13
75. दोहाकोश– दोहा– 84, पृ. 21

भ्रमित कर सांसारिक मृगमरीचिका में भटकाते रहते हैं। अनुष्ठानों द्वारा बाह्य शुद्धि तो हो सकती है; परन्तु ये आन्तरिक शुद्धि के लिये असरदार नहीं हैं।

1.3.2.3 देह का महत्त्व – सिद्ध देह को महत्त्व देते हैं । उनके अनुसार जो परमसत्य है उसका निवास देह के भीतर ही है। प्रज्ञोपायात्मक ज्ञान से जब साधक अपनी देह को भी तथागत के स्वभाव का जान लेता है तब यही देह धर्मकाया हो जाती है।'[76] सरहपाद देह को तीर्थसदृश पवित्र बताते हुए कहते हैं, देह समान तीर्थ उन्होंने कभी न देखा एवं न कभी सुना है।[77]

1.3.2.4 चित्त में पंच महाभूत – सिद्ध चित्त में पंचमहाभूत सिद्धांत के पक्षधर हैं। सिद्ध पंच महाभूतों (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) और उनके सृष्टि रूप में गठन के मूल आधार प्रज्ञोपाय अद्वय की अनुभूति अपने ही अन्दर करने का उपदेश देते हैं; क्योंकि वे समस्त बाह्य सृष्टि की उत्पत्ति चित्त की परिकल्पना से ही मानते हैं। अतः ज्ञान प्राप्त करने का साधन यह है कि ध्यान एकाग्र कर अपने ही अन्दर उन पंचमहाभूतों और प्रज्ञा तथा उपाय का साक्षात्कार किया जाए, तभी वह संसार के धर्म और पुद्गल–नैरात्म्य का दर्शन कर, वज्रज्ञान प्राप्त कर सिद्ध बन सकेगा।'[78]

कृष्णपाद पंच भूतों से शरीर एवं समस्त सुरासुर को निर्मित मानते हैं।

1.3.2.5 योग – बौद्ध–धर्म में भी योग के महत्त्व को स्वीकार किया गया है। वे उसे षडंग योग कहा करते थे। इसमें 6 अंग थे, प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, अनुस्मृति और समाधि।'[79] सिद्धों में हठयोग साधना को अपनाया है जो चित्त का निरोध कर गुह्य साधना के लिए भूमिका प्रस्तुत करता है।

योगाचार में चक्र माने गये थे। पाँच चक्र थे, पाँच धातुएँ अन्तस्थ थी, पूर्वोक्त ध्यान पद्धति द्वारा पीतियाँ थी, पाँच सुख थे तथा ध्यान की पाँच पद्धतियाँ थी। जब साधक यान द्वारा पंचमहाभूतों को अन्तस्थ कर लेता था तब वह मनोवत्थु से नाभि तक के प्रदेश पर चिन्तन करता था और ध्यान एकाग्र कर चक्रों का बंधन करता था। सिद्धों ने योग द्वारा पंच महाभूतों को अन्तस्थ करना स्वीकृत किया है। यद्यपि उन्होंने चित्त की एकाग्रता के स्थान पर प्रज्ञोपायात्मक घर्षण को प्रणाली बनाया है। नैरात्म्यज्ञान अथवा भगवतीप्रज्ञा का स्थान उन्होंने हृदय के स्थान पर कपाल या मस्तक के अन्दर रक्खाहै। किंतु चक्रों की संख्या चतुर्काया–सिद्धांत के अनुसार 4 मानी हैं।[80]

76. सिद्ध साहित्य– धर्मवीर भारती, पृ. 205
77. एहिं सो सरस्वती प्रयाग, एहिं सो गंगासागर।
    बाराणसी प्रयाग, एहि सो चन्द्र दिवाकर।। (96)
    देह सदृश तीर्थ, मैं सुनेउ न देखेउं।। (97)
78. सिद्धसाहित्य– धर्मवीर भारती, पृ. 206
79. सिद्ध साहित्य–' धर्मवीर भारती, पृ. 210
80. वही, पृ 211

सिद्धों के हठयोग में चार काया, चार क्षण, चार मुद्रा, चार आनन्द, चार शून्य, चार चक्र को महत्त्व दिया गया है। ये चारों चक्र मेरूदण्ड में स्थित हैं। इन चक्रों के बेधन का मार्ग नाड़ियों से होकर माना है।

1.3.2.6 **चार आनन्द** – प्रथमानन्द, परमानन्द, विरमानन्द एवं सहजानन्द ये चार आनन्द है।[81] प्रथमानन्द विचित्र क्षण का आनंद है, परमानन्द ज्ञान सुख का योग है, विरमानंद समागम सुख सदृश है तथा इन सभी राग–विरागों से वर्जित चतुर्थ आनन्द सहजानंद है जो सर्वश्रेष्ठ है।[82]

सिद्धों ने महासुख को आनन्द से शीर्ष माना है तथा प्रज्ञोपाय मैथुन से प्राप्त सहजानन्द को ब्रह्मानन्द (हिन्दुओं की सर्वोच्च अनुभूति) से ऊँचा ठहराया है।[83]

सिद्धों ने सहजानन्द के अलौकिक, अनुभूतिजन्य, अतीन्द्रिय सुख को रूपक के माध्यम से अनेक स्थानों पर समझाने की चेष्टा की है। इस आनंद को प्राप्त करने वाली चार मुद्राएँ कर्म–मुद्रा, धर्म–मुद्रा, ज्ञान–मुद्रा एवं महामुद्रा बताई गई है।[84]

महा–मुद्रा की साधना जटिल साधना है। इस साधना के उपरांत ही किसी की गणना सिद्धाचार्यों में होती है। सिद्धों ने मुद्रा को नारी रूप में कल्पित किया है।[85] तभी सिद्धों की साधना में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

महामुद्रा के वरण के उपरांत योगी गुरू की शरण में जो उसे अभिषिक्त कर उसकी महामुद्रा साधना को सम्पन्न करता है।[86]

1.3.2.7 **समाधि** – सिद्ध साधना का चरम लक्ष्य समाधि है। महा–मुद्रा के साथ साधक की साधना की चरम परिणति को समाधि कहा है। जो प्रज्ञा और उपाय के समागम के कारण सहज समाधि कहलाती है।[87] यही समाधि सिद्धों की सम्पूर्ण साधनाओं का निष्कर्ष है अथवा अन्तिम परिणति है। समाधि में स्थित होने पर साधक पर कोई बंधन नहीं रहता, वह आसक्तियों, बंधनों से सर्वथा मुक्त हो महासुख, महासिद्धि, अनुत्तर ज्ञान को प्राप्त करता है।

इस प्रकार सिद्धों की साधना एवं उनका तत्त्व–चिन्तन–बौद्ध धर्म से प्रभावित रहा है। इसके साथ ही उन्होंने लोक–धर्म की प्रतिष्ठा कर नूतन जीवन–दर्शन की नींव रखी।

---

81. सहज सिद्ध : साधना एवं सर्जना–रणजीत कुमार साहा,पृ. 115
82. सिद्ध साहित्य–धर्मवीर भारती, पृ. 219
83. सिद्ध साहित्य–धर्मवीर भारती, पृ.219
84. वही, पृ. 219
85. वही, पृ 220
86. वही, पृ. 223
87. सिद्ध साहित्य– धर्मवीर भारती, पृ. 225

1.4 सिद्ध-साहित्य : प्रमुख प्रवृत्तियाँ

1.4.0 सिद्ध–साहित्य वह साहित्य है जो कि वज्रयानी सिद्धों द्वारा रचयित है।

यह सत्य है कि सिद्ध मूलतः साधक थे; परन्तु सिद्धों के साहित्य में काव्य–तत्त्वों का नितांत अभाव हो ऐसा नहीं है। ये सिद्ध कवि कबीर की भाँति 'मसि कागद छूयों नहीं, कलम गही नहीं हाथ' वाली स्थिति में नहीं थे; वरन् इसमें से बहुतों ने तो सम्पूर्ण संस्कृत–वाड्मय का गहन अध्ययन किया था तथा तांत्रिकों में कितने ही आचार्य ऐसे थे जिन्होंने व्याकरण और काव्य–शास्त्र की दिशा में अपनी अमूल्य देन दी है।[88]

सिद्ध–साहित्य का विश्लेषण करने पर हम सिद्धों के साहित्य को दो भागों में विभक्त करते हैं –

(अ) गीति साहित्य जिसके अन्तर्गत चर्यापदों एवं वज्रगीति को सम्मिलित किया गया है।

(ब) मुक्तक–साहित्य जिसमें मुक्तक, दोहे तथा अर्द्धालियों को स्थान दिया गया है।

भाव एवं कला दोनों का योग ही उत्तम काव्य निर्मित करने में सहायक रहा है। सिद्ध–साहित्य में भी काव्य के दोनों पक्षों का सुन्दर सामंजस्य हुआ है। सिद्ध–साहित्य के विवेचन हेतु सर्वप्रथम उसका अनुभूति पक्ष विचारणीय है –

1.4.1 **विषयगत प्रवृत्तियाँ** – सिद्धों ने अपने चर्यापदों, वज्रगीतियों, मुक्तकों में अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त किया है। उन्होंने जो विचार व्यवत्त किए हैं वे नीति–प्रधान एवं भाव–प्रधान हैं। इन दोनों को पृथक् करना सरल नहीं है; क्योंकि जहाँ वे अपने सिद्धांत–साधना व्यक्त करते हैं वही साथ में नीति उपदेश भी देते चलते हैं। उनके काव्य में निरूपित उनकी सहज अनुभूतियाँ ही भाव–पक्ष का निर्माण करती हैं।

1.4.1.1 **समाज दर्शन** – सिद्धों के साहित्य में तद्‌युगीन समाज की साक्षात् अनुभूति सहज ही हो जाती है। उनके चर्यागीत आदिम, सहज, एवं ग्रामीण जीवन से संबंधित हैं। इन गीतों में घने नगर से दूर तथा आबादी वाले स्थानों से दूर बसने वाली जातियों, जनजातियों, श्रमजीवी वर्गों, मजदूरों के नाव खेने, शिकार खेलने, औजार बनाने, लकड़ी काटने, रूई धुनने, गौ पालन के सुन्दर रम्य एवं सौम्य चित्रों का अंकन हुआ है। इन रंग–बिरंगे, सतरंगी चित्रों में सिद्धों की भावनाएँ ही अभिव्यक्त हुई हैं।

शांतिपा ने अपनी चर्चा में रूई धुनने का सूक्ष्म प्रतीकात्मक वर्णन किया है – मै रूई को उसके सूक्ष्म से सूक्ष्मतर अंशों तक धुनता चला गया जब तक कुछ भी शेष न रह गया –

तुला धुणि धुणि आँसु रे आँसु।
आँसु धुणि धुणि णिर सेसु ।।

---

88 सिद्ध साहित्य–धर्मवीर भारती, पृ. 238

तुला धुणि धुणि सुणे अहारिउ।

शून लइया अपणा चटारिउ।।[89]

जाल से मछली पकड़ने का चित्रण विनयश्री के पद में मूर्त्त रूप में हुआ है –

गिरिवर सिहरेहि लाला लाम्बए । तहिं सो केवटिणि रिमर जगाएं।।

अरे भल्लि केवटिणि जाणविचारउ। माआ माच्छ निरन्तरे मारउ।।

द्वतिंश नाला साब्ब निरून्धी। मारउ माच्छा निसर बान्दी।।

माआ माच्छा आगेभ विभाक्खी। आछइ चउसुद्ध जाला राक्खी।। [90]

सिद्धों के दोहों में दहेज के प्रति आकर्षण के कारण निम्न वर्ग के साथ उच्च वर्ग के वर का विवाह वर्णित किया, जिससे समाज की लालची प्रवृत्ति तथा ऊँच–नीच ऊपरी दिखावा सिद्ध हुए।[91] हाथी के शिकार, गृह–वधू, सास–ससुर आदि का वर्णन किया है।

1.4.1.2 सामाजिक चिन्तन – सिद्धों ने सामाजिक रूढ़ियों का विद्रोह कर समाज के प्रति अपनी समृद्ध चिंता को प्रदर्शित किया है। इनमें रूढ़ियों, बाह्याचारों, बाह्याडम्बरों के प्रति विद्रोह के स्वर मुखर हुए हैं।

तद्युगीन समाज में व्याप्त तंत्र–मंत्रों की पोल इन सिद्धों ने अपने गीतों में खोली है। सरहपा तंत्र–मंत्र का खंडन करते हुए कहते हैं –

मन्त्रण – तन्त्र धेअण धारण। सत्वरि रे बढ़ पि (ब) भमकारण।[92]

समाज में पंडितों को फटकार लगाते हैं जो कि मात्र शुष्क शास्त्रों की व्याख्या करते हैं सार तत्व को नहीं जानते –

पंडित सकल शास्त्र बक्खानै। देहहि बुद्ध व संतन जानै।

अवनागवन न एकउ खंडित। तऊ निलज्ज मनै हम पण्डित। [93]

वे वेदों के सार को न जानने वाले ब्राह्मण जो व्यर्थ ही वेदों का अध्ययन कर रहा है तथा आडम्बरों को बढ़ावा दे रहा है कर्मकाण्डों, होम इत्यादि कर रहा है ऐसा ब्राह्मण धर्म–अधर्म को नहीं जानता। मात्र ऊपरी दिखावा करता है, अपने कोश के प्रथम दोहे में ही सरहपाद ब्राह्मणवाद पर प्रहार करते हुए कहते हैं – ब्रम्हणेंहि म जानन्तहि भेउ, एवइ पढ़िअड ए च्चउवेउ।

---

89. साहित्येतिहास– सुमनराज, पृ. 163
90. दोहाकोश–विनय श्री की गीतियाँ सं. 3 पृ. 362–363
91. डोम्बी विवाहिआ अहारिउ जाम। जउतुके किउ आणुतु धाम–चर्या 19
92. दोहा कोश– दोहा सं. 43
93. वही–दोहा सं. 75

मट्टि पाणि कुस लई पढन्तं । घरहि बइसी आग्गि हुणन्त।।

कज्जे विरहिउ हुअवह होमें। अक्खि डहाविउ कडुअें धूमें।

एकदण्डि त्रिदण्डी भअवँ बेसे। विणुआ होइअइ हंस उएसे।।

मिच्छेहि जगवाहिउ भुल्ले। धम्माधम्म णजाणिउ तुल्ले। [94]

ऐसा कह कर समाज के सामने ब्राह्मण की तद्‌युगीन विकृत छवि को दिखाया है जो कर्म–काण्डों, भगवा वस्त्रों, होम इत्यादि द्वारा लोगों को भ्रमित कर रहा है।

सिद्धों के समय में शैव–जैन, हिन्दू सभी सम्प्रदायों में रूढ़िवादिता ने घर कर लिया। सहज जीवन के विश्वासी सिद्ध भला इन आडम्बरों को कैसे सहते? अतः उन्होंने इनकी जानकारी अपने दोहों के माध्यम से जनता को दी।

युगीन समाज में व्याप्त छुआछूत, ऊँच–नीच को भला सिद्ध कैसे स्वीकार करते। वे कहते हैं –

जइ चण्डाल–घरे भुंजइ, तउविण लग्गई लेउ। [95]

विनयश्री के पद के माध्यम से समरस अवस्था में ब्राह्मण एवं चण्डाल के भिन्न–भिन्न होने की बात को नकारते हुए, सार्थक उद्देश्य की प्राप्ति में दोनों को समान होना माना है –

हउ ब्राह्मण गिरिकुंज निवासी। दुह चण्डाला ए लइल्लाइ पइसी।।

भणइ विनयश्री एकली काले। समरस भइल्लाहु ब्राह्मचण्डाले।।

बहिलि समिर णेकुंजअ पइसअ। से आच्छे पिणे मा कुल नासउ।।

सहल सहिला पुव पेखु इन्दि आली। हउं ब्राह्मण से मेहलि चण्डाली।।

से आणुराती चण्डाली रे देख। बेनि संजोअे असेस वि एक।। [96]

इस प्रकार ब्राह्मणों, पोंगे पंडितों, पाखंडी जैनियों, दुराचारी कापालिकों के साथ–साथ भ्रष्ट बौद्धों की भी कड़े शब्दों में निन्दा की है।

1.4.1.3 सहज जीवन पर बल – सिद्ध सहज जीवन के विश्वासी थे, अतः अपनी इसी अनुभूति को काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है।सरहपाद जीवन में भोगों के त्याग की बात नहीं करते, बल्कि उन्होंने भोगों के प्रति आसक्ति भाव को त्याज्य माना है। बालक के सदृश व्यवहार करने एवं छल–पाखंड–पूर्ण जीवन को वे निन्दनीय मानते हैं।

---

94. दोहा कोश – दोहा सं. 1,2,3
95. वही–दोहा सं. 112
96. दोहाकोश– विनय श्री की गीतिका सं. 13

इनका मानना था कि विषयों में रमण करते विषयों में लिप्त न हो। पानी को निकालते हुए पानी को न छूएँ–

विसअ रमन्तण विसअहि लिप्पइ, उअअ हरन्त ण पाणी च्छुप्पइ।[97]

एक अन्य दोहे में वे कहते हैं –

खाअन्ते – पीवन्ते सुरअ रमन्ते। आलि उल बहलहो चक्क फरन्ते।[98]

उक्त प्रसंग में आनन्द पूर्ण खाते–पीते जीवन को चित्रित करते हैं। उनका मानना है कि यह संसार आनन्द से परिपूर्ण है अतः यहाँ नाचो, गाओ एवं मौज से जीवन व्यतीत करो –

जइ जग पूरिअ सहजाणन्दे । णाच्चहु गाअहु विलसहु चंगे। [99]

सिद्धों ने भव अर्थात् संसार में ही निर्वाण का समर्थन करते हुए सहज जीवन जीने की बात की है।

मुक्कउ चितगेएन्द करू, एत्थ विअप्प ण पुच्छ।

गअण गिरिणइ–जल पिअउ,तहिं तड वसउ सइच्छ।

उक्त रूपक के माध्यम से सिद्ध कहते हैं कि चित्तरूपी गजेन्द्र को मुक्त कर दो, उससे पूछताछ मत करो। गगन (शून्य) रूपी गिरि नदी के जल को पीके उसके तट पर उसे स्वच्छंद बैठने दो।[100]

उनका मानना है कि संसार आनन्द से पूर्ण है अतः चित्त को स्वतंत्र रमण के लिए मुक्त करो।

1.4.1.4 आध्यात्मिक दर्शन :– सिद्ध–साहित्य में सिद्धों ने ब्रह्म (मूल तत्व), माया, मुक्ति–निर्वाण सभी को अभिव्यक्त किया है। सरहपाद परमपद को शून्य निरंजन मानते हैं। वह अक्षर वर्ण विवर्जित है।[101]

परमपद को उन्होंने माया मय बतलाया है –

बुद्धि विणासइ मण मरइ, तुट्टइ जहं अहिमाण।

सो माआमअ परमपउ, तहिं कि बज्जइ झाण।। [102]

---

97. दोहाकोश – राहुल जी, दोहा–71
98. वही– दोहा सं. 48
99. वही – 136
100. दोहाकोश – पृ. 31
101. दोहा कोश – पृ. 36
102. वही, पद– 61

सिद्ध मुक्ति को स्वयं सिद्ध वस्तु मानते हैं। परम की प्राप्ति ही मुक्ति है। मन की शंकायुक्त स्थिति हट जाने पर उसकी चंचलताओं के मिट जाने पर परम महासुख की स्थिति आती है। उस स्थिति को वे और स्पष्ट करते हैं–

आइ ण अन्तण मज्झ तहिं, णउ भव णउ णिव्वाण।

एहु सो परममहासुख, णउ पर पउ उप्पाण। [103]

अग्गे पच्छे दस दिसे, जं जं जोअमि सोवि। [104]

अर्थात् परम–पद आदि अन्त मध्य रहित है न वह संसार है न निर्वाण, न अपना, न पर का भेद है। आगे–पीछे, दसों दिशाओं में जहाँ देखे, वहीं वही है।

इस प्रकार सिद्धों के चर्यागीतों, मुक्तकों, दोहों आदि में सहज जीवन, समाज दर्शन, रसात्मकता, दर्शन एवं सामाजिक चिंतन सम्बंधी अपने भावों की सुन्दर अभिव्यवित हुई है।

1.4.1.5 नारी के प्रति उदात्त भाव – युगों से तिरस्कृत नारी को सिद्धों ने अपनी साधना में स्थान प्रदान कर उसे गौरवान्वित किया। उन्होंने नारी को महामुद्रा बनाया तथा उसे डोम्बी, चाण्डाली, कपाली, योगिनी, शबरी आदि नाम दिये।[105] निम्नवर्गीय नारी को भी समानता प्रदान की। सिद्धों ने नारी को नैरात्म्यज्ञान स्वरूप मानते हुए उसके प्रज्ञा रूप को हृदयंगम किया। युगीन परिवेश की संकीर्णता व विवशता के दायरे में बंधक नारी को सिद्धों ने अपनी शक्तिरूपिणी सह–साधिका का पद प्रदान कर उनके मुक्ति–पथ को आलोकित किया।

1.4.1.6 रसात्मकता – श्रृंगार के दोनों पक्षों संयोग एवं वियोग का सुन्दर चित्रण सिद्ध साहित्य में मिलता है। सिद्धों ने निर्वाण–भावना का तिरस्कार कर महासुख की अनुभूति को प्रधानता प्रदान की है। महासुख उपलब्धि की प्रज्ञोपायात्मक योग–प्रणाली को दाम्पत्य–प्रणय के रूपकों में वे वर्णित करते हैं।[106]

श्रृंगार रस के चित्रण में नायक–नायिका एवं दूती आलम्बन है। वास्तविक नायक–नायिका तो तथागत और उनकी भगवती नैरात्मा है। डोम्बी के प्रति कपाली का, चण्डाली के प्रति भुसुकु बंगालीका प्रेम–निवेदन वास्तव में बोधिचित्त और शून्यता की ही प्रणय–केलि के विभिन्न रूपक हैं।[107]

एक श्रृंगार रूपक में गुण्डरीपा योगिनी से आलिंगन का दान चाहते हैं। अपनी इच्छा प्रगट करते हुए वे कहते हैं –

---

103. वही, दोहा स 51
104. वही दोहा सं. 52
105. सिद्ध साहित्य, पृ. 220
106. सिद्ध साहित्य भारती, पृ. 245
107. वही, पृ 246

तिउड़डा चापी जोइणि दे अंकवाली।

कमल कुलिश घाण्ट करहु बिआली।।

जोइनि तँइ बिनु खणहिं न जीवमि।

तो मुँह चुम्बी कमलरस पीबमि।। (चर्यागीत पदावली – 4)[108]

सिद्ध–साहित्य में वियोग–शृंगार का एक ही चर्यापद है और वह नायिका रब्ध है। कुक्कुरीपा उसमें भगवती नैरात्मा को आसन्न प्रसवा विरहिणी नायिका के रूप में चित्रित करते हैं जिसका पति शून्य–चित्त होने के कारण अन्यमनस्क (अमनसिकार) है और विरागी है। उसी परिस्थिति में उसने एक मृत शिशु को जन्म दिया और वह प्रसव–श्रम से पराभूत है। अपने इस दुख को स्वतः भगवतीनैरात्मा चर्यापद में अभिव्यक्त करती है।[109]

सिद्धों की चर्याओं में मुख्य भाव तो शांत एवं शृंगार की अभिव्यक्ति करना है; किन्तु इनके साथ ही साथ उत्साह, विस्मय, क्रोध, हास्य एवं शोक भी कहीं–कहीं मिलते हैं।[110]

एक स्थल पर शबरपा शव यात्रा एवं अन्तेष्टि क्रिया का करुण एवं प्रामाणिक वर्णन करते हैं। जिससे करुण–रस का संचार हुआ है।

चारि वासे गडिला रे दिआँ चंचाली

ताहि तोलि शबरों डाह कएला कान्दइ सगुण शिआली

मरिल भवसत्ता रे देह देह दिघलि वली।

हरे से सबरो निरेवण भइला फिटिलि षबराली।। [111]

1.4.2 **शैलीगत वृत्तियाँ** – अभिव्यक्ति अथवा शैली पक्ष कवि की अनुभूतियों (मनोजागतिक संरचना) को निखार, अधिक सौन्दर्य का सृजन करता है। इस दृष्टि से सिद्धों का साहित्य शैलीगत सौन्दर्य से शून्य नहीं है। इन्होंने भाषा, अलंकार, छंद, प्रतीक, गीति तत्वों एवं उलटबासियों के माध्यम से अपनी अनुभूतियों की सशक्त अभिव्यक्ति की है। शैलीगत प्रवृत्तियों के आधार पर हम सिद्ध–साहित्य की समीक्षा प्रस्तुत करेंगे।

1.4.2.1 **भाषा** – सिद्ध–साहित्य की भाषा रहस्यात्मक स्वरूप लिए हुए है। जिसका प्रमुख कारण–बौद्ध–धर्म के तांत्रिक स्वरूप (मंत्रनय) से उनका सम्बंध था। बौद्धों ने अपने तंत्रों की इस रहस्यमयी प्रतीकात्मक शैली को सन्धा– भाषा या संधा–वचन कहा

---

108. चर्यागीत पदावली, सुकुमार सेन
109. सिद्ध साहित्य, पृ. 250
110. वही
111. सहज सिद्ध– साहा, पृ 204

है।[112] सिद्धों की 'सन्धा भाषा' को लेकर विचारकों में मत–भेद है सरहपाद स्वयं इसे 'गहिणगुहिर' भास कहते हैं।

म. हर प्रसाद शास्त्री ने जिस प्रति से चर्यापदों की प्रतिलिपि कराई थी, उसमें लिपिकार ने बराबर सन्धा के स्थान पर सन्ध्या भाषा लिखा था। अतः सन्ध्या भाषा की रहस्यमय सांकेतिकता को देख शास्त्री जी ने अनुमान लगाया कि सन्ध्या के अर्थ है आलो आन्धारी भाषा या धूप–छाँही शैली जिसके बाह्य अर्थ कुछ और तथा आन्तरिक अर्थ कुछ और हो। डॉ. विनयतोष हरप्रसाद जी के मत से सहमत हैं।[113]

पण्डित विधुशेखर सन्ध्या शब्द को लिपिकारों की त्रुटि–मानते हुए 'सन्ध्या' को वास्तविक मानते हैं, जिसका आशय अभिप्राययुक्त भाषा, जिसका लक्ष्य बाह्य अर्थों के बजाय किसी दूसरे निहित अभिप्राय की अभिव्यक्ति करना है।[114]

डॉ. बागची भी विधु शेखर शास्त्री के मतानुसार ही सन्ध्या भाषा के स्थान पर सन्धा भाषा को सही मानते हैं। जिसका अर्थअभिसन्धि युक्त शैली है।[115]

सिद्ध कवि सरहपाद द्वारा 'गहिण गुहिर भास' कहना तथा विरूपा की चर्या में स्पष्टतः अभिसंधि का प्रयोग होना इस बात का ठोस आधार प्रस्तुत करते है कि सन्ध्या और सन्धा दोनों का अर्थ अभिप्रयात्मक भाषा है।[116]

सिद्धों की भाषा दोहरा अर्थ रखने वाली संधा अथवा सन्ध्या भाषा है जो अलौकिक दिव्य, गुप्त अर्थ को ध्वनित करती है। इस भाषा में लौकिक–अलौकिक युगल अर्थ ध्वनित होते हैं।

सिद्ध–साहित्य की भाषा में संधा अथवा सन्ध्या नाम को लेकर जैसे विचारकों में मतभेद रहा है ठीक उसी प्रकार सिद्धों के दोहों एवं चर्याओं के स्वरूप निर्धारण क्रम में भी विचारकों की स्थिति मुंडे – 'मुंडे मतिर्भिन्ना' वाली रही है। सभी सिद्धों की भाषा को अपनी–अपनी प्रांतीय भाषा का प्राचीनतम रूप मानते हैं। महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री, विनयमोहन भट्टाचार्य ने इनकी भाषा को बंगला भाषा का आदिरूप बतलातेहुए इसे पुरानी बंगला[117] कहा है। रायबहादुर आर्तवल्लभ महन्ती इसे पुरानी उड़िया[118],

---

112 सिद्ध साहित्य– धर्मवीर भारती, पृ 268
113 वही
114. वही
115 सिद्ध साहित्य– धर्मवीर भारती, पृ. 269
116. सिद्ध साहित्य– धर्मवीर भरती, पृ. 269
117. बौद्ध मान औ दोहा – सं. हर प्रसाद शास्त्री (भूमिका)
118. सिद्ध साहित्य– धर्मवीर भारती, पृ. 286

डॉ. वाणीकांत आसामी[119], काशीप्रसाद एवं राहुल सांकृत्यायन ने इसे मगही मैथली से प्रभावित पुरानी हिन्दी[120] बताया है।

सिद्धों की कर्मस्थली श्री पर्वत (पूर्वी भारत) रहा है। राहुल जी द्वारा हिन्दी काव्य–धारा में उसे–पूर्वी भाषाओं का पूर्वी रूप कहना तर्कसंगत जान पड़ता है। सिद्धों का रचनाकाल 8वीं से 13वीं शती तक निर्धारित माना जाता है। अतः तद्युगीन भाषा सम्बंधित परिस्थितियों के कारण ही दोहाकोशों एवं चर्याओं की भाषा में भी अन्तर दिखाई देता है।

इस भाषागत विभेद का एक कारण दोहाकोशों की प्राचीनतम प्रतियों का उपलब्ध होना भी है तथा चर्यापदों को 8वीं से 12वीं शताब्दी तक गाये एवं पढ़े जाने के कारण[121] उस पर स्थानीय भाषाओं का प्रभाव पड़ा जिससे उनकी भाषा दोहाकोशों की भाषा से अधिक विकसित स्वरूप में आज उपलब्ध हुई है।

इस विभेद का एक कारण यह कहा जा सकता है कि दोहों की परम्परा पश्चिमी (शौरसेनी) परम्परा थी और दोहे लिखते समय सिद्धों ने पश्चिमी या शौरसेनी अपभ्रंश का प्रयोग किया; क्योंकि वह भाषा दोहों में मँज चुकी थी; किन्तु जब उन्होंने गेय पद लिखे तो स्थानीय बोली को आधार बनाया; किन्तु चूँकि वह बोली अभी काव्य में मँजी नहीं थी अतः स्थान–स्थान पर उन्होंने अभिव्यक्ति और काव्य परिष्कार के लिए शौरसेनी का सहारा लिया।[122]

1.4.2.2 **छन्द** – छन्द काव्य की अभिव्यक्ति को नियंत्रित और संयत करने के साथ ही साथ उसे सुसंस्कृत एवं परिष्कृत भी बनाते हैं। छन्द सुदृढ़ कवच की भाँति कवित्व को आच्छादित कर उसे स्थायित्व और दीर्घ जीवन प्रदान करते हैं। जिससे वह युगयुगान्तर तक यथावत् जीवन्त, सुरक्षित एवं रस युक्त रहता है।

सिद्ध–साहित्य में दोहाकोश एवं चर्यागीतियों में पृथक्छन्द शैलियों को अपनाया है। सर्वप्रथम दोहाकोश के छन्द शैली पर विचार करेंगे –

1.4.2.2.1 **दोहाकोश के छन्द** – अपभ्रंश में विशेष छन्द दोहा – चौपाई को माना है। दोहाकोशों की भाषा अपभ्रंश मानी गई है। दोहा काशों का मुख्य छन्द दोहा है। जिस समय सिद्धोंने दोहा छन्द को अपनाया तब तक दोहों का स्वरूप स्थिर नहीं हुआ था। सरह के दोहाकोश में दोहों की संख्या अधिक है; परन्तु अन्य छन्दों को भी उसमें अपनाया गया है। डॉ. शहीदुल्ला ने दोहाकोश गीतों में निम्न छन्दों को पाया है – दोहा,

119. वही
120. पुरातत्व निबंधावली– राहुल सांकृत्यायन, पृ. 167
121. दोहाकोश– राहुल सांकृत्यायन, पृ. 69
122. सिद्ध साहित्य– धर्मवीर भारती, पृ. 289 .

सोरठा, पादाबुलक, अडिल्ल वदनक, गाथा, रोला, उल्लाला, महानुभाव, मरहट्ठ।[123]

सिद्धों के दोहाकोशों में छन्द ठीक उसी रूप में नहीं मिलते जिस रूप में वे वर्तमान हैं; अपभ्रंश के कड़वक छन्द का प्रभाव भी इन कोशों पर परिलक्षित होता है, परन्तु कड़वक छन्द हेतु किसी निश्चित नियम का पालन देखने को नहीं मिलता है। कहीं एक कड़वक में समचतुष्पदियों के 12 चरण हैं और तब एक दोहा है, दूसरे कड़वक में चार चरण और तीसरे में 42 चरणों के उपरांत एक दोहा आता है।[124]

1.4.2.2.2 **चर्यापदों के छन्द** – सिद्धों की चर्याओं में 'पादाकुलक' छन्द की प्रधानता दिखाई देती है। चर्याओं के भाषा–विषयक विवेचन से यह स्पष्ट हो चुका हैकि चर्याओं की भाषा पूर्वी भाषाओं से प्रभावित रही; परन्तु पूर्व के प्रचलित छन्द 'पयार' का चर्याओं में उल्लेख अथवा उपयोग नहीं किया जाना संदेह को जन्म देता है। डॉ. सुनीति कुमार ने इस संदेह के निराकरण के लिए अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहा है कि हो सकता है उस समय (सिद्धों के समय) पयार छन्द विकसित न हुआ हो अथवा लोकगीतों तक ही सीमित रहा हो अथवा अपभ्रंश के छन्दों को अपना कर वेअपने पूर्वागत परम्परा का निर्वाह कर रहे हों।[125]

डॉ. सुकुमार सेन सहित कुछ विचारक पादाकुलक से ही पयार का विकास मानते हैं।[126]

पादाकुलक का एक उदाहरण अवलोकनीय है –

जोमण ।। गोअर।। आला।। जाला।।

आगम।। पोथी।। इष्टा।। माला (चर्यापद 40)

1.4.2.3 **उलटबांसी** – विचार–गोपन, भाव गाम्भीर्य, ध्यानाकर्षण, एवं परम्परा निर्वाह प्रवृत्ति हेतु सिद्धों ने उलटबाँसी शैली को अपने साहित्य में प्रश्रय दिया।

सिद्धों द्वारा प्रयुक्त उलटबाँसी शैली के कुछ उदाहरण अवलोकनीय है–

भुसुकपाद सांसारिक बंधनों को तोड़, महासुख प्राप्ति का उपदेश देते हुए कहते हैं –

निसि अन्धारी मुसा अचारा। अमिअ भरबअ मुसा कारअ अहारा।

मार रेजोइआ मुसा पवणा। जेण तुटअ अवणा–गवणा।।ध्रव।।

भव बिन्दारअमुआखणअ गाती। चंचल मुसा कलिआँ नाशक थाती।

---

123. दोहाकोश– राहुल साकृत्यायन, पृ. 65–66

124. सिद्ध साहित्य – भारती, पृ. 296

125. वही, पृ. 297

126. वही

काला मुसा अहणबाण। गअणे उठिकरअ अमिअ पाण।।

तबसे मुसा उञ्चल पाञ्चल। सद्गुरू बोहे करह सो निच्चल।

जबे मुसा अचार तुटअ। भुसुकु भणअ तबे बान्धन फिटअ।। [127]

अर्थात् अंधेरी रात्रि में मूषकआचरण करता है अमृत का भक्षण करके मूषक अपना आहार करता है। अरे योगी इस मूषक को पवन से मार; क्योंकि यह आवागमन को अवरूद्ध नहीं करता है। भव–विदारक मूषक ग्रन्थि को कुतर देता है। चंचल मूषक धरोहर का नाशक है। काला मूषक के कोई वर्ण नहीं है। अतः आकाश में उठाकर अमृत का पान करो। तब वह मूषक आँचड़–पाँचड़ अर्थात बेचैन दिखाई देगा, सत गुरू के अनुशासन से तब उसे निश्चल करो। जब मूषक अपने आचरण से उपरमित हो जाएगा तब भुसुकपाद कहते हैं कि सम्पूर्ण बंधन कट जाएँगे। यहाँ निशा (अज्ञानावस्था), मूषक (चंचल चित्), आचरण (सधानाभ्यास), अमृत (सात्त्विक अवस्था), भव (संसार), गाती (त्रिगुण की ग्रंथि) बाँधन फिटअ (मोक्ष) के प्रतीक हैं।[128]

सिद्ध सरहपाद रहस्यवादी सिद्ध थे, सरहपाद की उलटबाँसी शैली ने परवर्ती संतों को प्रभावित किया है। चित्त की वृत्ति को उलटबाँसी शैली में इस प्रकार कहते हैं–

बद्धो धावइ दस दिसाहि, मुक्को णिच्चल ट्ठअ। [129]

यहाँ चित्त का बंधने पर दौड़ना एवं मुक्त करने पर स्थिर होना मर्यादा का उल्लंघन ही है, अटपटी बात लगती है, परन्तु यहाँ सरह ने उलटबाँसी शैली के माध्यम से कहा है कि – चित्त स्वभावतः शुद्ध, पावन होता है; परन्तु सांसारिक बंधनों में आबद्ध होने पर वह भ्रम वश दौड़ता रहता है। उसकी स्थिति अस्थिर रहती है; परन्तु जब यही चित्त सांसारिक मृगमरीचिका से अवगत हो इससे मुक्त हो जाता है, तो वह स्थिर हो जाता है।

सरहपाद, कुक्करीपाद, कृष्णपाद, गुण्डरीपाद, भुसुकपाद, डोम्बीपाद, ढेण्ढणपाद ने उलटबाँसी शैली को अपनाया है। इन्होंने अपनी पूर्ववर्ती परम्परा को समृद्ध कर परवर्ती संतों के लिए मार्ग प्रशस्त कर एक अविस्मरणीय धरोहर का निर्माण किया।

1.4.2.4 प्रतीक-विधान – प्रतीक प्रत्यक्ष गोचर द्वारा अगोचर का प्रकाशन है। जहाँ कवि की कल्पना भी अशक्त हो जाती है वहाँ प्रतीकों का आश्रय ग्रहण कर कवि अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है।

सिद्ध मूलतः साधक थे एवं बौद्ध परम्परा के उत्तराधिकारी थे। अतः उन्होंने अपने आध्यात्मिक विचारों, साम्प्रदायिक विचारों आदि की अभिव्यक्ति हेतु प्रतीकों का आश्रय लिया है।

127. चर्यागीतिकोश, पृ. 71
128. उलटवांसी साहित्य– रमेश चन्द्र, पृ. 86
129. दोहाकोश– राहुल जी, पृ. 24

सिद्ध–साहित्य में भावनात्मक, (आत्मा–परमात्मा आदि), तात्त्विक या दार्शनिक (ब्रह्म, माया, जीव, जगत् विषयक), साधनात्मक (सांकेतिक, पारिभाषिक आदि), जीवन–व्यवहार मूलक आदि प्रतीकों का बहुतायत से प्रयोग हुआ है।

सिद्ध–बौद्ध परम्परा के पोषक थे। उन पर महायान के विज्ञानवाद एवं योगाचार का स्पष्ट प्रभाव रहा है। सिद्ध साधक थे, कवि नहीं। इसकी ओर पहले संकेत किया जा चुका है। अतः दर्शन एवं धर्म ही उनके प्रमुख विषय रहे। उसी के अनुरूप उन्होंने प्रतीकों का प्रयोग किया।

धर्मवीर भारती के अनुसार 'इन प्रतीकों की दो प्रकार की योजनाएँ थीं। औपम्यमूलक और विरोधमूलक। औपम्यमूलक प्रतीक से विभिन्न रूपक प्रस्तुत किए तथा विरोध–मूलक से उलटबाँसी शैली का विकास हुआ।[130]

सिद्धों ने नायक के लिए वीर, शवर, हरिण आदि प्रतीक प्रयुक्त किए तथा नायिका के लिए शबरी, चण्डाली,सहज–सुन्दरी, वधू, गृहिणी, नैरामणि–योगिनी, डोम्बी, मातंगी, कमलिनी, पद्मिनी आदि संकेतों का प्रयोग किया।

माया योगिनी को सम्बोधित करते हुए गुण्डुरीपा कहते हैं –

तिअड्डा जापि जोइणि दे अंकवाली,

कमल कुलिश घांट करहु विआली। [131]

संसार के लिए मरू–मरीचिका, रज्जु मेंसर्प, दर्पण में प्रतिबिम्ब, वन्ध्यासुत, खपुरूष, बालुका, तेल, गंधर्व नगरी आदि प्रतीकों का आश्रय लिया।

इनके साथ ही गंगा को इडा, यमुना को पिंगला, सरस्वती को सुषुम्ना, संगम/त्रिवेणी को इड़ा,पिंगला और सुषुम्ना का आज्ञा–चक्र में मिलना, सर्पिणी का कुण्डलिनी,मेरूपर्वत का मेरूदण्ड, योगिनी को महामुद्रा सुरति, सास का श्वास, चन्द्र को पिंगला तथा सूर्य को इड़ा आदि सांकेतिक प्रतीकों के माध्यम से प्रयुक्त किया है।

इनके अतिरिक्त काया, चित्त के लिए तरुवर का प्रयोग किया है। यथा–

काया तरूवर पंचवि डाल। [132]

चित्त के लिए सरहपाद तरुवर का प्रयोग करते हैं – अदअ चित्त तरूअर गउ तिहुवणे वित्थार। [133]

---

130. सिद्ध साहित्य कोश – डॉ. धर्मवीर भारती, पृ. 282
131. बा. चर्यापद – पद –4
132. चर्यापद–1
133. दोहाकोश – पृ. 38

इसी प्रकार मन के लिए करभ, इन्द्रियों के लिए गाय, बोधिचित्त हेतु बैल, उन्मत्त मन हेतु गज,मूषक, मेढ़क, श्रृगाल, सिंह, भुजंग आदि को प्रतीक रूप में चुना गया है।

'चन्दन वृक्ष सर्प का शरणस्थान,[134] कहकर वृक्ष संसार का तथा सर्प साधक का प्रतीक बताया है। ईश्वर को नौका बताते हुए ''तिशरण नावी किअ अठकमारी'[135] कहा है। 'करुणा मेह निरन्तर फरिआ'[136] कह मेध को करुणा का प्रतीक, चौपड़ को 'करुणा पिहाड़ि खेल हुँ नअबल''[137] ज्ञान क्रीड़ा का तुला धुनिआंशु रे आंशु[138] में कपास को चित्त का प्रतीक बताते हुएचित्रित किया है।

इस प्रकार सिद्धों ने प्रतीकों का प्रयोग प्रचुरता से किया है।

1.4.2.5 अलंकार-विधान – 'सहज स्वभाव न भावा भाव' वाली विचारधारा वाले सिद्ध–साधक जीवन में तो सहज–जीवन के अनुयायी थे, साथ ही काव्य क्षेत्र में भी वे सहज को प्रमुखता देते हैं। अतः उनके काव्य में पाण्डित्य–प्रदर्शन एवं सौन्दर्य–वृद्धि हेतु अलंकारों का सप्रयास प्रवेश नहीं हुआ है; वरन् उनकी प्रतीक–पद्धति ही आलंकारिक है। अतः सत्यान्वेषी साधकों के कार्य में अलंकार–प्रयोग की सूक्ष्मताओं की अपेक्षा करना व्यर्थ ही है। सिद्धों के साहित्य में प्राप्त अलंकार प्रतीकों के कलेवर में समाहित हैं। इनके साहित्य में उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, उदाहरण, दृष्टांत, विरोधाभास आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। कतिपय उदाहरण देखिये। यथा–

(अ) रूपक – शांतिपा द्वारा कपास धुनने के रूपक द्वारा ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति का वर्णन अवलोकनीय है।

तुला धुणि धुणि आंसु रे आंसु।
आंसु धुणि धुणि निखर सेसु।।
तउसे हेरुअ ण पाविअइ।
तुला धुणि धुणिसुणो अहारिउ।।
पुण लइणा अपणा चटारिउ।। [139]

कणहपा पवन के बंध को अध और ऊर्ध्व मार्ग में ताला लगाने के रूपक द्वारा इस प्रकार व्यक्त करते हैं –

134. दोहाकोश– सरहपाद, पद 38, पृ. 317
135. चर्यापद – 38
136. वही, 30
137. वही, 12
138. वही, 26
139. चर्यापद – 26

पवण गमण दुआरे दिदताला वि दिज्जइ

जइ तसु धेरांधारेमणदिवहो किज्जइ। [140]

(ब) **विरोधाभास** – सरहपाद बंधने पर चित्त का चंचल होना तथा खुलने अथवा मुक्त होने पर स्थिर होना बताकर विरोधाभास का प्रयोग करते हैं–

बद्धो धावै, दस दिसहिं, मुक्तो निश्चल स्थाय[141]

(स) **उपमा** – *एहिं सो सरस्वती प्रयाग, एहिं गंगासागर*

वाराणसी प्रयाग, एहिंसो चन्द्र दिवाकर।।96।। [142]

उपर्युक्त दोहे में सरह ने देह को सरस्वती, गंगा, प्रयाग, वाराणसी, सूर्य, चन्द्रमा के समान बताया है तथा देह को तीर्थ मानने का उपदेश दिया है।

इस प्रकार सिद्ध साहित्य में तत्युगीन समाज, दर्शन, धर्म के स्वरूप को अभिव्यक्त किया है। उन्होंने सामाजिक, धार्मिक, बाह्याचारों, आडम्बरों का विरोध, रसमय अनुभूतियों को काव्य में वर्णित किया है। साथही संध्याभाषा, छन्द, अलंकार, प्रतीक, उलटबाँसी एवं राग–रागणियों द्वारा अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त कर हिन्दी साहित्याकाश पर सतरंगीसुरचाप (इन्द्रधनुष) निर्मित किया। जिसके रंगों को सिद्धों के परवर्ती संतों ने अपनी अनुभूतियों–अभिव्यक्तियों द्वारा और चटक बनाया।

––––

140. दोहाकोश – बागची, पृ. 44
141. दोहाकोश (राहुलजी), दोहा स 26, पृ. 7
142. उपरिवत पृ. 23

द्वितीय-अध्याय

नाथ-मतः उद्भव, विकास, सैद्धान्तिक स्वरूप एवं साहित्य

2.0 भारत की आध्यात्मिक परम्परा प्राचीन है। भारत–भूमि पर प्रत्येक युग में चिन्तन एवं साधनाओं की विभिन्न धाराएँ निरन्तर प्रवाहित होती रही हैं। चिन्तन एवं साधना की इन निर्मल–धाराओं ने समाज के जीवन और मनुष्य के आदर्शों का पथ–प्रदर्शन किया है।

भारतीय चिन्तन–धारा में नाथ–सम्प्रदाय अथवा नाथ–पंथ का विशिष्ट स्थान है। वस्तुतः नाथ–पंथ सिद्धों की परम्परा का ही विकसित एवं संशोधित रूप है। संत साहित्य की पूर्वपीठिका के रूप में नाथ–साहित्य के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। नाथ–सम्प्रदाय प्राचीन धार्मिक साधनाओं और संत साहित्य के मध्य एक कड़ी के रूप में जाना जाता है।

नाथ–सम्प्रदाय एवं नाथ–साहित्य का विस्तृत विवेचन करने से पूर्व सर्वप्रथम हम 'नाथ' शब्द पर विचार करते हैं।

2.1 **नाथ शब्द की निरूक्ति व निर्दिष्ट मत** – 'नाथ' शब्द 'ना+थ' के संयोग से बना है । ऋग्वेद के दशम मण्डल सूक्त 130 में नाथ शब्द का प्रयोग सृष्टिकर्ता, ज्ञाता तथा सृष्टि के निमित्त रूप में किया गया है।[1] नाथ शब्द का प्रयोग अथर्ववेद और तैत्तिरीय ब्राह्मण में 'रक्षक' या शरणदाता'[2] के लिए किया है। 'बोधिचर्यावतार' में बुद्ध के लिए इस शब्द का व्यवहार हुआ है । जैनों और वैष्णवों में भी इस शब्द का प्रयोग 'सबसे बड़े देवता' अर्थ में पाया जाता है। परवर्ती काल में योग परक पाशुपत शैव–मत का विकास नाथ–सम्प्रदाय के रूप में हुआ और 'नाथ' शब्द शिव के अर्थ में प्रचलित हो गया।[3] राजगुह्य नामक ग्रंथ के अनुसार–

1. सिद्ध नाथ संहिता, विवेक सागर, भाग–1, पृ. 11
2. हिन्दी साहित्य कोश–प्रथम भाग, पृ. 329
3. वही, पृ. 330

"नाकारोऽनादि रूपं धकारः स्थाप्यते सदा।

भुवनत्रयमेवेकः श्री गोरक्ष नमोऽस्तुते।।"

अर्थात् 'ना' का अर्थ है अनादि रूप और 'थ' का अर्थ है (भुवनत्रय का) स्थापित होना, इस प्रकार नाथ–मत का स्पष्टार्थ वह अनादि धर्म है, जो भुवनत्रय की स्थिति का कारण है।[4] शक्ति संगम–तंत्र में उल्लेख किया है –

"श्री मोक्षदान दक्षत्वात् नाथ ब्रह्मनुबोधनात्।

स्थगिता ज्ञान विभवात् श्री नाथ इति गीयते।।"

अर्थात् 'ना' शब्द का अर्थ है नाथ–ब्रह्म जो मोक्षदान में दक्ष है, उनका ज्ञान कराता है तथा 'थ' का अर्थ है (अज्ञान के सामर्थ्य को) स्थगित करने वाला। चूँकि नाथ के आश्रयण से इस नाथ ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और अज्ञान की माया अवरूद्ध होती है इसी लिए 'नाथ' शब्द का व्यवहार किया जाता है।[5]

सिद्धों की वाणियों में नाथ शब्द का प्रयोग देखने को मिलता है। यथा–

जत विचि त्तहि विफफुरइ तत्र विणाह सरूप – दोहाकोश पृ. 31

जो णत्थु विच्चल कि अइ मण सो धम्म क्खरपास – पृ. 44[6]

अर्थात् वही नाथ है जिसका चित्त विस्फुरित हो अथवा जिसका मन निश्चल हो।

सिद्ध कण्हपा ने साधक को वज्रधर नाथ कहा है। इससे सिद्ध होता है कि सिद्धों ने 'नाथ' शब्द को तथागत के रूप में ग्रहण कर केवल स्थिर–चित्त–सिद्धि प्राप्त योगी का पर्यायवाची करना है।[7] निर्गुण संतों के काव्य में भी नाथ शब्द का प्रयोग देखने को मिलता है। रामानन्द ने नाथ का अर्थ 'निरंजन तथा प्राणपिंड की रक्षा करने वाला[8] के लिए किया है। कबीर ने 'नाथ' का प्रयोग 'मायाजेता[9] अर्थ में किया है। संस्कृत टीकाकार मुनिदत्त ने 'नाथ' का अर्थ 'सदगुरू' बताया है।[10] गोरखवाणी में 'नाथ' शब्द का प्रयोग हुआ है। यथा – 'नाथ कहे तुम आपा राखौ। 'नाथ कहे तुम सुनहु रे अवधु' तथा 'ते निश्चल सदा नाथ के संग।" 'नाथ कहन्ता सब जग नाथ्या। यहाँ 'नाथ' शब्द का प्रयोग ब्रह्म अथवा परमतत्त्व के अर्थ में हुआ।

---

4. नाथ–सम्प्रदाय–हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 3
5. वही, पृ. 4
6. दोहा कोश, पृ. 31, 44
7. साहित्येतिहास आदिकाल–सुमनराजे, पृ. 196
8. रामानन्द की हिन्दी रचनाए, पीताम्बर दत बड़थ्वाल, पृ.3
9. कबीर ग्रंथावली–डॉ. श्याम सुन्दर दास, पृ. 199
10. बौद्ध गान ओ दोहा, म. हरप्रसाद शास्त्री, चर्याचर्यविनिश्चय, चर्यापद संख्या 15 पृ., 27 टीका, पृ 29

इस प्रकार परमात्म–तत्व का अनुभव कर उसके तद्‌रूप तक पहुँचने वाला योगी साधक ही नाथ–सिद्ध के नाम से अभिहित किया गया। अतः इस अर्थ में आज नाथ शब्द एक सम्प्रदाय विशेष के अन्तर्गत उन सभी अनुयायी जनों के लिए व्यवहृत होता है जो उस सम्प्रदाय विशेष की मान्यताओं के अनुसार जीवन–यापन करते हैं।[11]

उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि 'नाथ' शब्द परम–तत्त्व, ब्रह्म, मुक्तिदाता आदि के अर्थ में प्रयुक्तहुआ। 'नाथ' को नाथ–पंथ का मान्य परम तत्व स्वीकार किया है।[12] नाथ साधक दीक्षा प्राप्त करने के बाद नामांत में नाथ उपाधि जोड़ते हैं।[13] 'नाथ' एक उपाधि है जो नाथपंथ के साधकों के दीक्षा प्राप्ति के उपरांत नाम के साथ जोड़ी जाती है।

शाश्वत तथा सत्य परमात्मा की अनुभूति करने वाला नाथ है तथा इन्द्रियों पर नियंत्रण कर योग मार्ग द्वारा परमात्मा की अनुभूति करने वाला 'नाथ है तथा इन्द्रियों पर नियंत्रण कर योग मार्ग द्वारा परमात्मा में लीन होने वाला साधक 'नाथ' कहलाता है।[14] इस प्रकार यह 'नाथ' शब्द नाथों के परम तत्त्व तथा इस पंथ के साधकों, इसके अनुयायियों का बोध करता है। नाथ सम्प्रदाय के 'नाथ' परमेश्वर शिव ही परमतत्व है। वे ही आदिनाथ हैं।

2.1.1 **नाथ-सम्प्रदाय** – नाथ–सम्प्रदाय को सामाजिक, धार्मिक एवं सम्प्रदायजगत् तथा साधना सम्बंधी वैशिष्ट्य के आधार पर अनेक नामों से सम्बोधित किया जाता रहा है। इसे सिद्ध–मत (गो. सि. स. पृ. 12), सिद्ध–मार्ग (योग बीज), योग–मार्ग (गो.सि.स. पृ. 21), योग–सम्प्रदाय (गो.सि.स.पृ.58) अवधूत मत (पृ.18), अवधूत सम्प्रदाय (पृ.56) इत्यादि नाम दिये गए हैं।[15]

नाथ सम्प्रदाय के लिए गोरक्ष सिद्धांत संग्रह में– 'तस्मात् सिद्धमतं स्वभाव समयं'।[16] कहकर इसे **'सिद्ध–मत'** नामदिया गया है। गो. मि. सं' के सम्पादक ने इस सम्प्रदाय को योग मार्ग, योग सम्प्रदाय, अवधूत मत, अवधूत सम्प्रदाय इत्यादि नामों से उल्लेखित क़िया है।

योग बीज में कहा गया है – 'यह नाथ मार्ग ही सिद्ध–मार्ग है, जिस पर चलकर जीवात्मा कैवल्यरूपी परमपद में प्रतिष्ठित होकर मोक्षानन्द का परमानुभव करता रहता

11. गोरख नाथ एवं उनकी परम्परा का साहित्य– डॉ. दिवाकर पाण्डेय, पृ. 1
12. नाथ और संत साहित्य (तुलनात्मक अध्ययन)– डॉ. नागेन्द्र नाथ उपाध्याय, पृ.5
13. नाथ और संत साहित्य (तुलनात्मक अध्ययन) डॉ. नगेन्द्र नाथ उपाध्याय, पृ. 5
14. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य– डॉ. वेद पकाश जुनेजा, पृ. 348
15. नाथ सम्प्रदाय–हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.1
16. गो.सि. सं. पृ 12– सं. गोपीनाथ कविराज,

है।[17] नाथ–सम्प्रदाय को सिद्ध–मार्ग या सिद्ध–मत इसलिए कहते हैं कि इनके मत में नाथ ही सिद्ध है।[18]

नाथ–सम्प्रदाय की साधना प्रणाली में हठयोग का विशिष्ट स्थान है। इसके साधकों द्वारा हठयोग की साधना करने के कारण इन साधकों को 'योगी'[19] नाम दिया तथा इस सम्प्रदाय को 'योगी–सम्प्रदाय'[20] भी कहा गया है। इस योगी शब्द का अर्थ अत्यंत विस्तृत होने के कारण 'सेंट' से लेकर 'चमत्कारी संन्यासी' तक इस श्रेणी में आ जाते हैं। अतः नाथ–सम्प्रदाय के वैशिष्ट्य को यह नामकरण स्पष्ट करने में पूर्णतया सफल नहीं होता।[21] नाथ–सम्प्रदाय एवं साधकों को भारत के कई भागों में धर्मनाथी (पश्चिमी भारत)[22] 'गोरखनाथी' और 'कनफटा'[23] नामों से भी सम्बोधित किया जाता है। कनफटा, दर्शनी, योगीमत, योगी सम्प्रदाय, गोरखनाथी आदि नाम दीक्षा, सम्प्रदाय, योगी जाति तथा सम्प्रदाय के प्रवर्तक की ओर संकेत करते हैं। साहित्य में वर्णित और प्रयुक्त नाम ही इस मत के प्राचीन नाम हैं। अतिरिक्त नाम सामाजिक, धार्मिक, साम्प्रदायिक जीवन के अध्येताओं और खोजियों ने ढूँढ निकाले हैं।[24]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि इस सम्प्रदाय का नामकरण दो आधारों पर किया गया है। प्रथम सम्प्रदायगत विशेषताओं को ध्यान में रखकर तथा द्वितीय इस मत की साधना पद्धति को आधार बनाकर। वस्तुतः नाथ–सम्प्रदाय के लिए एवं इसके साधकों के लिए भिन्न–भिन्न नाम प्रयुक्त किए जाते रहे हैं यथा – नाथपंथ, नाथ–सम्प्रदाय, अवधूत–मत, योगमत, योग–सम्प्रदाय आदि नामकरण इस मत के प्रचलित सिद्धान्त, दर्शन और साधना सम्बंधी विशिष्टता के आधार पर किये गएहैं। कनफटा, दर्शनी, गोरखनाथी, धर्मनाथी, योगी–सम्प्रदाय, योगीमत इत्यादि नाम इस पंथ के सम्प्रदायगत वैशिष्ट्य तथा प्रवर्तक के आधार पर दिये गए हैं।

वस्तुतः नाथपंथी साहित्य में वर्णित एवं प्रयुक्त नाम ही इस मत हेतु प्राचीन नाम माने जा सकते हैं। इस मत के अन्य नाम तो सामाजिक, धार्मिक एवं साम्प्रदायिक मान्यताओं के आधार पर रख दिए गये हैं। इनमें योगी, सिद्ध और नाथ शब्द ऐसे हैं, जो अन्य सम्प्रदायों अथवा मतों के लिए प्रयुक्त होते रहे हैं; किन्तु गोरखनाथ द्वारा संगठित

---

17. योग बीज–प्रणेता गोरखनाथ, संपादक/टीकाकार– रामलाल श्रीवास्तव, पृ. 6
18. नाथ – सम्प्रदाय–ह.प्र.द्वि. पृ. 1
19. नाथ और संत साहित्य तुलनात्मक अध्ययन – डॉ. नागेन्द्र नाथ उपाध्याय, पृ. 5
20. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य– वेद प्रकाश जुनेजा, पृ. 17
21 वही
22. नाथ और संत साहित्य– तुलनात्मक अध्ययन – डॉ. नागेन्द्र नाथ उपाध्याय, पृ. 6
23 वही, पृ. 6
24. वही, पृ. 7

और प्रचारित सम्प्रदाय के लिए नाथमत, नाथपंथ अथवा नाथ–सम्प्रदाय नाम ही अधिक प्रचलित हैं।[25]

2.1.2 प्रवर्तक आचार्य – नाथ–पंथ को वामाचारी प्रकृति से पृथक् कर उसके स्वरूप निर्धारण का श्रेय गुरू गोरखनाथ को है। अतः वे ही इस पंथ के प्रवर्तक आचार्य हैं।

2.1.3 नाथ-पंथ/नाथ-सम्प्रदाय का उद्भव एवं विकास – 20/4/1 नाथ सम्प्रदाय के उद्भव के सम्बंध में मतैक्य नहीं है। नाथ–सम्प्रदाय का मूल उत्स बहुत प्राचीन है। सुरेशचन्द्र नाथ मजुमदार की पुस्तक 'राजगुरू योगिवंश' (बंगला) पृ. 76 में बताया है कि महाराज हर्षवर्धन के काल में ह्वेनसांग 630 ई. के 640 ई. तक भारत में रहा। उसके ग्रंथ 'शियुकी' में उसके अन्य विवरणों के साथ नाथ–धर्म की भी चर्चा आती है।[26]

बौद्ध–धर्म के प्रारम्भिक समय में कनफटा योगी साधक विद्यमान थे; लेकिन बौद्ध–धर्म के पतन–काल में ही वे अपनी योग्यता को विकसित कर सके।[27]

बौद्ध–धर्म का प्रारम्भिक समय छठी शताब्दी के लगभग मान्य है। सालसेटी, एलोरा और एलीफेन्टा की गुफाओं में जो 8 वीं शताब्दी की है, शिव की ऐसी अनेक योग मूर्तियाँ हैं जिनके कानों में बड़े–बड़े कुण्डल ठीक उसी ढंग से पहनाये गये हैं जिस ढंग से कनफटा योगी लोग धारण करते हैं। मद्रास के उत्तरी आरकाट जिले में परशुरामेश्वर का जो भन्दिर है उसके भीतर स्थापित लिंग पर शिव की एक मूर्ति है, जिसके कानों में कनफटों जैसे ही कुण्डल हैं। टी. ए. गोपीनाथराव का मत है कि यह लिंग सन् ईस्वी की दूसरी या तीसरी शताब्दी के पहले की नहीं है।[28]

कान चिराकर मुद्राधारण करना नाथ योगियों का विशिष्ट प्राचीन चिह्न है। नाथ–पंथ में दीक्षित होने वाले योगी के सर्वप्रथम कान फाड़े जाते हैं। इस कारण इन्हें कनफटा, कानफड़ा भी कहा जाता है।[29]

उपर्युक्त मत प्राचीन काल में ऐसे ही कनफटे योगियों के अस्तित्व की पुष्टि करते हैं। वर्तमान में भी नाथ योगियों में मुद्राधारण की प्रथा को देखा जा सकता है। नाथ–सम्प्रदाय का विस्तार काल नौवी ई. शताब्दी से सोलहवीं ई. शताब्दी तक है।[30]

---

25. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य – डॉ. वेद प्रकाश, पृ 18
26. गोरखनाथ और उनकी परम्परा का साहित्य– डॉ. दिवाकर पाण्डेय, पृ. 2
27. नाथ सम्प्रदाय का इतिहास, दर्शन और साधना प्रणाली–कल्याणी मल्लिक, पृ32, 33
28. नाथ–सम्प्रदाय–हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ. 9–10
29. सिरे–मन्दिर, जालोर– डॉ. भगवती लाल शर्मा, पृ0 11
30. गोरक्षनाथ–डॉ. नागेन्द्र नाथ उपाध्याय, पृ. 52

निर्विवादित रूप से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाथ--पंथ अत्यंत प्राचीन है। नाथ–पंथ के अंकुर प्राचीन काल में दिखाई देते हैं; परन्तु इन अंकुरों ने नाथ–सम्प्रदाय रूपी विशाल विटप का रूप बहुत आगे चलकर लगभग 9वीं – 10वीं शताब्दी में प्राप्त किया।

2.1.3.1 विकास – नाथ–सम्प्रदाय पर अन्य दर्शन–पद्धतियों का भी व्यापक प्रभाव पड़ा। नाथ–सम्प्रदाय के उद्‌भव को लेकर तीन सिद्धांत प्रचलित हैं –[31]

प्रथम : नाथसम्प्रदाय सिद्धों का ही परवर्ती रूप है।

द्वितीय : यह शैव–सम्प्रदाय की एक शाखा हैं।

तृतीय : यह तंत्रों के यौगिक सम्प्रदाय का विकसित रूप है।

नाथ–सम्प्रदाय को सिद्ध–सम्प्रदाय का ही परवर्ती रूप माना जाता है जिसने अपनी मौलिक विशेषताएँ विकसित की। कुछ विद्वान् नाथपंथ को वज्रयान और सहजयान का ही विकसित और परिष्कृत रूप मानते हैं।[32] राहुल सांकृत्यायन ने नाथ–सम्प्रदाय को वज्रयान का विकास माना है। वे कहते हैं "विचारों में यद्यपि अब नाथपंथ अनीश्वरवाद को छोड़कर ईश्वर–वादी हो गया है तथापि अभी इसकी वाणियों में छान–बीन करने पर निर्वाण, शून्य और वज्रयान का बीज मिलेगा।[33]

महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री जी का मत है कि पहले गोरक्षनाथ वज्रयानी बौद्ध थे तब उनका नाम रमणवज्र था। पीछे बौद्ध सम्प्रदाय का त्याग कर उन्होंने गोरक्ष नाम ग्रहण किया।[34]

डॉ. रामरतन भटनागर का भी मानना है कि सिद्ध–पंथ के वामाचारों की प्रतिक्रिया के रूप में उसी के अन्तर्गत एक ऐसा वर्ग उठ खड़ा हुआ जान पड़ता है जिसने उसमें सुधार की चेष्टा की। कदाचित् यह सुधार–वर्ग सफल नहीं हुआ अतः उन्होंने सिद्धों से संबंध–विच्छेद कर लिया।[35]

डॉ. बड़थ्वाल भी नाथपंथ का विकास बौद्ध–तंत्र में मानते हैं तथा आगे चलकर–नाथ सम्प्रदाय का वज्रयान से पृथक् होना स्वीकार करते हैं। बौद्ध सिद्ध साम्प्रदायिक परम्परा से बौद्ध, किन्तु विचारधारा में नाथपंथी हैं।

नाथमत अथवा नाथपंथ का अध्ययन करने पर इसका संबंध सिद्ध–परम्परा से जुड़ता प्रतीत होता है। सिद्धों की नामावली में नाथों का नाम होना भी इसी मत की पुष्टि

31. साहित्येतिहास आदिकाल–सुमनराजे, पृ. 196
32. मंत्रयान, तंत्रयान, वज्रयान और सिद्ध – राहुल सांकृत्यायन, पृ. 221–223 (गंगापुरातत्वांक– 1927)
33. साहित्येतिहास, आदिकाल–सुमनराजे, पृ. 197
34. भारतीय सस्कृति और साधना– श्री गोपीनाथ कविराज, पृ 255
35. प्राचीन हिन्दी काव्य– डॉ. रामरतन भटनागर, पृ 192

करता है। प्राचीन ग्रंथों में नाथपंथ के लिए सिद्धमत का प्रयोग हुआ है। गोरक्ष सिद्धांत संग्रह में – 'तस्मात् सिद्धमतं स्वभावसमयं' ......। इसी बात की ओर संकेत करता है।

विद्वानों का एक दूसरा वर्ग नाथपंथ को शैवमत की शाखा अथवा शैव–सम्प्रदाय से उत्पन्न मानता है। शैवों को मुख्य रूप से दो वर्गों – पाशुपति शैव और आगम शैव में विभक्त कर सकते हैं। पाशुपत लकुलीश, कापालिक, नाथ, गोरखनाथी और रसेश्वर पाशुपत शैव–मत के अन्तर्गत आते हैं, जबकि शैव सिद्धांतों–तमिल शैव, कश्मीर शैव तथा वीर शैवों की गणना आगम शैव के अन्तर्गत की जाती है। इससे नाथों की परम्परा का विकास पाशुपत शैवमत से हुआ स्पष्ट होता है।[36]

पाशुपत शैवों के साथ नाथपंथी साधना की एकता मिलती है। नाथ लोग शिव अथवा आदिनाथ के उपासक हैं और पाशुपत लोग पशुपति अथवा महेश्वर के।[37] नाथपंथी अपनी परम्परा शिव से मानते हैं उनके अनुसार नाथ धर्म के संस्थापक स्वयं आदिनाथ शिव हैं।

पाशुपतों में सर्वाधिक प्रभावशाली गोरखनाथी ही हैं तथा इनका मंत्र 'शिव गोरख' बताया जाता है। गोरखनाथियों के अपने मंदिर शैव मन्दिर हैं।[38]

शैव साधु प्रायः संन्यासी ही कहलाते थे तथा वैष्णवसाधु वैरागी कहलाते थे। योगी या जोगी शैव संन्यासी थे। संन्यास प्रारम्भिक काल में शैव मत से संबद्ध था। नाथपंथी साधुओं के लिए संन्यासी शब्द व्यवहृत होता था।[39] इस प्रकार नाथपंथी साधु शैव संन्यासी हैं। प्राचीन शैव संन्यासियों में पाशुपत और कापालिकों को ध्यान में रखा जा सकता है, नाथ लोग प्राचीन कापालिक पाशुपत संन्यासियों का ही विकसित रूप है।[40]

कापालिक संन्यासियों का घनिष्ठ संबंध कनफटा योगियों से रहा है और नाथयोगियों के दो वर्गों में एक कनफटा योगी वर्ग भी सम्मिलित है।

गोरक्षनाथ (जिनका दूसरा नाम महेश्वरानन्द था) की कश्मीरी अपभ्रंश में एक 'महार्थमंजरी' नाम की रचना मिलती है। ये महेश्वरानन्द, महाप्रकाश (जिन्हें मत्स्येन्द्रनाथ भी कहते हैं) के शिष्य थे। स्वयं महेश्वरानन्द ने अपने गुरू महाप्रकाश का स्मरण अपनी रचना के प्रथम छंद में किया है।[41] इस उल्लेख से एक बात सिद्ध होती है कि मत्स्येन्द्र नाथ तथा उनके शिष्य गोरक्षनाथ का सम्बंध किसी अंश तक कश्मीरी शैवों से भी रहा।

---

36. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य– डॉ. वेद प्रकाश जुनेजा, पृ.21
37. गोरखनाथ और उनकी परम्परा का साहित्य– डॉ. दिवाकर पाण्डेय, पृ.11
38. नाथ और संत साहित्य (तुलनात्मक अध्ययन)–डॉ. नागेन्द्र नाथ उपाध्याय, पृ. 68
39. वही
40. नाथ और संत साहित्य, (तुलनात्मक अध्ययन) डॉ. नगेन्द्रनाथ, पृ. 69
41. नाथ और संत साहित्य (तुलनात्मक अध्ययन) डॉ. नागेन्द्र उपाध्याय, पृ. 68

विभिन्न शैव–मतों पाशुपत, कालमुख, कापालिक, लकुलीश, आगम शैव (कश्मीरी शैव), अघोरी आदि का प्रभाव नाथपंथ पर अवश्य लक्षित होता है।

नाथपंथ का शैव–सम्प्रदायों से सम्बंध रहा है। साथ ही नाथ–पंथ में शैवमत की साधना पद्धतियों को अन्तः एवं बाह्य रूप में भी ग्रहण किया है। ब्राह्य रूप में मुद्राधारण करना, श्रृंगी (इसका मिश्रित नाम सींगीनाद जनेऊ भी है। योगी इस नादी जनेऊ को शिवलिंग मानते हैं)[42], कंथा (एक दंत कथा के अनुसार पार्वती ने सर्वप्रथम प्रसन्न होकर, अपने रक्त से रंग कर एकचोला गोरखनाथ को दिया था तभी से यह लाल–गेरूआ रंगयोगी लोगों का विशिष्ट रंग बन गया)[43], रूद्राक्ष–माला, सेली, मेखला, मृगचर्म या बाघाम्बर, शंख इत्यादि नाथ साधक धारण करते हैं। इसी प्रकार शैव–मत का अन्तःरूप भी इन्होंने ग्रहण किया है वह है योग मार्ग (सप्तश्रृंग परशिव ने महायोग श्रवण जब पार्वती को कराया था, तब योगाचार्य मत्स्येन्द्रनाथ ने उसे सुन लिया था यही महायोग ज्ञान सिद्धामृत मार्ग अथवा नाथ–योग की साधना का मूलाधार हो गया)[44]

नाथ–सम्प्रदाय के अन्तः ब्राह्य स्वरूप भी इस पंथ का सम्बंध शैव मत से स्पष्ट करते हैं।

नाथपंथ पर बौद्ध–सिद्ध, शैव मतों के प्रभाव के साथ ही तांत्रिक प्रभाव की बात भी की जाती है। मत्स्येन्द्र नाथ का कौल मार्ग इसका प्रतीक है।[45]

गोरक्षनाथ ने जिस नाथपंथ का प्रवर्तन किया उसका अस्तित्व तो नाथ योगी सृष्टि से पूर्व मानते हैं। वे अपने धर्म के संस्थापक आदिनाथ शिव को मानते हैं। परन्तु नाथ सम्प्रदाय का जो सम्प्रति स्वरूप है उससे एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि नाथपंथ की उत्पत्ति को किसी एक विशेष धर्मपद्धति अथवा साधना–पद्धति तक सीमित कर देना न्याय संगत नहीं है। बौद्ध, सिद्ध, शैव, शाक्त, जैन, वैष्णव, तंत्रागमों आदि विभिन्न पंथ एवं साधना–पद्धतियों के न्यूनाधिक तत्त्व नाथपंथ में किसी न किसी रूप में अवशिष्ट हुए। दूसरे शब्दों में नाथपंथ तत्कालीन समय में प्रचलित लगभग सभी धार्मिक पद्धतियों एवं साधनाओं का नूतन, परिष्कृत एवं समन्वित रूप है।

नाथ–सम्प्रदाय ने तत्कालीन जनता को समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, कुसंस्कारों, विकृत धार्मिक, सामाजिक मान्यताओं, कर्मकाण्डों की श्रृंखला से मुक्त कर जीवन में सदाचार के महत्त्व की प्रतिष्ठा की। यह पंथ समन्वयवादी, निर्गुण ब्रह्मवादी, हठयोग की सहज साधना की क्रांतिकारी विचारधारा लेकर अवतरित हुआ।

---

42. सिरेमन्दिर– जालोर– डॉ. भगवती लाल शर्मा पृ, 16
43. नाथ सम्प्रदाय– हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 18
44. योग बीज–सं. रामलाल श्रीवास्तव,
45. साहित्येतिहास–आदिकाल, सुमनराजे, पृ. 199

2.1.3.2 नाथ-सम्प्रदाय की शाखाएँ – गोरक्षनाथ पूर्व भी अनेक शैव, शाक्त, वैष्णव, जैन, बौद्ध इत्यादि सम्प्रदाय विद्यमान थे। ये सम्प्रदाय वेद–बाह्य होने के कारण न हिन्दू और न ही मुस्लिम माने जाते थे। वेद–बाह्य होकर भी ये लोग वेद सम्मत योगसाधना अथवा पौराणिक देवी–देवताओं की उपासना किया करते थे तथा स्वयं को शैव–शाक्त अथवा योगी कहा करते थे। इनमें से अधिकांश गोरखनाथ के योगमार्ग को स्वीकार कर नाथ–सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गए।[46]

गुरू गोरखनाथ योगी–सम्प्रदाय के सर्वप्रथम नेता थे और वास्तव में इसे संगठित करने एवं सुव्यवस्थित रूप देने में सबसे अधिक हाथ इन्हीं का था। इसके लिए उन्होंने आसाम से लेकर पेशावर से भी आगे तक पूर्व–पश्चिम तथा कश्मीर व नेपाल से लेकर महाराष्ट्र तक उत्तर–दक्षिण की लम्बी यात्राएँ की। कई स्थानों पर इनके केन्द्र स्थापित किए और वहाँ अपने योग्य शिष्यों को प्रचार के लिए नियुक्त किया। तदनुसार प्रसिद्ध है कि इनके प्रयत्नों व प्रभावों के कारण इसकी अनेक भिन्न–भिन्न शाखाएँ चल निकली जिनमें से कम से कम 12 आज भी अधिक प्रसिद्ध हैं।[47]

इस प्रकार गोरक्षनाथ के पूर्ववर्ती अनेक सम्प्रदाय नाथ संप्रदाय में सम्मिलित हुए तथा गुरू गोरक्ष के अथक प्रयत्नों एवं प्रयासों से नाथ सम्प्रदाय का प्रसार एवं प्रचार अखण्ड भारतवर्ष में तथा भारतवर्ष के बाहर (पाकिस्तान, अफगानिस्तान आदि) भी हुआ। उन्हीं के प्रभाव एवं अथक प्रयत्नों से नाथ–सम्प्रदाय की कालान्तर में अनेक शाखाएँ एवं उपशाखाएँ निर्मित हुई।

गोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित कहा जाने वाला बारहपंथी मार्ग नाथ– सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अर्थात् गोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथ मत बारह शाखाओं में विभक्त है। ऐसा भी कहा जाता है कि शिव के 18 सम्प्रदाय ओर गोरक्षनाथ के 12 सम्प्रदाय परस्पर कलह किया करते थे। गोरक्षनाथ ने परस्पर लड़ने वाले मतों को विनिष्ट करके बारह पंथों में विभाजित कर दिया।।[48]

बारहपंथ अथवा बारह शाखाएँ होने के कारण ही नाथ–सम्प्रदाय को बारहपंथी नाम से भी जाना जाता है। जिनमें छ: आदिनाथ शिव द्वारा प्रवर्तित एवं छ: गुरूगोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित शाखाएँ हैं। डॉ. ब्रिग्स ने अपनी पुस्तक – गोरखनाथ एण्ड कनफटा योगीज' में भी उक्त बात की पुष्टि की है। पुनर्गठित शाखाएँ निम्नानुसार हैं –[49]

46. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य–वेद प्रकाश जुनेजा, पृ. 22
47. उत्तरी भारत की संत परम्परा–परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 58
48. हिन्दी साहित्य कोश–भाग–1, पारिभाषिक शब्दावली, पृ. 330
49. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य–डॉ. वेद प्रकाश जुनेजा, पृ. 23–24

(अ) शिव द्वारा प्रवर्तित शाखाएँ

1. भुज (कच्छ) के कंठरनाथ
2. पेशावर और रोहतक के पागल नाथ
3. अफगानिस्तान के रावल
4. पंख या पंक
5. मारवाड़ के बन
6. गोपाल अथवा राम के

(ब) गोरक्ष नाथ द्वारा प्रवर्तित शाखाएँ

1. हेठनाथ
2. आईपंथ के चौलीनाथ
3. चांदनाथकपिलानी
4. रतढ़ोडा मारवाड़ का वैराग्यपंथ और रतननाथ
5. जयपुर के पाव नाथ
6. धजनाथ महावीर

उपर्युक्त शाखाओं को आधार बनाकर नाथ–सम्प्रदाय को बारह पंथों में विभक्त किया जा सकता है – सत्यनाथी, धर्मनाथी, रामपंथ, नटेश्वरी, कन्हण, कपिलानी, वैरागी, माननाथी, आईपंथ, पागलनाथ, धजपंथ और गंगानाथी।[50]

एक अन्य परम्परा के अनुसार इन बारह पंथों की सूची इस प्रकार है – सतनाथ, रामनाथ, धरमनाथ, लक्ष्मणनाथ, दरियानाथ, गंगानाथ, वैराग, रावल, जलंधरिया, आईपंथ, कपिलानी और धजनाथ पंथ।[51]

जिस प्रकार शंकराचार्य के संन्यासियों को 'दसनामी' कहा जाता है उसी प्रकार नाथ पंथियों को बारहपंथी योगी भी कहा जाता है।

नाथ–सम्प्रदाय की इन बारह शाखाओं के विस्तार को प्रस्तुत चार्ट द्वारा बताया जा सकता है –[52]

---

50. हिन्दी साहित्य, कोश–भाग–1 पारिभाषिक शब्दावली, पृ. 330
51. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य– डॉ. वेद प्रकाश जुनेजा, पृ. 24
52. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य– – वेद प्रकाश जुनेजा, पृ. 32

नाथ-सम्प्रदाय की शाखाएँ

संख्या	नाम	प्रवर्तक	मूल स्थान	प्रदेश	विशेष
1.	सत्यनाथी	सत्यनाथ	पाताल (भुवनेश्वर)	उड़ीसा	सत्यनाथ स्वयं ब्रह्मा का नाम है अतः ये ब्रह्म के योगी कहलाते हैं।
2.	धर्मनाथी	युधिष्ठिर	दुल्लुदेलक	नेपाल	–
3.	रामपंथ	श्रीरामचन्द्र	चौक तप्पे पंचौरा गोरखपुर	उत्तर प्रदेश	–
4.	नाटेश्वरी	लक्ष्मण	गोरखटिला (झेलम)	पाकिस्तान	इनकी दो उपशाखाएँ नाटेश्वरी व दरियापंथी है।
5.	कन्हड़	गणेश	मानफरा	कच्छ	–
6.	कपिलानी	कपिलमुनि	गंगासागर	बंगाल	दम–दम (कलकत्ता) भी इनका स्थान है।
7.	वेरागपंथ	भर्तृहरि	रतढोंडा पुष्कर (अजमेर)	राजस्थान	–
8.	माननाथी	गोपीचंद	–	–	जोधपुर का महामंदिर इनका स्थान है।
9.	आईपंथ	भगवती विमला	जोगीगुफा (गोरखकुंई) दिनाजपुर	बंगाल	–
10.	पागलपंथ	चौरगीनाथ (पुरनभगत)	अबोहर	पंजाब	–
11.	धजपंथ	हनुमान जी	–	–	–
12.	गंगानाथी	भीष्म (पितामह)	जखबार (गुरूदासपुर)	पंजाब	–

इस प्रकार गोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथ–सम्प्रदाय बारह उपपंथों अथवा शाखाओं में विभक्त है। गुरू गोरक्ष नाथ ने इन बारह पंथों को संगठित किया था। ये सभी शाखाएँ साधना–प्रणाली एवं दार्शनिक मत दोनों में साम्य रखती हैं और सभी गोरखनाथ

जी के प्रति श्रद्धालु हैं। नाथ–सम्प्रदाय की मूल शाखाएँ तो बारह थी, परन्तु मूल शाखाएँ आगे चलकर कुछ प्रधान गुरूओं के द्वारा पुनः विभाजित कर दी गई हैं। ये विभिन्न पंथी भारतवर्ष के विभिन्न भागों में अपना प्रमुख केन्द्र रखते हैं।

2.1.3.3 नाथ-परम्परा (नव-नाथ) – भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही यह परम्परा रही है कि यहाँ प्रचलित विविध सम्प्रदायों के मान्य आचार्यों की एक विशिष्ट संख्या मानी जाती है। जैसे – त्रिदेव, सप्तऋषि, चौरासी सिद्ध इत्यादि। नाथों की संख्या नौ मानना भी इसी परम्परा की ओर संकेत करता है।

अनुश्रुति है कि सबसे आदि में नवनाथ हुए, जिन्होंने नाथ सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। कबीर ने भी नवनाथ होने की पुष्टि की है –

'सिद्ध चउरासीइ माइआ महिखेला।

नावे नाथ सूरज अरू चंदा।।'

वस्तुतः नाथपंथ के मूल प्रवर्तक नवनाथ माने जाते हैं, किन्तु इन नवनाथों के नाम के सम्बंध में मतैक्य नहीं है। 'महार्णव तंत्र' में नवनाथों के नाम इस प्रकार दिए गए हैं –[53]

1. गोरखनाथ
2. जालंधर नाथ
3. नागार्जुन
4. सहस्रार्जुन
5. दत्तात्रेय
6. देवदत्त
7. जड़भरत
8. आदिनाथ
9. मत्स्येंद्रनाथ

संत ज्ञानेश्वर कृत 'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' में नवनाथों को नव नारायणों का अवतार माना है। इसके अनुसार नवनाथ हैं। उनके नाम महार्णव तंत्र के नामों से भिन्न है। इनके अनुसार नवनाथों के नाम क्रमशः–[54]

1. कविनारायण, मत्स्येंद्रनाथ
2. करभाजननारायण, गाहनिनाथ

---

53. नाथ सम्प्रदाय– डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी : पृ0 27
54. योगिसप्रदायाविष्कृति: मूल–संत ज्ञालेश्वर : हिन्दी अनुवाद– चन्द्र नाथ, पृ 11–14

3. अन्तरिक्षनारायण, ज्वालेन्द्रनाथ (जालंधरनाथ)

4. प्रबुद्धनारायण, करणिपानाथ (कानिपा)

5. आविर्होत्रनारायण, नागनाथ

6. पिप्पलायननारायण, चर्पटनाथ (चर्पटी)

7. चमसनारायण, रेवानाथ

8. हरिनारायण, भर्तृनाथ (भरथरी)

9. द्रमिलनारायण, गोपीचन्द्र नाथ

'सुधाकर चन्द्रिका' में नवनाथों के नाम भिन्न है। इसके अनुसार नवनाथ हैं –[55]

1. एकनाथ 2. आदिनाथ 3. मत्स्येंद्रनाथ 4. उदयनाथ 5. दण्डनाथ 6. सत्यनाथ 7. संतोषनाथ 8. कूर्मनाथ 9. जालंधर नाथ।

नेपाल की परम्परा में नवनाथों के नाम बिल्कुल नये प्रतीत होते हैं। नेपाल केटलाग द्वितीय भाग पृ. 149 में इनका उल्लेख इस प्रकार है –[56]

1. प्रकाश 2. विमर्श 3. आनन्द 4. ज्ञान 5. सत्य 6. पूर्ण 7. स्वभा 8. प्रतिभा 9. सुभग।

सुधाकर द्विवेदी ने 'पद्‌मावत की टीका' में 'नाथों के नाम बताए है – एकनाथ, आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, दण्डनाथ, सत्यनाथ, संतोषनाथ, कूर्मनाथ, जालंधर नाथ।[57]

महाराष्ट्र में नाथ–पंथ का पर्याप्त प्रचार–प्रसार रहा है। ज्ञानेश्वर द्वारा रचित 'भाषार्थ दीपिका' में पॉंच प्रमुख नाथ माने हैं। आदिनाथ, मत्स्येंद्रनाथ, गोरक्षनाथ, चौरंगीनाथ, गहरीनाथ।[58]

'महार्णवतंत्र' में वर्णित नामों के अतिरिक्त अन्य सूचियों में गोरखनाथ का नाम उल्लिखित नहीं हुआ। इस बात को स्पष्ट करते हुए डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि गोरखपंथी लोगों का विश्वास है कि इन नव नाथों की उत्पत्ति श्री गोरखनाथ (जिन्हें श्रीनाथ भी कहते हैं) से हुई है। ये गोरख के ही नव–विध अवतार हैं।[59]

नित्यकर्म विषयक प्रकाशित पुस्तकों में यह नवनाथ स्वरूप उपलब्ध होता है।

आदिनाथ सदा शिव हैं, जिनका आकाश रूप,

उदयनाथ पार्वती पृथ्वी रूप जानिये।

---

55. नाथ सम्प्रदाय–हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 241
56. सिरे मंदिर– जालौर– डॉ. भगवती लाल शर्मा, पृ. 24
57. हिन्दी साहित्य कोश–प्रथम भाग–पृ. 330
58. महाराष्ट्र के नाथपंथी कवियो का हिन्दी काव्य–डॉ. अशोक प्रभाकर, पृ. 26–27
59. सिरे मन्दिर जालोर– डॉ. भगवती लाल शर्मा, पृ. 24

सत्यनाथ ब्रह्माजी, जिनका जल स्वरूप,

विष्णु संतोषनाथ तेज रूप मानिये।।

अचल अचम्भेनाथ, जिनका है शेष रूप,

गजबेली कन्थड़नाथ हस्ति रूप जानिये।

ज्ञान पारंगी जो सिद्ध है, वो चौरंगीनाथ,

अढार भार वनस्पति चन्द्र रूप जानिये।।

दादा श्री मत्स्येन्द्रनाथ, जिनका है माया रूप,

गुरू गोरक्षनाथ ज्योति रूप जानिये।

बाल ये त्रिलोक, नवनाथ को नमन करे,

नाथ जी ये बालक को अपना ही मानिये।।[60]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अनेक ग्रंथों को आधार मानकर एक सौ सैंतीस नाथ योगियों की सूची निर्मित की है।[61]

नवनाथ परम्परा के अनुसार नाथों की संख्या नौ मान्य है। अभी भी लोग नवनाथ–चौरासी सिद्ध कहते हैं। मूलनाथों की संख्या नौ मान्य है। जिन्होंने नाथ–सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया था। विभिन्न सूचियों के विश्लेषणात्मक अध्ययन के उपरान्त आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, जालंधरनाथ, गोरखनाथ, चर्पटीनाथ, कानिफनाथ, चौरंगीनाथ, भर्तृहरिनाथ और गोपीचन्द नाथ को मूल नवनाथ माना गया है।

2.2 नाथ-मत का प्रवर्तक आचार्य : व्यक्तित्व, कृतित्व एवं विचार

2.2.0 नाथ–परम्परा आदिनाथ से प्रारम्भ होती है और नाथ–सम्प्रदाय में आदिनाथ शिव का नामान्तर है। इन्हें नाथपंथ का आदिगुरू माना जाता है। सिद्ध–सिद्धांत–पद्धति, हठयोग प्रदीपिका, योगि–साम्प्रदाय विकृति आदि ग्रंथों में भी आदिनाथ को नाथमत का प्रवर्तक माना है। आदिनाथ नाथ–सम्प्रदाय परम्परा में प्रथम नाथ तथा सभी मत उपमतों में पूज्य हैं। अतः आदिनाथ के रूप में ही शिव ही नाथ सम्प्रदाय की परम्परा में महायोग ज्ञान के आदि उपदेष्टा हैं। इसी संदर्भ में गोरख ने मत व्यक्त किया है –

योग शास्त्रं पठेन्नित्यं किमन्यै शास्त्रविस्तरैः।

यत्स्वयं चादिनाथस्य निर्गतं वदनाम्बुजात[62]

---

60. योगी सम्प्रदाय नित्यकर्मसचय–भभूल नाथ, पृ 149
61. नाथ सम्प्रदाय हजारी प्रसाद, पृ. 33–36
62. गोरक्ष पद्धति–गोरखनाथ 2/100

अर्थात् योगशास्त्र आदिनाथ (शिव) के मुख कमल से निःसृत (वचनामृत) हैं। योग शास्त्र का ही नित्य पाठ करना चाहिए, अन्य शास्त्रों के विवेचन से क्या प्रयोजन। यह योग शास्त्र आदिनाथ के मुख कमल से निर्गत है।

यद्यपि नाथपंथ के आदि संस्थापक योगेश्वर शिव को माना है; किन्तु व्यक्ति रूप में इस परम्परा के प्रथम आचार्य मत्स्येन्द्र नाथ मान्य हैं। नाथपंथ के इतिहास में मत्स्येन्द्र नाथ एवं गोरखनाथ के नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। मत्स्येन्द्र नाथ ने नाथपंथ का प्रवर्तन किया तो गोरखनाथ ने इसका संवर्धन। अतः यहाँ दोनों के व्यक्तित्व, कृतित्व, एवं विचारों को आलोकित करना अपेक्षित होगा।

2.2.1 मत्स्येन्द्र नाथ व्यक्तित्व, कृतित्व एवं विचार – नाथ परम्परा के प्रथम गुरू मत्स्येन्द्र नाथ हैं। अनुश्रुति है कि शिव ने जब भगवतीपार्वती को योगोपदेश – नाथयोग ज्ञान प्रदान किया तब दैवयोग से उसका श्रवणयोगीन्द्र मत्स्येन्द्र नाथ ने किया और उनके द्वारा गोरख ने उसे ग्रहण किया। इस प्रकार शिव द्वारा उपदिष्ट योग–ज्ञान की परम्परा अद्यपर्यन्त नाथ सम्प्रदाय में गृहीत होती आ रही है।[63]

मत्स्येन्द्र नाथ के व्यक्तित्व को दिव्य स्वरूप में नारद पुराण के उत्तर भाग के 69 वे अध्याय, कदली मंजुनाथमाहात्म्य, योग सम्प्रदाय विष्कृति, योगवाणी तथा नाथ–सिद्ध चरितामृत में अभिव्यक्त किया गया है।

व्यक्ति रूप में मत्स्येन्द्र नाथ के जन्म, परिवार, काल इत्यादि के विषय में मतैक्य का अभाव रहा है।

2.2.1.1 जाति-परिवार – डॉ. बागची मत्स्येन्द्र नाथ को ब्राह्मण मानते हैं। जिन्होंने कुलागम हेतु ब्राह्मणत्व का त्याग किया और इस पंथ के अनुयायी बने।[64] श्यामसुन्दर दास उन्हें आसाम निवासी मछुआ जाति में उत्पन्न मानते हैं।[65] कदली मंजुनाथमाहात्म्य संस्कृत ग्रंथ में उन्हें दक्षिण के तुलु भाषी राज्य का राजा बताया है।

2.2.1.2 काल और जन्म स्थान – राहुल जी ने मीनपा को मत्स्येन्द्र नाथ का पिता माना है। जो देवपाल (नवीं शताब्दी) के राज्यकाल में हुए थे।[66] अतः इसी के आस–पास मत्येन्द्र का काल माना जा सकता है।

इनका जन्म स्थान चन्द्रगिरि (बंगाल–आसाम का संधिवर्ती) बताया है।[67] कौल ज्ञान निर्णय में इसी की पुष्टि हुई है। नाथ लीलामृत में इन्हें मल्ला प्रदेश का माना है।[68]

63. नाथ सिद्ध चरितामृत– सं राम लाल श्रीवास्तव, पृ. 7
64. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य– डॉ. वेद प्रकाश जुनेजा, पृ–72
65. हिन्दी सहित्य–श्याम सुन्दरदास पृ. 134–135
66. नाथ सम्प्रदाय–हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ,. 52
67. नाथ सिद्ध चरितामृत–पृ. 21
68. महाराष्ट्र के नाथपंथी कवियो का हिन्दी काव्य– डॉ. अशोक प्रभाकर, पृ 79

2.2.1.3 कृतित्व – इनकी रचनाएँ मूलतः संस्कृत में रचित हैं। जो नेपाल दरबार पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। इनकी संस्कृत रचनाओं में कौल ज्ञाननिर्णय (सं. बागची) अकुलवीर तंत्र, कुलानंद तथा ज्ञानकारिका है। संस्कृत के अतिरिक्त इनकी कुछ हिन्दी रचनाएँ भी हैं। डॉ. मोहन सिंह ने गोरखनाथ एण्ड मिडीवल हिन्दू मिस्टिसिज्म के परिशिष्ट में हिन्दी पदों का संकलन किया हैं। डॉ. मल्लिका ने भी अन्य पुस्तक से दो पदों का संकलन किया है।[69]

2.2.1.4 विचार – मत्स्येन्द्र नाथ योगिनी कौल मार्ग के प्रवर्तक थे। जिसका दार्शनिक दृष्टिकोण शैव–शाक्त मतों से प्रभावित था। जिसका विस्तार से विवेचन पूर्व में किया जा चुका है।

2.2.1.5 नाथ-सम्प्रदाय से सम्बंध – मत्स्येन्द्र नाथ को नाथ–पंथ का प्रवर्तक माना जाता है। लोक कथा से ज्ञात होता है कि मत्स्येन्द्र नाथ किसी ऐसी साधना में जा फँसे जिसमें नारी–साहचर्य की प्रधानता थी। तब उनके शिष्य गोरखनाथ ने उस मायाजाल से उनका उद्धार किया।

इस प्रकार गुरू गोरखनाथ ने नाथ–पंथ को वाममार्गी साधना से मुक्त कर अपना मार्ग अलग कर लिया।

2.2.2 गोरखनाथ, व्यक्तित्व, कृतित्व एवं विचार – नाथ–पंथ को ठीक–ठीक स्वरूप प्रदान करने का श्रेय मत्स्येन्द्र नाथ के शिष्य गोरखनाथ को दिया जाता है। वर्तमान में गोरखनाथ का मत ही नाथपंथ के नाम से जाना जाता है। नाथ–सम्प्रदाय में गुरू गोरखनाथ को शिव का अवतार माना गया है। तथा उन्हें अजर, अमर, योगेश्वर स्वरूप माना है। इनके दिव्य स्वरूप के अतिरिक्त इनको देशकाल की सीमा में आबद्ध कर लौकिक स्वरूप में भी देखा जा सकता है।

2.2.2.1 जाति-परिवार – डॉ. रांगेय राघव इन्हें ब्राह्मण[70] मानते हैं। द्विवेदी जी के अनुसार उनकी साधना का स्वर उनके ब्राह्मण होने की पुष्टि करता है।[71] 'नव–नाथ भक्ति सार' के अनुसार सर्वोपदयाल नामक गौड़ ब्राह्मण जिनकी पत्नी का नाम सरस्वती था के पुत्र गोरक्षनाथ थे।[72]

आसामी परम्परा में उन्हें जुलाहा माना गया है। एक अन्य स्थान पर 'वदन्त गोरखनाथ जाति मेरी तेली' के अनुसार वे तेली जाति का कहते हैं। डॉ. मोहन सिंह इन्हें नीच जाति का बताते हैं।[73]

69. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य– डॉ. वेद प्रकाश जुनेजा, पृ 148
70. गोरख नाथ और उनका युग– राघव, पृ. 43–45
71. नाथ सम्प्रदाय–हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 107
72. नाथ सम्प्रदाय उदय और विस्तार–डॉ. प्रहलाद नारहर जोशी, पृ 298
73. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य, जुनेजा, पृ 79

2.2.2.2 काल और जन्म स्थान – डॉ. धर्मवीर भारती लगभग 925 ई. से 1000 ई. में गोरखनाथ, काण्हपा तथा समकालीन सिद्धों का समय मानते हैं।[74]

डॉ. द्विवेदी दसवीं शताब्दी[75] डॉ. बडथ्वाल 1050 सं.[76], त्रिगुणायत ग्यारवी शताब्दी[77] डॉ. कामत 1050 ई. से 1150ई. मध्य[78] डॉ. कल्याणी मलिक 10वीं शताब्दी गोरखनाथ का समय अनुमोदित करती हैं।[79]

जन्म–काल के समान ही गोरखनाथ के जन्म–स्थान पर भी मतैक्य नहीं है। 'योगिसम्प्रदायविष्कृति' ग्रंथ में गोरखनाथ को गोदावरी तीर के किसी चन्द्रगिरि में उत्पन्न बताया है।[80] गोरखपुर के महंत ने इनका झेलम (पाकिस्तान) से गोरखपुर में आना बताया है।[81]

डॉ. मोहन सिंह गोरखनाथ को रावलपिण्डी[82] तथा रांगेय राघव पेशावर के निकट गोरख का जन्म मानते हैं।[83]

2.2.2.3 कृतित्व – गोरखनाथ के नाम से संस्कृत एवं हिन्दी में अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं। नाथ–सम्प्रदाय का साहित्य व गोरख द्वारा रचित साहित्य आपस में इस प्रकार मिले हुए हैं कि इससे अनेक भ्रातियाँ उत्पन्न होती हैं। मिश्र बंधुओं ने सर्वप्रथम गोरखनाथ के नौ ग्रंथों का, आचार्य शुक्ल ने बारह तथा डॉ. द्विवेदी ने 28 संस्कृत तथा चालीस हिन्दी ग्रंथों का वर्णन किया है।[84] डॉ. बडथ्वाल ने गोरखबानी संग्रह में गोरखनाथ की चालीस छोटी–मोटी रचनाओं का संकलन किया है।जिनका नामोल्लेख हिन्दी साहित्य कोश भाग प्रथम (पारिभाषिक शब्दावली) सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा पृ. 331 में किया गया है।

2.3.1 गोरखनाथ की संस्कृत रचनाएँ – सिद्ध–सिद्धांत पद्धति (गोरक्षोपनिषद्) गोरक्षशतक, गोरक्ष–संहिता, महार्थमंजरी, अमनस्क–योग, अवधूत–गीता, अमरौधशासनम्, गोरक्ष–पद्धति, गोरक्ष–सिद्धांत संग्रह, हठयोग प्रदीपिका, घेरेण्ड–संहिता, विवेकमर्त्तिण्ड, योग–बीजम्, योग–सारावली, गोरक्षगीता आदि गोरक्ष द्वारा लिखित प्रमुख संस्कृत ग्रंथ हैं।[85]

74. सिद्ध साहित्य– डॉ. धर्मवीर भारती, पृ. 45
75. नाथ सम्प्रदाय–द्विवेदी, पृ 106
76. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास– डॉ. राम कुमार वर्मा, पृ. 151
77. हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि– त्रिगुणायत, पृ.330
78. महाराष्ट्र के नाथपंथी कवियों का हिन्दी काव्य–कामत, पृ 93
79. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य– पृ. 75
80. नाथ सम्प्रदाय पृ., 106
81. गोरखनाथ – डॉ. नागेन्द्र नाथ उपाध्याय– पृ. 90–92
82. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य–पृ. 77
83. गोरख नाथ और उनका युग–राघव, पृ 43–44
84. नाथ सम्प्रदाय ओर साहित्य– जुनेजा, पृ 149
85. गोरख नाथ और उनकी परम्परा का साहित्य– डॉ. दिवाकर पाण्डेय, पृ 83–96

2.3.2 गोरखनाथ की हिन्दी रचनाएँ – डॉ. बडथ्वाल ने गोरखबानी में गोरखनाथ की निम्न हिन्दी रचनाओं को सम्पादित किया है–[86]

सबदी, पद, सिष्यादर्शन, प्राणसांकली, नखै–बोध, आत्म–बोध, अभैमाजायोग,पन्द्रहतिथिसप्तवार, मछीन्द्र गोरखबोध, रोमावली, ग्यानतिलक, पंच मात्रा।

परिशिष्ट – 1. गोरखगणेश गुष्टि, ज्ञानदीप़ बोध, महादेवगोरख गुष्टि, सिस्टपुराण, दया–बोध, कुछ पद।

परिशिष्ट – 2 सप्तवार नवग्रह, व्रत, पंचाग्नि, अष्टमुद्रा, चौबीस–सिद्धि, बत्तीस लछन, अष्टचक्र, रहरासि।

परिशिष्ट – 3 सुन्दर तिलक।

गोरखनाथ के नाम से विविध ग्रंथ नाथ–सम्प्रदाय में प्रचलित हैं, किन्तु सभी के रचयिता गोरखनाथ हो ऐसा आवश्यक नहीं है।

द्विवेदी जी का मत उक्त कथन की पुष्टि करता है कि गोरख की कुछ रचनाएँ नाना भाव से परिवर्तित, परिवर्द्धित और विकृत होती हुई आज तक चली आ रही हैं।[87]

2.2.2.4 गोरखनाथ की विचारधारा – गोरखनाथ की विचारधारा ने मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, दर्शन, धर्म एवं साधना सभी को प्रभावित किया। निम्न बिंदुओं द्वारा हम उनकी विचारधारा को आलोकित करने का प्रयास करेंगे।

2.4.1 साधना (हठयोग) – गोरखनाथ के विचारों में सबसे महत्त्वपूर्ण है उनके द्वारा निर्दिष्ट हठयोग साधना। गोरखनाथ का हठयोग प्राचीन योग प्रणाली का ही नूतन परिष्कृत रूप है। इनकी साधना त्रिमुखी है – इन्द्रिय–निग्रह, प्राण–साधना, एवं मन–साधना। गोरखनाथ के हठयोग का विस्तार से वर्णन आगामी पृष्टों में किया गया है अतः यहॉ संक्षिप्त उल्लेख ही अपेक्षित होगा।

गोरखनाथ देह कष्ट साधना के विरोधी थे। अतः वे साधना के बाह्य साधनों की अपेक्षा अन्तःकरण की शुद्धि पर विशेष बल देते हैं। वे साधना हेतु गुरू की महत्ता निरूपित करते हैं।

2.4.2 बाह्याडम्बरों का खण्डन – तद्युगीन धर्म एवं समाज में गहरे तक जड़ें जमा चुकी कुरीतियों, रूढ़ियों, अंधविश्वासों भेद–भाव आदि का खण्डन गुरू गोरखनाथ ने उग्रता से किया है। ब्राह्मणों की आचारहीनता, आचरणहीनता की गॉठ को गोरख ने अपनी वाणी द्वारा खोल कर रख दिया है। ऐसा कर उन्होंने स्वस्थ समाज की नींव रखी।

---

86. उपरिवत्–पृ 71
87. नाथ सम्प्रदाय–द्विवेदी जी, पृ 107

2.4.3 सहज एवं उदात्त जीवन पर बल – गोरख नाथ ने मानव को विकारों, दूषित प्रवृत्तियों से विरक्त रहकर सहज एवं उदात्त जीवन की शिक्षा प्रदान की है।

2.4.4 सामाजिक जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा – गोरखनाथ ने तद्‌युगीन दिशा भ्रांत समाज को सत्य, अहिंसा, दया, दान, प्रेम, करूणा, शील, संतोष एवं बंधुत्व का पाठ पढ़ाकर उन्नति का मंगलमयी मार्ग दिखाया।

2.4.5 नारी के प्रति दृष्टिकोण – गुरू गोरख नाथ ने नारी के वासनात्मक स्वरूप की तीव्र भर्त्सना की है। पार्वती द्वारा नव नाथों की परीक्षा के समय गोरखद्वारा पार्वती के कामिनी रूप को मातृ–रूप में स्वीकार करना, उनकी नारी–विषयक विचारधारा को स्पष्ट करती है। स्पष्ट है कि गोरखनाथ नारी के भोग्या, मायिक–स्वरूप के कड़े विरोधी थे, किन्तु माता रूप में वे उसी नारी के समक्ष नतमस्तक हुए।

सम्यक् निरूपण करने से स्पष्ट है कि नाथ–पंथ के प्रवर्तक भले मत्स्येन्द्र नाथ हो, किन्तु उस नाथ–पंथ को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने का कार्य गुरू गोरखनाथ ने किया। उन्होंने नाथ पंथ को वाममार्गी साधना से विमुख कर अपना मार्ग अलग किया तथा वर्तमान में उनका मत ही नाथपंथ नाम से अभिहित किया जाता है। उनकी उदात्त विचारधारा के कारण ही समाज पर नाथ–पंथ का असाधारण प्रभाव रहा। गोरखनाथ की महिमा का गुणगान करते हुए द्विवेदी जी ने कहा है कि शंकराचार्य के उपरांत गोरक्षनाथ के समान प्रभावशाली तथा महिमामण्डित महापुरूष भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ।[88] गोरखनाथ नाथ–सम्प्रदाय के उज्ज्वलतम् रत्न है, जो आध्यात्मिक आकाश में जगमगाते हुए सदैव मार्ग प्रशस्त करते रहेंगे।

2.3 कौल-कापालिक और हठयोग

2.3.0 – नाथ–सम्प्रदाय के आविर्भाव काल से पूर्व ही अनेक सम्प्रदायों का अस्तित्व था। सम्पूर्ण भारतवर्ष में कौल, कापालिक, बौद्ध तांत्रिक–परम्परा, वैदिक योगाचार, जैन–साधना इत्यादि का विशेष प्रचार प्रसार था।[89]

नाथ–सम्प्रदाय का बौद्ध–धर्म से घनिष्ठ सम्बंध रहा है। नाथ सम्प्रदाय की परम्पराओं में बौद्ध साधना का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। बौद्ध धर्म धीरे–धीरे तांत्रिक प्रवृत्तियों से प्रभावित होता गया। इसमें शैव–प्रवृत्तियाँ एवं शैव–साधनाओं का प्रवेश होने लगा, जिसका प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष प्रभाव नाथ–साधना–प्रणाली पर भी दिखाई देता हैं।

शैव सम्प्रदाय दो वर्गों में विभक्त है – पाशुपत शैव और आगम शैव। आगे चलकर पाशुपत लकुलीश, कापालिक नाथ, रसेश्वर इत्यादि पंथ इसी से निर्मित हुए। डॉ. नागेन्द्र नाथ उपाध्याय ने इन नाथ योगियों को कापालिक पाशुपत संन्यासियों का विकसित रूप माना है। पाशुपत, कालामुख, और कापालिक वामाचारी थे तथा ये ही नाथयोगियों

88. नाथ सम्प्रदाय– पृ. 106

89. महाराष्ट्र के नाथपंथी कवियो का हिन्दी काव्य–डॉ. अशोक कामत, पृ 82

के मूल मत थे।[90] धीरे–धीरे ये वामाचारी साधनाएँ, जो पाशुपत शैव–मत से प्रभावित थी तथा इनकी साधना पद्धति शाक्तों से भी मेल रखती थी की स्वतंत्र सत्ता समाप्त होने लगी। ये साधनाएँ नाथ–पंथियों में प्रविष्ट होने लगीं। इन तांत्रिक साधनाओं के प्रभाव को नाथपंथ की साधना–पद्धति में देखा जा सकता है।

2.3.1 कौल मत/मार्ग – समस्त जगत् की प्रवर्तिका शक्ति को 'कुल' की संज्ञा प्राप्त हुई। कुल–गोत्र हीन महादेव शंकर 'अकुल' के साथ अभिधान से गौरवांवित हुए। कुल–अकुल अर्थात् शिव और शक्ति के सामरस्य का साधना मार्ग कौल मत या कौल मार्ग कहलाया।[91]

कौल मार्ग में शक्ति को अखिल भुवन का कारण बताया गया है, वही सम्पूर्ण जगत् का प्रवर्तन करती है। शक्ति के अभाव में शिव असमर्थ है। इकार शक्ति–वाचक है और शिव में से इकार निकाल देने से वह 'शव' हो जाता है अतः शक्ति ही उपास्य है। इस शक्ति की उपासना करने वाले शाक्त लोग ही कौल हैं।[92]

इस प्रकार शाक्त मत में अथवा कौल मत में शिव–शक्ति का एकीकरण होता है। नाथमत की साधना में भी हम शिव–शक्ति के समरसीकरण को पाते हैं। नाथमत में भी शिव एवंशक्ति की एकता, सामरस्य स्थापित करना ही हठयोग की साधना का अन्तिम साध्य माना है।

कौल साधना जो कि भोग प्रधान साधना थी, बाह्य आचारों पर अवलंबित रही। भोग की प्रधानता होने के कारण यह साधना विकृत होती चली गई। इस साधना में पंच–मकारों (मद्य, मत्स्य, मांस, मुद्रा, मैथुन)[93] को प्रधनता प्राप्त हो गई। इस प्रकार अनाचार एवं विकृतियों से प्रभावित कौल मत घोर विकृत साधनाओं के पथ पर आगे बढ़ने लगा। गोरक्षनाथ मत्स्येन्द्र नाथ कौल मत की 'योगिनीमत' शाखा से संबद्ध थे।[94]

मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा प्रवर्तित योगिनी कौल मार्ग का 'दार्शनिक स्वरूप शैव–शाक्त मतों से प्रभावित है। इन्होंने कौल शब्द का प्रयोग योग के अर्थ में किया है। 55 प्रकार के योग में कौल योग को प्रथम बताया है। 'कौल ज्ञान निर्णय' में उक्त मत की पुष्टि होती है।

कौल ज्ञान के अनुसार ज्ञान स्वप्रकाश है। ज्ञान अपने को आपही प्रकाशित करता है। यह जगत्, ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान रूप में त्रिपुटीकृत है। इस त्रिपुटीकृत जगत् के समस्त पदार्थ ज्ञान–रूप धर्म के एक होने के कारण सजातीय हैं इसलिए कुल–जाति

---

90. नाथ और संतसाहित्य– डॉ. नागेन्द्र नाथ उपाध्याय, पृ. 69
91. महाराष्ट्र के नाथपथीय कवियों का हिन्दी काव्य–कामत, पृ 82
92. नाथ सम्प्रदाय–डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 61
93. महाराष्ट्र के नाथपथीय कवियों का हिन्दी काव्य–कामत, पृ. 83
94. महाराष्ट्र के नाथ कवियों का हिन्दी काव्य–कामत, पृ 83

कहे जाते हैं। कुल सम्बंधी यह ज्ञान ही कौल ज्ञान है। ब्रह्म–ज्ञान स्वरूप, जगत् ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्म से अभिन्न है – यह अद्वैतज्ञान ही मत्स्येन्द्र नाथ के कौल मत में कौल ज्ञान है। कुल शब्द का योगपरक अर्थ है कि 'कु' अर्थात् पृथ्वी 'ल' अर्थात् लीन होना, पृथ्वीतत्त्व मूलाधार चक्र में अवस्थित है, मूलाधार चक्र ही वास्तव में कुल कहा जाता है। इस मूलाधार चक्र से सुषुम्ना नाड़ी मिली है, जिसके भीतर से उठकर कुण्डलिनी शक्ति सहस्रारचक्र में परमशिव से सामरस्य प्राप्त करती है। मत्स्येन्द्र नाथ के योगिनी कौल मत में उपर्युक्त अकुल–कुल सामरस्य का अभ्यास स्पष्ट रूप से मिलता है। कुल का अर्थ शक्ति, अकुल का शिव है इस प्रकार कुल से अकुल की सम्बंध स्थापना ही कौल मार्ग है।[95]

न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः।

अन्योन्यं च प्रवर्तन्ते अग्निधूमौ यथाप्रिये।

न वृक्षरहिता छाया नच्छायारहितो द्रुमः।[96]– (मत्स्येन्द्र नाथ)

अर्थात् वृक्ष के बिना छाया, अग्नि के बिना धूम का अस्तित्व नहीं होता उसी प्रकार शक्ति के बिना शिव अस्तित्वहीन है, अतः शक्ति एवं शिव अविच्छेद्य है।

मत्स्येन्द्रनाथ का कौल मार्ग 'योगनी कौल मार्ग' कहलाया। मत्स्येन्द्र नाथ का मत शैव–शाक्त मतों से प्रभावित रहा। उनके मत की उपासना शाक्तों से प्रभावित जान पड़ती है तथा शैव दर्शन के 36 तत्त्वों के प्रतिआस्था भी इनके मत में देखी जा सकती है। मत्स्येन्द्र नाथ ने प्रारम्भ में इस साधना में पंचमकारों को स्थान दिया, परन्तु गोरक्ष द्वारा स्वयं (मत्स्येन्द्रनाथ) के उद्धार किये जाने के उपरांत इसमें सदाचार, सात्विकता को प्रतिष्ठित किया।

इस प्रकार नाथ–मत एवं कौल–मत का लक्ष्य एक, शिव–शक्ति का सामरस्य है, परन्तु आगे चलकर कौल मत अनेक वामाचारी विकृत्तियों से घिरता चला गया। इसकी साधना में पंचमकारों की साधना को प्रश्रय दिया गया। इनमें मद्य मांस सेवन, कुल द्रव्य सेवन आदि का विलय होने लगा। ऐसे में नाथ–पंथी आगे चलकर इन्द्रिय विषय का नियम–पूर्वक दमन करके षडंग योग की साधना करने लगे। नाथ–साधना में कौल मत अथवा कौल साधना के प्रत्यक्ष परोक्ष प्रभाव दिखाई देते हैं।

2.3.2 कापालिक-मत – कापालिक मत के लोगो ने तांत्रिक एवं गुह्य सिद्धांतों – साधनाओं के चरम विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनकी साधनाओं में भोगवाद अपनी चरम सीमा को पार कर गुह्य रूप में बहुत समय तक चलता रहा। 'अन्यान्य तांत्रिकों की भाँति कापालिक लोग भी विश्वास करते थे कि परम शिव ज्ञेय है, उपास्य हैं – उनकी शक्ति और तद्‌युक्त अपर या सगुण शिव। इसी बात को लक्ष्य कर

95. नाथसिद्ध चरितामृत–सं. राम लाल श्रीवास्तव, पृ. 34–35
96. कौल ज्ञान निर्णय (मत्स्येन्द्र नाथ) (17/8–9)

भागवत में कहा गया है – कुण्डलिनी अर्थात् शक्ति से रहित शिव भी शव के समान अर्थात् निष्क्रिय है –

'शिवोऽपिशवतां याति कुण्डलिन्या विवर्जितः''

तांत्रिक लोगों का मत है कि परम शिव के न रूप है न गुण। इसीलिए उनका स्वरूप–लक्षण नहीं बताया जा सकता। जगत् के जितने भी पदार्थ हैं वे उनसे भिन्न हैं अर्थात् केवल 'नेति नेति' अर्थात् यह भी नहीं, वह भी नहीं, ऐसा ही कहा जा सकता है। निर्गुण शिव (परमशिव) केवल जाने जा सकते हैं, उपासना के विषय नहीं हैं। शिव केवल ज्ञेय है। उपास्य तो शक्ति है। इस शक्ति की उपासना के बहाने भवभूति ने कापालिकों के मुख के शक्ति के क्रीडन और ताण्डव का बड़ा शक्तिशाली वर्णन किया है। शक्तियों से वेष्टित शक्तिनाथ की महिमा का वर्णन करने के कारण यह अनुमान असंगत नहीं जान पड़ता कि कापालिक लोग भी परमशिव को निष्क्रिय निरंजन होने के कारण केवल ज्ञान का विषय (ज्ञेय) समझते हों।[97]

शबरपा तंत्र में 24 कापालिकों (आदिनाथ, अनादि, काल, अतिकालक, कराल, विकराल, महाकाल, काल भैरव नाथ, वटुक, भूतनाथ, वीरनाथ, श्रीकन्ठ, नागार्जुन, जड़ भरत, हरिश्चन्द्र, सत्यनाथ, मीननाथ, गोरक्ष, चर्पट अद्वय, वैराट्य, कथाधारिन, जालंधर, मलयार्जुन) की सूची मिलती है।[98] उपर्युक्त सूची में कई वज्रयानी सिद्ध थे एवं कई नाथों की सूची के अन्तर्गत आते हैं।[99]

गोरक्ष–सिद्धांत–संग्रह में वर्णित एक कथा को द्विवेदी जी ने उल्लिखित कर कापालिकों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है – 24 कापालिकों को आगे चलकर नाथ–सम्प्रदाय में श्री नाथ द्वारा भेजे गए दूतों के रूप में परिकल्पित किया। उस समय तक विष्णु चौबीस अवतार ग्रहण कर चुके थे। बारह प्रमुख और बारह गौण। जब उन्होंने कुर्मादि जलचरों और पशुओं की सी क्रीडाएँ की और कृष्ण का सा व्यभिचारी रूप ग्रहणकिया तो श्रीनाथ ने चौबीस कापालिकों को भेजा और उन्होंने आकर चौबीस अवतारों से तुमुल युद्ध किया और उनके कपाल काट लिए, 'उन्हें धारण करने लगे। तभी से ये लोग कापालिक कहलाए।[100] सम्भव है कि यह कथा तत्कालीन समय में बढ़ते हुए वैष्णव द्वेष का परिणाम हो।

परन्तु एक बात स्पष्ट है कि महाभारत काल से ही शिव की कापालिक रूप में आराधना करने के सम्बंध में कथायें मिलती है।[101] कापालिक लोग शिव के भयावह रूप की आराधना करते थे। इन्हें करात, रूद्र, और क्रूर कहा गया। वे सर्वथा वस्त्रविहीन,

97. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रथावली–5 हजारी प्रसाद, पृ 234
98. सिद्ध साहित्य–धर्मवीर भारती, पृ. 125
99. नाथ सम्प्रदाय–हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 273
100. नाथ समप्रदाय– हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 7
101. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य– डॉ. वेदप्रकाश जुनेजा, पृ. 139

समस्त शरीर पर भभूत लगाये, हाथ में कपाल का कमण्डल लिए नरमुण्डों की माला पहने तथा श्मशान में विहार करने वाले हैं। शिव के इस रूप की साधना करने वालों का सम्प्रदाय कापालिक कहलाया।[102]

पुष्पदंत विरचित महापुराण, प्रबोधचन्द्रोदय हर्ष चरित्र आदि नाटकों में कापालिकों का उल्लेख हुआ है।

इन कापालिकों की साधनाएँ सभी तांत्रिक–सम्प्रदायों में सर्वाधिक गुप्त एवं विकराल थी। ये काल मुखों की छः साधनाओं के अतिरिक्त छः चिह्न –श्री धारण करते थे (कर्णिका, रूचक, कुण्डल, शिखामणि, भस्म, यज्ञोपवीत)[103] इन छः चिह्नों को धारण करने वाला आवागमन से मुक्ति पा जाता है। इनके यहाँ सम्भवत: दीक्षा को 'व्रत' कहते थे। ये सोम मद्य पीते थे, जिससे इनका चित्त जाग्रत होता था, माँस (कभी–कभी शव) भक्षण करते थे, कपाली शक्ति का आलिंगन करते थे और श्मशानों में योग–साधना करते थे। तांत्रिक अनुष्ठान करते थे और भैरव शक्तियाँ जगाते थे, नर–बलि देते थे, शिव के भैरवरूप एवं अघोर मुख के उपासक थे।[104]

नाथयोगियों का कापालिकों, पाशुपतों और अघोरियों से घनिष्ठ सम्बंध था।[105]

जालंधर और उनके शिष्य कृष्णपाद बौद्ध कापालिक थे। इनके अनुयायी मानवी अस्थियों की माला धारणकर नर–कपाल में भोजन किया करते थे। श्मशान में निवास करने वाले ये औघड़ साधक मानवी माँसाहुति देकर मानव के ताजाखून से भैरव पूजा का आनन्द लिया करते थे। कापालिकाओं के साथ स्वच्छंद आचार करने वाले ये उद्दंड योगी साधक–समाज पर अपनी उग्रता से भयंकर आतंक जमाये हुए थे।[106]

जालंधर नाथ के यौगिक सिद्धांतों एवं विचारों पर बौद्ध दर्शन अथवा तांत्रिक बौद्ध दर्शन का थोड़ा बहुत प्रभाव है। जालन्धरपाद की रचनाओं और वचनों से यह परिलक्षित होता है कि वे शैव कापालिक मत की ओर आकृष्ट थे।[107] महायोगी जालन्धर पाद के सरहपाद और कंबलांबर पाद द्वारा प्रवर्तित हेवश्रसाधना की दीक्षा ली थी। इस साधना–प्रणाली में प्राणायाम की मुख्य आधार वाली हठयोग साधना का महत्त्व स्पष्ट है। यही कारण है कि हेवश्रसाधना में दीक्षित जालन्धरपाद को नाथ–सम्प्रदाय की हठयोग परक साधना में सिद्धि प्राप्त करने में सुगमता हो सकी और साथ ही साथ वे नाथ–

102. शैवमत–डॉ. यदुवंशी, पृ. 107
103. भारतीय दर्शन–बलदेव उपाध्याय, पृ. 585
104. सिद्ध साहित्य–धर्म वीर भारती, पृ. 125
105. नाथ एव संतसाहित्य (तुलनात्क अध्ययन)–डॉ, पृ. 69
106. महाराष्ट्र के नाथ पंथीय कवियों का हिन्दी काव्य– कामत, पृ. 84
107. नाथ सिद्ध चरितामृत– सं. राम लाल श्रीवास्तव, वृ. 103

मत अथवा सिद्धामृत मार्ग के कर्णधारों में प्रमुख स्थनीय परिगणित हो सके।[108]

योगेश्वर जालन्धरनाथ के कीर्तिवान शिष्यों में कृष्णपाद प्रमुख है। कृष्णपाद की प्रारम्भिक साधना कापालिक मत से प्रभावित थी वे लिखते है –

आलो डोम्बि तोए संग करिब मो सांग।

निर्धन कान्ह कापालि जोइ लांग।।[109]

कृष्णपाद ने अपने गुरू जालन्धर पाद से हेवश्र सिद्धांत का ज्ञान प्राप्त किया था।[110] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कृष्णपाद कापालिक मत से प्रभावित थे तत्पश्चात् वे शैव योग से प्रमवित हुए। इनके द्वारा प्रवर्तित योगमत हेवश्रसाधना ओर शैव योगसाधना का समन्वय है तथा दह अपनी विशिष्टता के कारण नाथपंथ (वाम मार्ग) के रूप में स्वीकृत है और नाथ–पंथ के बारह वेष के अतिरिक्त वह अर्ध–सम्प्रदाय के रूप में नाथयोगाचार्यो द्वारा सम्मानित हैं।[111]

जालन्धर पाद तथा कृष्णपाद का उपलब्ध साहित्य में जिस मत का आभास मिलता है वह निरसन्देह नाथ–मार्ग का पुरोवर्ती होने योग्य है।[112]

नाथपंथ शैव, बौद्ध ,सिद्ध सभी से प्रभावित रहा है। शैव और बौद्ध दोनों साधनाओं में स्त्री की सहायता आवश्यक थी। आगे चलकर इस साधना ने नाथ–पंथ को भी प्रभावित किया। नाथपंथ की व्रज़ोली नामक मुद्रा इसी प्रभाव की प्रतीक है।[113]

गुरू गोरक्षनाथ ने इन तांत्रिक गुह्य साधनाओं का विरोध कर सदाचार युक्त, शुद्ध आचरण युक्त योग मार्ग की साधना की स्थापना की।

2.3.3 हठयोग

2.2.3.0 भारत की अध्यात्म परम्परा अत्यन्त प्राचीन एवं प्रौढ़ रही है। इस परम्परा में योगदर्शन का अपना विशिष्ट स्थान है। उपनिषद् में योग के विषय में कहा गयाहै –

तां योगमति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम्।'

अर्थात् योग वही है जहाँ इन्द्रियाँ स्थिर–रूप से साधक के वश में हो जाती है।[114] मानव शरीर का परम लक्ष्य सकल दुखनिवृत्ति और परमतत्त्व के ज्ञान द्वारा आनन्दानुभूति करना है और मनुष्य के इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु योग उत्तम साधन है।

108 वही
109. बौद्धगान ओ दोहा : 'चर्याचर्य विनिश्चय' खण्ड सं. हरिप्रसाद शास्त्री पद 10
110. नाथ सिद्ध चरितामृत–श्रीवास्तव, पृ. 179
111. सिरे मंदिर 'जालोर' – डॉ. भगवती लाल शर्मा, पृ. 48
112 हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली–5 आचार्य द्विवेदी, पृ. 235
113. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य– डॉ. वेद प्रकाश, पृ. 140
114. कल्याण–योगतत्त्वाक – पृ 42

योगदर्शन के अनेक प्रसंग उपनिषदों में वर्णित हुए हैं, किन्तु इस दर्शन के प्रवर्तक महर्षि पतञ्जलि है। उनका यह योग–दर्शन समाधि, साधन, विभूति तथा कैवल्य[115] नाम के चार पादों में विभक्त है।

पतञ्जलि के अनुसार – (योगदर्शन)

'योगचित्तवृत्तिनिरोध :[116] अर्थात् चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है। अपनी बात को आगे वे इस प्रकार कहते हैं –

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्[117] अर्थात् जब चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है तब द्रष्टा की आत्मा शुद्ध परमात्म – स्वरूप में अवस्थिति होती है।

वस्तुतः योग चित्त–वृत्तियों का निरोध है, परन्तु चित्त का निरोध करना कोई सरल–सहज कर्म नहीं है। चित्त तो वायु के सदृश चंचल है। उसका निरोध अत्यंत दुष्कर है, परन्तु चित्त–निरोध का उपाय बताते हुए कहा है – अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्नरोधः[118] ऐसी ही बात श्री कृष्ण अर्जुन को बताते है– अभ्यासेनतु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते[119]

अर्थात् इस चित्त को वश में करने हेतु वैराग्य एवं अभ्यास की आवश्यकता होती है। योग के द्वारा चित्त को संयत किया जाता है और चित्त के निरोध से एकाग्रता प्राप्त होती है; जिससे परमानन्द की प्राप्ति सम्भव है। योग द्वारा आत्मदर्शन प्राप्त करना ही परम धर्म है। योगांगों का अभ्यास करते हुए चित्तवृत्ति निरोधपूर्वक असम्प्रतात समाधि भूमिका में पहुँचकर अपने चैतन्य स्वरूप या ब्रह्मस्वरूप में स्थित हो जाना ही योग है।[120]

2.3.3.1 योग के प्रकार – योग उपनिषद् में योग के प्रकारों की चर्चा करते हुए स्पष्ट किया है –

योगोहि बहुधा ब्रह्मन् भिद्यते व्यवहारतः।

मन्त्रयोगो लयश्चैव हठोअसौ राजयोगकः।।[121]

अर्थात् योग बहुत प्रकार का होता है, किन्तु व्यवहार भेद से उसके चार भेद माने गए हैं। मंत्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग। पतंजलि का अष्टांग योग ही वह अवलम्ब है, जिससे योग की अन्य शाखाओं, प्रशाखाओं का विकास हुआ है। एक रूपक में इस बात को ऐसे कह सकते हैं कि पतंजलि का अष्टांग योग विशाल तरू के सदृश है एवं मंत्रयोग, लययोग, हठयोग एवं राजयोग इस तरू की उन्नत शाखाएँ।

115. कल्याण–योगतत्त्वांक, 42
116. वही, पृ. 17
117. वही, पृ. 17
118. वही पृ.–42
119. वही–पृ. 42
120. कल्याण–योगतत्त्वांक, पृ. 88
121. योग तत्त्वोपनिषद् –पृ. 367

2.3.3.2 नाथ-सम्प्रदाय में हठयोग का स्वरूप – नाथ –सम्प्रदाय में योग शिव विद्या है। भगवान योगिराज परमनाथ शिव ने आदिशक्ति महादेवी पार्वती द्वारा भव दुःख–सागर से पार उतरने वाले (मोक्ष मार्ग) मुक्ति मार्ग का उपाय पूछने पर योग का ज्ञान प्रदान करते हुए कहा –

सर्वसिद्धि करो मार्गो मायाजाल निकृन्तनः।

जन्म मृत्युजराव्याधिनाशकः सुखदो भवेत।। (6)

बद्धा येन विमुच्यन्ते नाथ मार्गमतः परम।

तमहं कथयिष्यामित व प्रीत्या सुरेश्वरि।। (7)[122]

अर्थात् मोक्षप्रद (नाथ) योगमार्ग समस्त योग सिद्धियों को प्रदान करने वाला और मायाजाल (अविद्या के बंधन) को काटने वाला है। यह जगत् (के प्राणियों) के लिए अत्यंत सुखद योगज्ञान प्रदायक और जन्ममरण तथा जरावस्था एवं समस्त मानसिक – शारीरिक रोगों को नष्ट करने वाला है।

इस प्रकार नाथ–पंथ में योग का ज्ञान महादेव द्वारा पार्वती को प्रदान किया। जिसका श्रवण गुप्त रूप से गुरू मत्स्येनाथ ने किया तथा उसका ज्ञान गोरक्ष के माध्यम से अन्य नाथों को हुआ। इस तरह आदिनाथ द्वारा उपदिष्ट यह महायोग ज्ञान नवनाथों द्वारा निरन्तर पोषण प्राप्त करता हुआ नाथ–पंथ के साधकों एवं उनकी साधना–प्रणालियों में सजीव है।

इस योग में अद्वैत से परे परमेश्वर परमशिव ही नाथ देवता के रूप में परम उपास्य है निराकार, निर्विकार, निर्मल ज्योति ही इस योग मार्ग में परम प्राप्तव्य है।[123]

नाथयोगियों की साधना प्रणाली हठयोग पर आधारित है जो कि पतंजलि के अष्टांगयोग से पूर्णतयाः प्रभावित है। नाथ–सम्प्रदाय में प्रयुक्त हठयोगशिव द्वारा उपदिष्ट वही योगविद्या है जिसे मत्स्येन्द्र नाथ ने श्रवण कर नवनाथों के माध्यम से विस्तार किया और लोकप्रिय बनाया। इसकी लोकप्रियता तो इस बात से ही स्पष्ट हो जाती है कि आज सामान्य जन के लिए योग का अर्थ अथवा तात्पर्य हठयोग ही हो गया है।

सामान्यतः हठयोग का अर्थ है 'हठेन बलात्कारेण योगसिद्धिः' अर्थात् बलपूर्वक योग साधना में सिद्धि प्राप्त करना।[124]

---

122 योग बीज–प्रणेता– गोरखनाथ, सं. राम लाल श्रीवास्तव, पृ. 2–3

123. कल्याण–योग तत्त्वाक, पृ. 78

124. नाथ–योग–अक्षय कुमार बनर्जी, पृ. 34

हठयोग का सिद्धांत यह है कि स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर एक ही भाव में गुम्फित है और एक का प्रभाव दूसरे पर पूरा बना रहता है। स्थूल शरीर को अपने अधीन कर सूक्ष्म शरीर को अधीन करते हुए योग की प्राप्ति करने को हठयोग कहते हैं।[125]

किन्तु हठयोग का सम्प्रदायगत विशिष्ट अर्थ प्रचलित है।

सिद्ध सिद्धांत पद्धति में हठयोग को परिभाषित किया गया है –

हकारः कथितः सूर्यः ठकारश्चन्द्र उच्यते।

सूर्याचन्द्रमासेर्योगात् हठयोगो निगद्यते।।

यहाँ 'ह' का अर्थ सूर्य बताया गया है और 'ठ' का अर्थ चन्द्र। सूर्य एवं चन्द्र का योग ही हठ योग है।[126] गोरक्षनाथ ने हठयोग के स्वास्थ्य का सम्पादन करते हुए सूर्य और चन्द्रमा के सहज सायुज्य पर बल दिया है –

चंद सूर दोऊ समि करि राष्या आपैं आप जु मिलिया।[127]

सिद्ध सिद्धांत पद्धति में वर्णित श्लोक की व्याख्या विभिन्न प्रकार से की गई है। एक व्याख्या के अनुसार सूर्य से तात्पर्य प्राणवायु से तथा चन्द्र का आपान वायु से है। अतः प्राणायाम द्वारा उक्त दोनों प्रकार की वायु का निरोध हठयोग है। दूसरे मत के अनुसार सूर्य इडा तथा चन्द्र पिंगला नाड़ियों का प्रतीक है। इस पर नियंत्रण करके सुषुम्ना – मार्ग से प्राणवायु को संचरित करना हठयोग कहलाता है। सूर्य और चन्द्रमा को नामान्तर से गंगायमुना भी कहा गया है, जो क्रमशः इडा और पिंगला के प्रतीक हैं।[128]

नाथ सम्प्रदाय के अन्तर्गत शक्ति से शिव के योग को हठयोग कहा है। इसके लिए शरीर में स्थित शक्तिरूपी कुण्डलिनी को; उद्‌बुद्ध कर क्रमशः षट्चक्रों का भेदन करते हुए शीर्षस्थ सहस्रार चक्र में जहाँ शिव का निवास है, ले जाया जाता है।[129] यही आनन्दानुभूति, परम तत्व के बोध की स्थिति है, हठयोग का अन्तिम साध्य है।

योगस्वरोदय में हठयोग के दो भेद बताए हैं – प्रथम में आसन, प्राणायाम तथा धौति आदि षट्कर्म है, इससे नाड़ियाँ शुद्ध होती है। शुद्ध नाड़ियों में पूरित वायु मन को निश्चल करती है और फिर परम आनंद की प्राप्ति होती है। दूसरे भेद में बताया गया है कि नासिका के अग्र भाग मे दृष्टि निर्बद्ध करके आकाश में कोटि सूर्य के प्रकाश का स्मरण करना चाहिए और श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण रंगों का ध्यान करना चाहिए। ऐसा करने से साधक चिरायु होता है और हठात् ज्योतिर्मय होकर शिवरूप हो जाता है।[130]

125. कल्याण योगतत्त्वांक, पृ 131
126. नाथ सम्प्रदाय– आचार्य द्विवेदी, पृ. 137
127. गोरखबाणी–पद–6
128. कल्याण–योग तत्वांक, पृ. 287
129. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य– डॉ. वेद प्रकाश, पृ. 115
130. नाथ सम्प्रदाय–आचार्य द्विवेदी, पृ0 138

हठयोग की दो विधियाँ बताई है – एक तो गोरक्षनाथ की पूर्ववर्ती जिसका उपदेश मृकण्डु पुत्र (मार्कण्डेय) आदि ने किया था और दूसरी गोरक्षनाथ द्वारा उपदिष्ट। इनमें भेद बताया है क्रमशः प्रथम में योग के आठ अंगों को स्वीकार किया है जिन्हें पतञ्जलि के अष्टांग योग में स्वीकृत किया है। (यथा – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि)[131] तथा दूसरी विधि में गोरक्षनाथ ने षडांग योग (अष्टांग योग के प्रथम, एवं द्वितीय (यमनियम की गणना नहीं की) का उपदेश दिया। हठयोग के ग्रंथों में अष्टांग योग एवं षडांग योग दोनों को स्वीकार किया गया है। गोरक्षशतक में षडांगयोग की बात की है और सिद्ध–सिद्धांत संग्रह में अष्टांग योग की।[132]

हठयोग का उद्देश्य देह शुद्धि ही है अर्थात् हठयोग देह शुद्धि की क्रिया है। हठयोग की साधना में सात प्रक्रियाएँ हैं – 1. शोधन, जो षट्कर्मों द्वारा सिद्ध होती है, 2. दृढ़ता, जो आसनों द्वारा सिद्ध होती है। 3. स्थिरता, जो मुद्राओं द्वारा सिद्ध होती है। 4. धैर्य, जो इन्द्रिय संयम या प्रत्याहारों द्वारा सिद्ध होता है। 5. लघुता या लाघव, जो प्राणायाम से सिद्ध होता है। 6. प्रत्यक्ष, जो ध्यान के द्वारा सिद्ध होता है और 7. निर्लिप्तत्व, जो समाधि में प्राप्त होता है और जो अन्तिम लक्ष्य है।[133]

हठयोग साधना में देह शुद्धि हेतु षट्कर्मो (छः क्रियाएँ) का उल्लेख किया गया है। षट्कर्मों में धौति वस्ति, नेति, त्राटक,नौलि, कपाल भीति है।[134]

नाथयोगी षडांग योग–साधना के अन्तर्गत यम, नियम, की गणना नहीं करते, किन्तु प्रारम्भिक योग–साधना के रूप में उन्हें पर्याप्त महत्त्व देते हैं। नाथयोगी 10यम और 10 नियम की व्याख्या करते हैं।[135] यम के दस भेद हैं –

1. **यम** –*अहिंसा सत्यम् अस्तेयम् ब्रह्मचर्यम् क्षमा धृतिः।*

दयार्जव मिताहार शौकं चैव यमो दश।।

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, क्षमा, धैर्य, दया, जीवन में सरलता, मिताहार, शरीर एवं मन की पवित्रता।[136]

2. **नियम** – नियम के भी 10 भेद बताए गए हैं – तप, संतोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वर–पूजा, सिद्धांत वाक्य श्रवण ही, मति, जप, होम।[137]

131. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य– डॉ. जुनेजा, पृ. 115–117
132. नाथ सम्प्रदाय–आचार्य द्विवेदी, पृ. 138
133. सहज साधना–आचार्य द्विवेदी, पृ. 61
134. प्राचीन हिन्दी काव्य–रामरतन त्रिपाठी, पृ. 198–199.
135. नाथ योग–अक्षय कुमार बनर्जी, पृ. 25
136. वही, पृ. 25–28
137. वही, पृ. 28–33

षडांग योग (हठयोग)

नाथयोगी षडांग योग की साधना पर बल देते हैं। योग के छः अंग निम्न हैं –

(1) **आसन** – 'स्थिर सुखम् आसनम्' अर्थात् स्थिर एवं सुखपूर्वक बैठना आसन है।[138] आसन जैसा कि योगशास्त्रों में उल्लिखित है विशेषतः शारीरिक अवयवों का नियमित एवं निर्धारित व्यायाम है। जिसके द्वारा अनेक मांस पेशियों तथा शारीरिक अवयवों को स्वेच्छा से नियंत्रित किया जा सकता है। जिनसे विभिन्न शारीरिक अवयवों की असंगत क्रियाओं से उत्पन्न अनेक रोगों, व्याधियों और कलुषों को दूर किया जा सकता है तथा शरीर को स्वस्थ, पुष्ट, सचेष्ट बनाया जा सकता है। साथ ही इसे इस योग्य बना सकते हैं कि यह भीतर तथा बाहर कार्य करने वाले विरोधी तत्त्वों को धैर्य एवं शांति से सहन कर सके।[139]

हठयोग ग्रंथों में (48000) आसनों की चर्चा हैं, पर चार को उत्तम माना है – सिद्धासन, उग्रासन, स्वस्तिकासन, पद्मासन। कुछ हठयोगी चार और आसनों को भी श्रेष्ठ बताते हैं – बद्धपद्मासन, त्रिलोकासन, मयूरासन, भुजंगासन।[140] इन आसनों से कुण्डलिनी जागरणमें सहायता प्राप्त होती है।

(2) **प्राणायाम** – श्वास–प्रश्वास की गति का विच्छेद प्राणायाम कहलाता है।[141] दर्शनोपनिषद् में प्राण, अपान, समान वायुओं से मन के निरोध करने के अभ्यास को प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम का प्रारम्भिक सम्बंध नाड़ियों से है। प्राण पर पूर्ण नियंत्रण अथवा संयम हो जाने पर ही नाड़ी शोधन संभव है। हठयोग में 'ह' और 'ठ' क्रमशः सूर्य और शशि या पिगला और इडा नाड़ियों के वाचक है।[142] प्राणायाम का उद्देश्य प्राणवायु को लम्बा फैला हुआ और विशाल बनाना है। स्थूल प्राण वायु इडा और पिंगला नाड़ियों से चलता रहता है और सूक्ष्म प्राण वायु सुषुमना मार्ग से चालित होता है। यह सूक्ष्म प्राण शक्ति कुण्डलिनी के द्वारा षट्चक्र भेदन में समर्थ होती है।[143]

(3) **प्रत्याहार** – इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर निरूद्ध करना प्रत्याहार है।[144] स्थूल शरीर को शुद्ध और संयत बनाने हेतु धैर्य की प्राप्ति के लिए प्रत्याहार की प्रक्रिया की जाती है। इसमें हठयोगी, स्थूल शरीर को छोड़ सूक्ष्म शरीर को वश में करने की कोशिश करता है।[145]

138. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य–डॉ. जुनेजा, पृ. 116
139. नाथ योग– अक्षय कुमार बनर्जी, 45
140. सहज साधना–द्विवेदी, पृ. 62–63.
141. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य–जुनेजा, पृ. 116
142. नाथ और संत साहित्य (तुलनात्मक अध्ययन) – उपाध्याय, पृ. 379
143. सहज साधना–द्विवेदी, पृ. 66
144. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य– जुनेजा, पृ. 116
145. सहज–साधना, पृ. 66

(4) **धारणा** – चित्तस्य निश्चलीभावो धारणा धरणं विदु:। अर्थात् चित्त का एकदश (स्थान) पर स्थिर रखना ही धारणा है।[146]

(5) **ध्यान** – धारणा के विषय में चित्तवृत्ति की एक तानता ध्यान है।[147]

(6) **समाधि** – ध्यानस्य विस्मृति : सम्यक्समाधिरभिधीयते। अर्थात् ध्यान की सम्यक्–विस्मृति समाधि है।[148]

जहाँ व्यक्ति और विश्व का, अहं और इद्म का, आत्म और पर का विरोध शमित हो जाता है। उसका मस्तिष्क लोकोत्तर मस्तिष्क और उसकी शक्ति लोकोत्तर शक्ति हो जाती है। वह स्थिति 'समाधि स्थिति' कहलाती है।[149]

हठयोग की साधना हेतु साधक सर्वप्रथम यम, नियमों का पालन करता है। उसके बाद विविध साधनाओं द्वारा निष्क्रिय कुण्डलिनी जोशक्ति का प्रतीक है को प्रबुद्धकर उद्‌बुद्ध करता है। उद्‌बुद्ध कुण्डलिनी षट्‌चक्रों (मूलधार, स्वाधिष्ठान, मणिणूर, अनाहत, विशुद्धाख्य, आज्ञा)[150] को भेदती है उसके बाद वह सहस्रार के ब्रह्मरन्ध्र का स्पर्श करती है, यही परमानन्द की अवस्था है। हठ योग साधना में गुरू का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गुरू की कृपा होने पर ही साधक शिव–शक्ति के सामरस्य में सफल हो सकेगा। हठयोग की पूर्ण परिणति राजयोग है। हठयोग की नियमित साधना के द्वारा राजयोग की सिद्धि होती है, अतः हठयोग से ही राजयोग का विकास होता है। इस प्रकार हठयोग के माध्यम से साधक, अनेक प्रकार की साधनाओं में रत रहकर परमपद में समरसीकरण करता है।

2.4 सहज सम्प्रदाय और नाथमत : स्वरूप और सिद्धांत

2.4.0 व्रज की धारणा को लेकर जैसे व्रजयान का जन्म हुआ। उसी तरह सहज का सिद्धांत लेकर सहजयान का आविर्भाव हुआ। सर्वप्रथम सहज का आशय जानना अपेक्षित होगा।

2.4.1 **सहज का अर्थ** – सहज का अर्थ है **''सहजाये इति सहजः''**।

जीवन के साथ जिन प्रवृत्तियों का जन्म होता है, उनके द्वारा सिद्धि प्राप्ति सहजयान कहलाया।[151]

---

146. कल्याण–योगतत्त्वांक, पृ 52
147. वही
148. वही
149. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य– जुनेजा, पृ. 117
150. नाथ सम्प्रदाय– हजारी प्रसाद, पृ. 143
151. निर्गुण सहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ. 49

'सहज' सिद्धांत को लेकर आने वाले सहज सम्प्रदाय में सभी वस्तुओं को सहज स्वरूप माना गया। उनके लिए यह संसार भी सहज रूप है शुद्ध चित्त वालों के लिए सहज ही निर्वाण रूप है।

2.4.2 **विविध मत** – डॉ. त्रिगुणायत इस सहज तत्त्व को उपनिषदों के आत्म तत्त्व से जोड़ते हैं, किंतु 'सहज' की धारणा महायान के विज्ञानवाद, योगाचार, शून्यवाद और सिद्धांतों से भी प्रभावित हुई है।

सहजयान का नामकरण और उसकी स्वतंत्र सत्ता विद्वज्जनों के मध्य मतभेद का कारण रही है।

पं. बलदेव उपाध्याय इसे वज्रयान का दूसरा रूप मानते हैं।[152]

गोपीनाथ कविराज अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति और साधना' भाग–1 पृ. 528 में वज्रयान, कालचक्रयान एवं सहजयान को मंत्रमार्ग से ही आविर्भूत मानते हैं। डॉ. शशिभूषण का मानना है कि इसकी प्रारम्भिक स्थिति मंत्रयान के रूप में दिखाई देती है, किन्तु वे इस प्रकार के कालचक्रयान सहजयान आदि के रूप में विभाजन को दोषपूर्ण मानते हैं; क्योंकि ये दोनों वज्रयान के रूप में ही दिखाई देते हैं। उन्होंने सहज यान शब्द को दो दृष्टियों से विशिष्ट माना है। आत्मा की परम सहजा प्रकृति के साक्षात्कार को लक्ष्यरूप में स्वीकार करने के कारण तथा धर्मो या पदार्थों की सहज प्रकृति के ज्ञान को लक्ष्य रूप में स्वीकार करने के कारण इसका सहजयान नाम सार्थक है। दूसरे मानव की सहज प्रकृति अनावश्यक दबाव डालने के स्थान पर यह व्यक्ति को परम सत्य का सर्वाधिक स्वाभाविक मार्ग से साक्षात्कार का अवसर देता है। यह उस मार्ग के अनुसरण की छूट देता है जिस पर मानव प्रकृति उसे ले जाती है। इससे स्पष्ट है कि डॉ. दासगुप्ता सहजयान को वज्रयान के अन्तर्गत ही एक आम्नाय के रूप में मान्यता देते हुए प्रतीत होते है, जिसमें चरमावस्था प्राप्त करने पर बाह्याडम्बरों की आवश्यकता नहीं रहती।[153]

इससे स्पष्ट है कि वज्रयान की कर्मकाण्ड युक्त, बाह्याडम्बरों से लबरेज,समय साध्य साधना की प्रतिक्रिया स्वरूप सहज सम्प्रदाय की सहज प्रवृत्तियों का एक पृथक् यान के रूप में विकास हुआ। इसके अन्तर्गत अपने से बाहर किसी भी प्रकार की सिद्धि अथवा परमार्थ की खोज अनावश्यक मानी गई। शरीर में ही गंगा, यमुना, सरस्वती का संगम स्थल बता शरीर तीर्थ की अवधारणा को पोषण प्रदान करते हुए धर्म के आडम्बरों, औपचारिकताओं पर कुठाराघात किया गया। सहजयान में पुस्तकीय ज्ञान को व्यर्थ सिद्ध करते हुए धार्मिक–आडम्बरों, समाज में व्याप्त भ्रांत धारणाओं का निषेध किया है। यह परम्परा अपनी पूर्ववर्ती परम्पराओं से अधिक यथार्थवादी थी।

152. बौद्ध कापालिक साधना और साहित्य– डॉ. नागेन्द्र उपाध्याय, पृ. 63. से लिया

153. बौद्ध कापालिक साधना ओर साहित्य– पृ. 63–64

नाथपंथ ने सहज सम्प्रदाय के इन उदात्त एवं कल्याणकारी विचारों को आत्मसात कर नैतिकता एवं संयम के रंग को भी एकाकार कर दिया। नाथ पंथ ने सहज सम्प्रदाय की उदात्तता को अपनाया, किंतु वामाचारी साधनाओं का विरोध भी यहाँ खुलकर किया गया।

2.4.3 साधनागत अन्तर – सहजयानी सिद्धों ने अपनी साधना का परमलक्ष्य महासुख की प्राप्ति को माना था, किंतु नाथ–मतानुसार उनकी साधना का लक्ष्य अमरत्व एवं महेश्वर तत्त्व को प्राप्त करना था। तभी नाथों की साधना में गुह्य साधना के प्रति उपेक्षा भाव प्रबल रहा। सहजयानियों के वाममार्गीपक्ष को नाथों ने तत्त्वतः स्वीकार नहीं किया। योग साधना एवं हठयोग साधना पर आधारित होने के कारण नाथ–मत में सहज सम्प्रदाय का मानसिक अथवा भावात्मक पक्ष नहीं आ पाया।[154]

2.4.4. नाथ-पंथ : स्वरूप और सिद्धान्त

2.4.4.1 सहज भाव और उदात्त जीवन – नाथों का सहज भाव और उदात्त जीवन चर्या पर विशेष स्नेह रहा। तभी तो गोरक्षनाथ ने भी कहा है –

हसिबा षेलिबा रहिबा रंग। काम क्रोध न करिबा संग।

हसिबा षेलिबा गाइबागीत। ढिढकरि राषि अपना चीत।[155]

यही मानव व्यवहार है तथा अन्तर्साधना का सामंजस्य भी।

अन्य स्थान पर गुरू गोरखनाथ जी सहज जीवन के लिए अहंकार को मिटाने का उपदेश भी देते हैं।[156]

2.4.4.2 नारी के (भोग्य) बाधक स्वरूप की निंदा – सहजयानियों ने जहाँ अपनी मुद्रा की मिलन अवस्था का अत्यंत उल्लास के साथ वर्णन किया है वहाँ गोरखनाथ की वाणी चुभते तीखे पन के साथ नारी रूपी वासना की तीव्र भर्त्सना करते हैं। साधक की साधना को भ्रष्ट करने के लिए कामवासना से बढ़कर अधिक हानिकारक अन्य कोई वस्तु नहीं। चरपट नाथ इसी की पुष्टि करते हुए कहते हैं –

चरपट कहे सुणो रे अवधू कामणि संग न कीजे।

जिंद बिंद नो नाड़ी सोषे, दिन दिन काया छीजे।[157]

नारी के भयानक स्वरूप का चित्रण करते हुए वे उसे बिना दाँतों के ही संसार को खा जाने वाली राक्षसी की उपमा देते हैं तथा उससे सावधान रहने का उपदेश भी।[158]

154. निर्गुण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ. 51
155. सबदी–पृ. 3/7
156. अवधू दम कौ गहिबा उनमनि रहिबा– उपरिवत् पृ. 15/51
157. नाथ सिद्धों की बानियां–पृ. 28
158. भग राकसि लो भग राकनि लो, विणा दंता जग षाया लो– गोरखबानी, पृ 143

2.4.4.3 संयम-नैतिकता प्रधान साधना पर बल – सहज सम्प्रदाय की साधना–भावना से अनुशासित थी, किंतु नाथों की साधना में संयम एवं नैतिकता पर विशेष आग्रह किया गया। गोरख ने अपने समय में व्याप्त अनाचार की घोर अवहेलना की। उन्होंने पंच मकारों की साधना और उसकी उपयोगिता की प्रचलित परम्परा को तोड़ते हुए खुले तौर पर मद्य, मांसादि की निंदा की।

गोरख मांस भक्षण को निन्दनीय कर्म बताकर उसे दया और धर्म का विनाशक तत्त्व घोषित करते हैं। इसके साथ ही वे मदिरा व भांग सेवन करने वालों को सावचेत करते हैं कि ऐसा करने से प्राण में नैराश्य छाता है तथा ज्ञान एवं ध्यान दोनों लुप्त होते हैं, जिससे प्राणी यम के दरबार में रोते रह जाते हैं। यथा –

अवधू मांस भषंत दया धरम का नास।

मद पीवत तहाँ प्राण निरास।

भाँगि भषंत ग्यान ध्यान षोवंत।

जमदरबारी ते प्राणी रोवत।[159]

नाथ साधक सत्य, अहिंसा, दया, प्रेम, शील, संतोष, सदाचार, बंधुत्व पर बल दे। उन्हें अपनाने का संदेश प्रेषित करते हुए लोगों को मुक्ति मार्ग दिखाते हैं।

2.4.4.4 धार्मिक-सामाजिक कुरीतियों एवं अंधविश्वासों का प्रतिकार – सहजयानियों की तर्ज पर नाथ साधक भी समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं अंधविश्वासों का खण्डन पुरजोर स्वर में करते हैं। वे समाज एवं धर्म में जड़ें जमा चुकी कुरीतियों, बाह्याडम्बरों की नींव पर प्रहार करते हैं।

इसी की पुष्टि में गोरख कहते हैं कि देवालय में मूर्ति–पूजा, तीर्थ–यात्रा इत्यादि से आत्मानुभूति का मार्ग नहीं मिल सकता–

देवलजात्रा सुंनी जात्रा, तीरथ जात्रा पांणी।

अतीत जात्रा सुफल जात्रा, बोलै अमृत वाणी।[160]

नाथ समाज में व्याप्त तीर्थ–यात्रा, व्रत, उपवास, जप, माला, छापा–तिलक को ही धर्म का पर्याय मान चुकी जनता को उपर्युक्त बाह्य साधनों की अनुपयोगिता की शिक्षा देते हैं।

तद्‌युगीन समाज में धार्मिक–अंधविश्वासों, आडम्बरों, कुरीतियों को निरंतर फैलाने वाले ब्राह्मण, काजी (धर्म नियंताओं) की भूमिका पर सीधे प्रहार करते हुए गोरख उन्हें मिथ्याचारी घोषित करते हैं –

159. गोरखबानी –पीताम्बर दत्त बडथ्वाल, पृ 56 (सबदी)

160. सबदी– 26

खाई हींग कपूर व षाणे, गोरष कहै सब झूठा।[161]

धर्म नियंताओं के थोथे ज्ञान एवं पोथियों की व्यर्थता सिद्ध कर नाथ साधक धर्म नियंताओं द्वारा धर्म के नाम पर की जाने वाली सुविधा की खेती पर विराम लगाते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि इनका ज्ञान तो बिना करनी के कथनी के समान व्यर्थ है। उनका ज्ञान उसी प्रकार क्षणस्थायी है जैसे पिंजरे के तोते का होता है जो रटी रटाई बातों को बोलता हैं, किन्तु जब बिल्ली उसे उठा ले जाती है तो वह टॉय–टॉय ही बोलता है। इसी प्रकार अंत काल में ये पोथी किसी काम नहीं आती।[162]

सारांशतः सहज सम्प्रदाय के सहज की अवधारणा को नाथमत में कुछ प्रकारान्तर से अपनाया गया है। जिसमें नैतिकता एवं संयम पर विशेष जोर दिया गया जो कि नाथ–मत की धरोहर थी। जिसे मध्यकालीन संतों ने शिरोधार्य किया।

2.5 नाथ-साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

2.5.0 नाथ मूलतः साधक थे। किसी लाभ की तुच्छ अभिलाषा हेतु उन्होंने काव्य सृजन नहीं किया। उन्होंने आध्यात्मिक दृष्टिकोण को अपनाते हुए अपने साहित्य में आत्मा की सहज व स्वाभाविक अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। अतः नाथ–साहित्य को सहज साहित्य का अनुपम उदाहरण कहा जा सकता है।

नाथ–साहित्य में निहित प्रमुख प्रवृत्तियों के उद्घाटन का प्रयास हम उनके अनुभूति एवं अभिव्यक्ति पक्ष के विवेचन द्वारा करेंगे।

2.5.1 **अनुभूति पक्ष** – नाथ–साहित्य सहज काव्य है अतः इसमें कृत्रिमता का नितांत अभाव है। तभी तो यह शाश्वत एवं चिरंतन है।

5.1.1 **बाह्माडम्बरों का खण्डन** – नाथ अन्तःसाधना के समर्थक थे। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त रूढ़ियों, कुप्रथाओं, अंधविश्वासों, आचरणहीनता के प्रति उपेक्षा का भाव अपनाया।

तद्युगीन समाज ब्राह्मणों जनित मिथ्या विचारधाराओं, भेदपरक नीतियों, कर्मकाण्डों से आक्रांत था। ऐसे में नाथों ने समाज को भ्रमित करने वाले ब्राह्मण वर्ग को मिथ्याचारी घोषित करके उनकी धार्मिक भूमिका पर कुठाराघात किया। अपने ज्ञान पर दंभ भरने वाले मिथ्याचारी ब्राह्मणों के ज्ञान को पिंजरे के तोते के ज्ञान समान व्यर्थ बताया।[163]

---

161. सबदी–पृ. 32/120

162 कहणि सुहेली रहणि दुहेली, कहणि रहणि बिन थोथी।
पढ़या गुण्या सूवा बिलाई षाया, पंडित के हाथि रह गई पोथी। –सबदी, पृ 32/119

163. कहणि सुहेली रहणि दुहेली, कहणि रहणि बिन थोथी।
पढ़या गुण्या सूवा बिलाई, षाया, पंडित के हाथ रह गई पोथी। – सबदी, पृ 32

गोरखनाथ ने पाँव में पावड़ी धारण करने, काया को कष्ट देने, नग्न रहने, दूधपान से जीवन व्यतीत करने से सिद्धि प्राप्ति की भ्रांत धारणा का कड़ा विरोध करते हुए, इन्हें बाह्याड़म्बर घोषित कर इनके त्याग का उपदेश दिया।[164]

5.1.2 नारी के प्रति दृष्टिकोण – नाथ साधकों ने नारी के विलासी स्वरूप की अवहेलना की है। गोरखनाथ ने कहा है –

विसरल गुरू मुख वाच । ताहि परे अवर कि साच।

विसरल माणिक मोति। तिरिउ–नयन के ज्योति।

अबहुन संभव मोहे। हे मीन नाथ

भनइ विद्यापति बोध। एहिओहि परम विरोध।[165]

ऐसा कहकर गोरखनाथ ने लौकिक प्रेम (स्त्री) व आध्यात्मिक प्रेम (ज्ञान) में परस्पर विरोध बताया है।

चर्पटनाथ भी इसी मत पर सहमति व्यक्त करते हुए, स्त्री को योग मार्ग की बाधा सिद्ध करते हैं –

चरपट कहें सुणौ रे अवधू। कांमणि संग न कीजै।

जिंद बिंद नौ नाड़ी सौषे। दिन दिन काया छीजै।[166]

नाथ साधकों ने नारी के संयोग द्वारा होने वाले पतन का चित्रण बड़े भयानक रूपकों के माध्यम से किया है।

नाथों में नारी के प्रति तिरस्कार का एकाकी भाव नहीं है, वरन् वे नारी के कल्याणकारी स्वरूप के प्रति नतमस्तक भी हुए हैं। जिसका विस्तार से वर्णन आगामी अध्याय में देखा जा सकता है।

5.1.3 गुरू की महिमा – नाथ–साधक गुरू को ब्रह्म से मिलाने वाला मानते हैं। गुरू कृपा से ही परम सत्य के साक्षात्कार होने की पुष्टि करते हुए गोरख कहते हैं–

बास सहेती सब जग बास्या स्वाद सहेता मीठा।

साच कहूँ तौ सतगुरू मानै रूप सहेता दीठा।[167]

---

164. पावडियां पग किसलै अवधू लौहे छीजंत काया।
नागा मूनी दूधाधारी एता जोग न पाया।– उपरिवत्–पृ. 12, सं. शार्दूल सिंह कविया

165. नाथ सिद्ध चरितामृत–रामलाल श्रीवास्तव, पृ 61

166. नाथ सिद्धों की बाणियाँ, पृ. 28

167. गोरखबानी सबदी–शार्दूल सिंह, पृ 8

नाथों ने गुरू को मोक्ष प्राप्ति में सहायक माना है।[168] गुरू कीया लाभे है अवधू कहकर गुरू धारण के लाभ भी बताये हैं।

5.1.4 सहज एवं उदात्त जीवन – नाथों ने मनुष्य को विकृतियों से दूर रहकर हँसते–खेलते सहज जीवन–यापन का उपदेश दिया है –

हसिबा पालिबा रहिबा रंग, काम, क्रोध न करिबा संग।

हसिबा षेलिबा गाइबा गीत,दिनु करि राषि अपना चीत।[169]

5.1.5 सामाजिक जीवन-मूल्यों के प्रति आग्रह – तद्युगीन समाज में व्याप्त अश्लीलता, अनाचार, असंयमित जीवन, हिंसा, घृणा, द्वेष, असत्य, विषमता इत्यादि का विरोध कर नाथ–साधकों ने अपनी सर्वहित कारी वाणी द्वारा समाज में लुप्त होते जीवन–मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा का प्रयास किया।

नाथों ने सत्य को ब्रह्म तुल्य मानते हुए सामान्य जन को सत्यके सुमिरण की शिक्षा दी। यथा –

सुमरिणं सत सुमरण।[170]

अवधू मांसमर्षण दया धरम का नास[171] कहते हुए गोरख नाथ ने हिंसा का विरोध किया है। सब घट व्यापक एक ब्रह्म[172] द्वारा नाथ सभी प्राणियों में साम्य ठहराते हैं।

नाथ साधक जोग का मूल है दया दान,भणत गोरखनाथ ये ब्रह्म ज्ञान[173] द्वारा दान व दया को ब्रह्म ज्ञान के समान अनमोल सिद्ध करके, लोभ, घृणा, द्वेष में आबद्ध सामान्य जन को दान–दया की शिक्षा देते हैं।

शील, संतोष एवं सादगी रूपी त्रिरत्नों को अपनाने का संदेश देते हुए नाथ कहते हैं –

सतशील संतोष धारण।[174]

सभी में एक परमात्मा को देखने वाले नाथ समता एवं बंधुत्व का उपदेश देते हैं।

---

168. गुरू वचन प्रति पालला, प्यिंरा मइला मोष्य मुक्ति– नाथ सिद्धो की बाणियां–पृ.44
169. गोरख बानी–सबदी– शार्दल सिंह कविया, पृ. 3
170. नाथ सिद्धो की बानिया– पृ. 6
171. गोरखबानी–सबदी– शार्दूल सिंह, पृ 44
172. नाथ सिद्धो की बानिया–पृ. 112
173. गोरख बानी– 126
174. नाथ सिद्धो की बानिया – पृ. 6

5.1.6 हठयोग-साधना – नाथ साधना इन्द्रिय–निग्रह, प्राण–साधना एवं मन साधना पर आधारित है। इनकी साधना हठयोग पर आधारित है। नाथ–साधकों ने शरीर में व्याप्त ब्रह्म का ज्ञान अथवा साक्षात्कार ज्ञान, योग विधि से हठयोग के माध्यम से किया है। जिसका उल्लेख इनके साहित्य में देखा जा सकता है।

5.1.7 रहस्यात्मकता – रहस्यवाद में एक विचित्र सा चमत्कार होता है। उस चमत्कार से नाथ–साहित्य भी चमत्कृत है। नाथों को ज्ञानपरक रहस्यवादी कहा जाता है।[175] इनके साहित्य में रहस्यवाद की प्रतीति तीन रूपों द्वारा हुई है – प्रतीकों के माध्यम से, अद्‌भुत रस निरूपण, तथा साधना की रहस्यात्मक व्यंजना द्वारा।

2.5.2 अभिव्यक्तिपक्ष – नाथ साहित्य नैतिक मान्यताओं से युक्त अलौकिक मानवीय आनन्द प्रदान करने वाला साहित्य है। डॉ. वासुदेव सिंह का मत इसी की पुष्टि करता है – इनकी रचनाएँ नीरस उपदेश अथवा सिद्धांत प्रतिपादन मात्र नहीं है, अपितु इनके काव्य में हमारे राग–तत्त्व के उन्मेष की शक्ति भी विद्यमान है।[176] नाथ–साहित्य में अभिव्यक्ति पक्ष के निम्न तत्त्व देखे जा सकते हैं –

5.2.1 रसात्मकता – नाथ–साहित्य में विविध रसों की सृष्टि हुई है। जहाँ वैराग्य–भाव प्रबल है, वहाँ शान्त रस व्यापक कलेवर में अपनी छटा बिखेरे दिखाई देता है। यथा –

तुझ परिवारी हो अणघड़िया देवा।[177]

वहीं नाथ–साहित्य में उलटबांसियों में अद्‌भुत रस अवलोकनीय है।[178]

नाथ–साहित्य में जहाँ आत्मा – परमात्मा के मिलन की दशा का वर्णन है, वहाँ शृंगार की झलक भी दृष्टिगोचर होती है।

एक में अनंत में एकै, एकै अनंतउपाया।

अंतरि एक सो परचा हुआ, तब अन्तर समाया (गोरखबानी पृ. 103)

इसके अतिरिक्त इनके साहित्य में हास्य, करुण इत्यादि रसों के रंग भी बिखरे हैं।

5.2.2 अलंकार-निरूपण – नाथों ने सहज स्वाभाविक रूप से अलंकार निरूपण किया है। कही भी इस हेतु अनुचित प्रयास दिखाई नहीं देता है। इनके साहित्य

---

175. नाथ और संत साहित्य– डॉ. उपाध्याय पृ. 768
176. हिन्दी साहित्य का उद्‌भव काल– डॉ. वासुदेव सिंह, पृ 115–116
177. गोरख बानी– पृ. 154
178. गगन मण्डल में गाय बियाई, कागद दही जमाया
 छाछि छाणि पिंडता पीवी, सिघां माषण षाया– सबदी– शार्दूल सिंह कविया, पृ 52

में उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, विभावना आदि अलंकारों का सुन्दर निरूपण हुआ है। कतिपय उदाहरण अवलोकनीय हैं–

2.2.1 उपमा – *ऊँ लोहा पीर। तांबा तकबीर*

रूपा महमंद सोना षुदाई।[179]

उपर्युक्त पद में गुरू को लोहे, उसकी युक्ति को तांबे, रसूल मुहम्मद को चांदी, व खुदा को सोने की उपमा दी गई है।

2.2.2 रूपक – मन मस्त हस्ती मिलाइ अवधू तबलूटिले अषै भण्डार।[180]

2.2.3 अतिशयोक्ति – नाथ बोले अमृत वाणी बरिषेगी कंबली भीगेगा पाणी।[181]

5.2.3 छन्द-विधान – भावाभिव्यक्ति एवं गायन के लय–ताल में जब जो छन्द बंध गया, उसे नाथों ने सहजभाव से स्वीकार किया है। नाथों के छन्द–विधान का विशुद्ध विवेचन आगामी अध्याय में किया है। अतः यहाँ बानगी स्वरूप कतिपय छन्द उदाहरण सहित वर्णित किए जा रहे हैं –

2.3.1 महानुभाव – 12 मा.

आओ देवी बैसो। द्वादिस अंगुल पैसो।[182]

2.3.2 सुलक्षण (7–7 पर यति 14 मा.+ अंत में 51)

कै मन रहे आसा पास, कै मन रहै परम उदास)[183]

5.2.4 प्रतीक-विधान – नाथ कवियों ने अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हेतु प्रतीकों का आश्रय लिया। उन्होंने सांकेतिक, पारिभाषिक, विरोधमूलक, संख्यामूलक, रूपात्मक, भावात्मक प्रतीकों का अपने काव्य में बहुतायत रूप में प्रयोग किया है।

5.2.5 भाषा – नाथों की भाषा का संबंध व्याकरण अथवा शास्त्रीय परम्परा से नहीं रहा है, बल्कि 'रमतेराम सकल जगमाही' का सिद्धांत रखने वाले नाथों की भाषा लोक–भाषा के अधिक निकट है। ययावर प्रकृति के कारण उनकी भाषा में प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी, राजस्थानी, पंजाबी, ब्रज इत्यादि का योग भी हुआ है।

---

179. सबदी– शार्दूल सिंह कविया, पृ 31 / 118
180. उपरिवत्– पृ 21
181. गोरखबानी–पृ 141
182. गोरखबानी– सबदी–शार्दूल सिंह – पृ.41 / 155
183. उपरिवत्– पृ 46 / 172

इनकी भाषा को पुरानी हिन्दी,[184] सन्धा भाषा[185] की संज्ञा दी जाती है।

इनकी भाषा में लोक–प्रचलित आंचलिक शब्दावली के दर्शन होते हैं। साथ ही मुहावरों एवं कहावतों का सहारा लेकर इन्होंने अपनी भाषा को समृद्ध बनाया है। इनकी भाषा में विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग हुआ है जिसका एक प्रमुख कारण अपनी साधना–प्रणाली को गोपनीय बनाये रखना ही है। नाथों की भाषा–सौष्ठव पर आगामी अध्याय में विस्तार से विवेचन किया है, अतः यहाँ संक्षिप्त परिचय पर्याप्त है।

सम्यक् निरूपण से स्पष्ट होता है कि उपयुक्त तत्त्वों के योग ने नाथ–साहित्य को सजीव, सक्रिय एवं सार्थकता प्रदान की है। इनका काव्य मात्र उनके दार्शनिक सिद्धांतों, उपदेशों, नैतिक शिक्षाओं को ही उजागर नहीं करता, वरन् इसमें कलात्मकता के नवरंगों की छटा भी दिखाई देती है। जिसे परवर्ती साहित्य ने विरासत रूप में ग्रहण किया है।

------

184. हिन्दी सहित्य के विकास की रूपरेखा– राम अवध बिहारी, पृ 9–10
185. सिद्धों की संधा भाषा– डॉ. मंगल बिहारी शरण सिन्हा, पृ 337

तृतीय-अध्याय
सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी सन्तों का दार्शनिक-चिन्तन

3.0 भारतीय दर्शन का जीवन से निकटतम जुड़ाव है। भारतीय दर्शन 'सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' की विचारधारा पर आधारित है। यह परमार्थ पर आधारित एवं आन्तरिक अनुभूतियों से आबद्ध दर्शन है। मानव जीवन को सुव्यवस्थित बनाना तथा जीवन की समस्याओं, दुःखों का निराकरण करना भारतीय दर्शन का पावन लक्ष्य रहा है। भारतीय दर्शन में धर्म एवं नैतिकता को सर्वाधिक प्रश्रय मिला है।

इस मांगलिक दर्शन का व्यापक प्रभाव सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी–संतों के चिन्तन पर भी परिलक्षित हुआ है।

3.1 ब्रह्म का स्वरूप

3.1.1 सिद्ध-नाथों में ब्रह्म का स्वरूप – बौद्ध विचारधारा से प्रभावित सिद्ध–साधकों के ब्रह्म–विषयक दृष्टिकोण को महायान, मंत्रयान, वज्रयान, सहजयान सभी ने प्रभावित किया।

सिद्धों का ब्रह्म शून्य स्वरूप है जो परम विशुद्ध, परम महासत्य, परम विज्ञान, परमोत्कर्ष, आदि–अनादि, मध्य–अमध्य, अन्त–अनन्त, अस्ति–नास्ति, पाप–पुण्य, भव–निर्वाण, जरा–मरण से परे है।[1]

सिद्ध परमपद स्वरूप ब्रह्म को शून्य निरंजन[2] अभिधान प्रदान करते हैं। इसी ब्रह्म को एक स्थान पर अक्षर–वर्ण विवर्जित कहा गया है।[3]

सिद्धों के स्वर में स्वर मिलाते हुए नाथ साधकों ने नाथ निरंजन आरती गाऊँ[4] द्वारा ब्रह्म को निरंजन कहा है। यह निरंजन न सूक्ष्म है न स्थूल, न इसके डाल है न मूल यह तो सर्व व्यापक है।[5] नाथों ने ब्रह्म के लिए सहज–शून्य शब्दों को भी अपनाया है –

---

1. सहज सिद्ध – रणवीर साहा पृ. 104.
2. 'शून्य निरंजनपरम पउ' – दोहा कोश – राहुल जी दो. सं. 138.
3. अक्खर – वण्ण–विबज्जिअ–उपरिवत् दोहा – 141.
4. गोरखबान – बड़थ्वाल पृ. 157.
5. सोईनिरंजन डाल न मूल, सब व्यापीक सुषमन अस्थूल – उपरिवत् – पृ. 39.

दुविध्यामेटि सहज में रहे ऐसा विचार मछिन्द्र कहै।

सहज सुनि मन तन थिर रहे ऐसा विचार मछिन्द्र कहै।[8]

सहज सुभाइ मिले अविनासी' कहकर वे ब्रह्म को सहज स्वरूप सिद्ध करते हैं। नाथ परमपद हेतु 'शब्द' का प्रयोग भी करते हैं। यथा –

सबदहिं ताला सबदहि कूंची सबदैहि सबद जगाया।

सबदहि सबद सूं परचा हूआ सबदहि सबद समाया।[8]

वेद कतेब न खाणी बाणीं, सब ढकी तलि आंणी[9], द्वारा नाथ ब्रह्म की अनिर्वचनीयता की ओर संकेत करते हैं। नाथों ने निषेधात्मक शैली द्वारा भी ब्रह्म निरूपण को सुन्दर स्वरूप प्रदान किया है –

कहा बूझै अवधू राई गगन न धरनी, चंद न सूर दिवस नहीं रैनी,

ऊँकार निराकार सूछिम न अस्थूलं, पेड़ न पत्र फलै नहीं फूलं।[10]

सब देवां सिरि उदबुदि सूरति[11] कहकर ब्रह्म को सब देवो से श्रेष्ठ तथा प्रज्ञा–प्रतिमा की संज्ञा प्रदान की है। ब्रह्म को तत्त्व रूप में निज तत्त्व[12] कहा है।

नाथ ब्रह्म को अद्वैत मानते हैं। 'गगनिसिषर महि सबद प्रकास्या, तहं बूझै अलष बिनांणी'[13] द्वारा नाथ कहते हैं कि यह शब्द रूपी ब्रह्म अनहदनाद स्वरूप अभ्यन्तर में सुना जा सकता है तथा ब्रह्मवेत्ता ही इसे जान सकते हैं।

3.1.2 हिन्दी-संतों में ब्रह्म का स्वरूप – सिद्ध–नाथों के ब्रह्म–विषयक विचारों ने हिन्दी–संतों को प्रभावित किया। हिन्दी–संतों ने सिद्ध–नाथों की ब्रह्म विषयक विचारों की परिपाटी का अनुसरण करते हुए उसे विविध अभिधान, विविध स्वरूपों में अभिव्यक्त किया है। जिसमें उनकी मौलिक विचारधारा का भी रंग देखा जा सकता है। यथा –

3.1.2.1 निर्गुण स्वरूप – हिन्दी–संतों ने विवेक पर आधारित निर्गुणोपासना को अपनाया। उन्होंने उसे 'पुहुप वास ते पातरा' कहा। कबीर ने ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि निर्गुण ब्रह्म अलख निरंजन है, जिसे कोई देख नहीं सकता। वह न शून्य है न अशून्य, उसकी कोई रूप–रेखा भी नहीं। यथा –

अलख निरंजन लखे न कोई, निरभै निराकार है सोई।

सुनि अस्थूल रूप नहीं रेखा, द्रिष्टि अद्रिष्टि छिप्यों नहीं पेखा।[14]

---

6. हिन्दी काव्यधारा – राहुल जी, पृ. 169
7. गोरखबानी – सबदी पृ. 116, पद – 23.
8. गोरखबानी – सबदी – शार्दूल सिंह, पृ. 7 / 21.
9. उपरिवत् – पृ. 2
10. गोरखबानी – पद 35
11. उपरिवत् – पृ. 158
12. निज तत नांव अमूरति मूरति – उपरिवत्
13. गोरखबानी – सबदी – शार्दूल सिंह पृ. 3
14. क. ग्र. रमैणी – पृ. 230

कबीर के स्वर में स्वर मिलाते हुए संत–प्रवर दादू ब्रह्म को निर्गुण निर्विकार मान, उसे नाम, गुण, रूप, काल, तौल, माप से परे और इन्द्रियातीत ठहराते हैं –

जे कुछ कहिये सोच विचारा, ज्ञान अगोचर अगम अपारा,
साहर बूंद कैसे कर तोले, आप अबोल कहा कह बोले।[15]

गुरू नानक ने सब पुरुष (ब्रह्म) को काल कर्म रहित, अजोनी तथा सम्भउ कहा है, वह रंग, रूप, वर्ण रहित है।[16]

संत रैदास ब्रह्म को अगम, अगोचर, अक्षर, निरंजन, आनन्दस्वरूप, ज्ञान–विवर्जित, अविनाशी, नामातीत, निर्विकार कहते हैं।[17]

3.1.2.2 अनिर्वचनीय स्वरूप – हिन्दी संतों ने 'अजरा अमर कथै सब कोई अलख न कथणां जाई'[18] द्वारा ब्रह्म की अनिर्वचनीयता को प्रकट किया है। नाथों की परिपाटी का अनुसरण करते हुए ब्रह्म के अनिर्वचनीय स्वरूप को निषेधात्मक शैली के माध्यम से निरूपित करते हुए कबीर कहते हैं –

तेरे रूप नाहीं रेख नाही, मुद्रा नाही माया।
समद नाहीं सिषर नाहीं, धरती नाही गगना।
रूप न जुग न स्याम अथरबन वेद नहीं व्याकरनां।
तेरी गति तूही जानै कबीरा तो सरनां। (क. ग्र. पृ. 162)

ब्रह्म की अनिर्वचनीया के विषय में दादू कहते हैं –

ना कहिं दिट्ठा ना सुण्या ना कोई आखणहार।
ना कोई उत्थो थी फिरया ना उर वार न पार।[19]

परम तत्त्व अपने जैसा आप ही है। उसका वर्णन करना असम्भव है[20] यह कहकर रविदास (रैदास) ने ब्रह्म को अनिर्वचनीय कहा है।

3.1.2.3 अद्वैत ब्रह्म – हिन्दी–संत 'अरे भाई दोइ कहां सो मोहि बतावौ'[21] कहकर अद्वैत ब्रह्म का निरूपण कर द्वैत को कोरा भ्रम सिद्ध करते हैं। अद्वैत ब्रह्म के स्वरूप का सुंदर निरूपण दादू दयाल ने भी किया है। यथा–

---

15. श्री दादू वाणी– ना.दास जी पृ. 601, पद 243
16. संतकाव्य का दार्शनिक विश्लेषण – मनमोहन सहगल पृ. 98
17. अगमअगोचर अक्षर अतरथ, निर्गुण अति आनन्दा
सदा अतीतज्ञान विवर्जित निर्विकार अविनासी –
संत रैदास सं. योगेन्द्रसिंह पृ. 187 / 83)
18. क. ग्र. – पृ. 141
19. श्री दादू वाणी – नारायण दास जी पृ. 170 हैरान का अंग।
20. कह रविदास अकथ कथा, बहु काइ करीजै।
जैसा तू तैसा तुही, किआ उपमादीजै। संत रविदास विचारक और कवि, पृ0 103 से
21. क. ग्र. – श्याम सुन्दर दास पृ. 106 / 56

अविकल अलह येक तूं, गनी गुसाईं येक।
अजब अनुपम आप है, दादू नाँव अनेक।[22]

ब्रह्म के अद्वैत स्वरूप का समर्थन करते हुए संत रैदास ने कहा है–

माधो भरम कैसेहु न बिलाई।
तातै द्वैत दरसै आई।।
कनक–कुण्डल सूत–पट जुदा, रजु भुअंग भ्रम जैसा।
जल–तरंग पाहन–प्रतिमा ज्यों ब्रह्म जीव द्वति ऐसा।।
विमल एक रस उपजै न विनसे, उदय अस्त दोउ नाहीं।
विगता विगत घटै नहिं कबहूँ, बसत बसै सबमाहीं।।[23]

3.1.2.4 निर्गुण – सगुणातीत ब्रह्म – संतों ने ब्रह्म को निर्गुण–सगुण द्वंद्वों से परे माना है। इसी का अनुमोदन करते हुए कबीर कहते हैं –

गुण में निर्गुण, निरगुण में गुण, बाट छांड़ि क्यू बहिये।[24]

संत–प्रवर दादू दयाल ब्रह्म को निर्गुण–सगुण की सीमाओं से परे मानते हुए कहते हैं –

दादू राम अगाध है, अविगत लखै न कोइ।
निर्गुण सगुण का कहै नाम विलम्ब न होइ।[25]

सिद्ध गोष्टी में नानक ने ब्रह्म के उभय स्वरूप को बताया है–

अविगतो निरमाइलु उपजे निरगुण ते सरगुण थीआ। (रामकली सिद्ध गोष्टी पउडी 24)

3.1.2.5 शब्द, शून्य, निरंजन स्वरूप– सिद्ध–नाथों का अनुगमन करते हुए संतों ने ब्रह्म को शब्द, शून्य, सहज, निरंजन स्वरूप में निरूपित किया है।

नांव निरिंजन जाकौ रे[26] कहकर कबीर ने ब्रह्म को निरंजन कहा है। शब्द ऐसा ध्यान धरौ नर नहीं सबद अनाहद च्यंतनकरी।[27] में ब्रह्म को शब्द रूप कहा है।

सम्यक् विवेचन से स्पष्ट होता है कि सिद्ध–नाथों ने ब्रह्म दर्शन से हिन्दी–संतों ने प्रभाव ग्रहण किया और उसे अपने युग परिवेश के अनुरूप ढालते हुए उसे अपनी मौलिक प्रतिभा के रंग से और अधिक चटक बना दिया।

3.2 जगत् का स्वरूप

3.2.1 सिद्ध-नाथ एवं जगत् का स्वरूप – सिद्ध जगत् को चित्त का प्रक्षेपण, अनस्थिर, प्रवाहमय, अनुत्पन्न, प्रतिभासित स्वरूप मानते हैं। माया एवं अज्ञान के कारण

---

22. दादूदयाल ग्रंथावली – पृ. 406
23. व्यास, बुद्ध और हिन्दी संत – डॉ. राधेश्याम जाँगिड़ पृ. 78 से लिया गया
24. क. ग्र. – पृ. 36 / 17
25. श्री दादू वाणी– पृ. 36 / 17
26. क. ग्र. – पद – 48
27. उपरिवत् – पृ. 198

जगत् विविध रूपों में उपस्थित है। वास्तविक रूप में जगत् मिथ्या है। सिद्ध भुसुकपा जगत् को भ्रम प्रतिभासित मानते हैं। वे कहते हैं कि रस्सी को सर्प मान लेने से व्यक्ति डर जाता है, किन्तु वह हमें डसती नहीं। ठीक वैसे ही अज्ञानी जन मिथ्या जगत् को सत्य मान भ्रांत जीवन जीते हैं। यह अनुभूति ठीक वैसी है जैसी मृग–मरीचिका, गर्धव–नगरी, दर्पण–प्रतिबिम्ब, बंध्या–पुत्र, बालूका–तेल, खरहें के सींग, आकाश का फल आदि। अतः जगत् का वास्तविक ज्ञान गुरू–चरणों में पाया जा सकता है। यथा –

आइए अनुअनाए जगरे भाँविए सो पडिहाइ।
राजसाप देखि जो चमकि साँचे किना वोड़ो खाइ।
अइस सभावेयदिजग बूझसि तूटइ वासना तोरा।
मरू मरीचे गंधर्वनगरी, दापन पडि विंषु इसा।
जइतो मूढ़ा अच्छसि भान्ती, पूच्छतु सदगुरू पाव। (चर्या पद– 41)

सिद्ध तिल्लोपा जगत् को स्कन्ध भूत आयतन और इन्द्रियों द्वारा निर्मित मानते हैं।[28] सिद्ध सरहपाद जग में सुख–सार[29] को मानते हैं। चूँकि जगत् चित्त की भ्रांति है अतः वे इससे मुक्ति का संदेश देते हैं। सिद्ध पंच महाभूतों को सृष्टि का बीज मानते हैं।[30] वे जगत् को नश्वर, क्षणिक एवं अस्थिर बता उसे प्रतिभासित व प्रवाहमान कहते हैं।

नाथ जगत् को शिव स्वरूप मानते हैं। अतः यहाँ जड़–चेतन सभी ब्रह्ममय है; किन्तु माया के कारण व्यक्ति जड़ जगत् को वास्तविक सत्य मान इसी के वश में रहता है। विवेक–सिंधु में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सर्वेश्वर का स्थूल शरीर तथा सृष्टि रचना को उसकी जागृतावस्था बताया है।[31] जालन्धर नाथ ने सकल जगत् को कुबक का खेत कहा है। जहाँ जैसी करनी वैसी भरनी का सिद्धांत लागू होगा।[32] नाथ मानते हैं कि जगत् ब्रह्म का स्वरूप है; किन्तु ये जगत् के क्षणभंगुर मिथ्या स्वरूप से सावधान रहने का आह्वान करते हैं।

3.2.2 हिन्दी-संत एवं जगत् का स्वरूप – संतों का जगत् विषयक दृष्टिकोण सिद्ध–नाथों के विचारों से प्रभावित हुआ है।

नाथों ने जगत् को ब्रह्म से अभिन्न माना इसी की पुष्टि करते हुए कबीर ने पानी एवं बर्फ के रूपक के माध्यम से जगत् को ब्रह्म से उत्पन्न हो, उसी में लीन होने की बात की है यथा –

---

28. सिद्ध साहित्य – धर्मवीर भारती, पृ. 160
29. दोहा कोश – राहुल जी पृ. 25
30. सिद्ध साहित्य – पृ. 161
31. विवेक सिंधु – 4.62
32. यहु ससार कुबक का खेत, जब लग जीवे तब लग चेत
    आष्यां देषे काना सुणें, जैसा बोवे तैसा लुणे। – नाथ–सम्प्रदाय और साहित्य पृ. 167

पाणी ही ते हिम भया, हिम है गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाइ।[33]

'एक अण्ड औंकार से सब जग भया पसार' कहकर संत–प्रवर दादू दयाल जगत् को ब्रह्म स्वरूप मानते हैं। जगत् के विकास क्रम को समझाते हुए दादू दयाल ने कहा है –

पहली कीया आप तै, उत्पत्ति ओंकार।
ओंकार तै ऊपजे, पंच, तत्व आकार।।
पंच तत्त्व तै घट भया, बहु विधि सब विस्तार।
दादू घट तै ऊपजे, मै तै वरण विकार।।
एक शब्द सब कुछ किया, ऐसा समर्थ सोई।
आगे पीछे तो करे, जे बलहीना होइ।[34]

अर्थात् ब्रह्म से ओंकार, ओंकार से पंच तत्त्व (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा) की उत्पत्ति हुई। इन पंच–तत्त्वों से सूक्ष्म शरीर एवं नाना प्रकार वाले इस विविध रूपमय जगत् का विस्तार हुआ। मन में अहम और पर के भेद विकार उत्पन्न हुए। इसी प्रकार ब्रह्म ने एक शब्द से ही सकल सृष्टि को बनाया। संत गुरू नानक भी निर्गुण शून्य को सृष्टि निर्माता घोषित करते हैं। यथा – सुन कला अपरंपरिधारी (मारू सोलह 17)

संत कबीर जड़ जगत् को मायात्मक भ्रांति मानते हैं। वे स्पष्ट करते है कि जड़ जगत् असत्य है, किन्तु माया जनित अज्ञान के वशीभूत हो मानव इसे सत्य मान आजीवन इसके बंधनों में जकड़ा रहता है। माया के कारण ही जीव रस्सी में सर्प की कल्पना करता हुआ भ्रमित होता है। यथा –

ज्यू रजनी रज देखतअंधियारी
उसे भुवगम बिण उजियारी।[35]

संत–प्रवर दादू दयाल भी कहते हैं कि अंधेरे में जिस प्रकार रस्सी से सर्प का भ्रम होता है, वैसे ही यह जगत् माया जनित भ्रम है जिसमें मनुष्य बंधा रहता है।

निज अंधियारी कुछु न सूझै, संसै सरप दिखावा।
जैस अंध जगत् नहि जाने, जीव जेवड़ी खावा।[36]

सिद्धों का अनुसरण कर संत दादू जगत् को मृग–मरीचिका के समान नितांत भ्रामक कहते हैं –

मृग जल देखि तहाँ मन धावै, दिन–दिन झूठी आसा।
जहँ जहँ तहाँ जल नाहीं, निहचै मरै पियासा।[37]

33. क.ग्र. – पृ. 48
34. श्री दादू वाणी – ना. दा. पृ. 368 पद 8,9,10
35. क. ग्र. – पृ: 236
36. दादू वाणी – मंगलदास – माया को अंग, पद 305
37. उपरिवत् – पृ. 612

संतों ने एक स्वर में इस संसार को नश्वर, क्षण–भंगुर, अस्थिर कहते हुए विविध उदाहरण देकर जगत् के मिथ्या स्वरूप से अवगत कराया है।

संत धूवां केरा धौलहर[38] सेमल फूल[39] सुपिनं जैसा[40] बिना जड़ पत्ते, फल फूलों का वृक्ष[41] धूवरिमेह[42] कुसुम्भा का फूल[43] इत्यादि की उपमा देकर जगत् की नश्वरता को समझाने का प्रयास करते हैं।

संतों ने स्पष्ट कर दिया है कि यह जगत् ब्रह्म की कृति है, किन्तु अज्ञान–वश मनुष्य इसके मिथ्या स्वरूप को सत्य मान बैठता है। अतः संत सामान्य जन को सावचेत करते हैं।

3.3 जीव/आत्मा का स्वरूप

3.3.0 दर्शन में आत्मा को चरम सत्य माना गया है। वस्तुतः जीव एवं आत्मा एक तत्त्व है, किन्तु इन्द्रियों के वशीभूत हो आत्मा स्वयं को भुला देती है, तब वह जीव कहलाती है।

हमारे आलोच्य सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी–संतों ने विविध रूपेण आत्मा/जीव के स्वरूप का निरूपण किया। हम इसी पर विचार करेंगे।

3.3.1 सिद्ध-नाथ एवं जीव/आत्मा का स्वरूप – सिद्ध–साधक शरीर में परम सत्य की व्याप्ति के सिद्धांत के पोषक थे। अतः वे जीव/आत्मा का परम सत्ता से अभेद मानते हैं। इनकी साधना में चित्त की प्रधानता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। संसार की सापेक्षता में वे चित्त (आत्मा/जीव) को दो रूपों में निरूपित करते हैं – बद्ध–चित्त एवं मुक्तचित्त।[44]

सिद्ध सरहपाद मुक्त एवं बद्ध–चित्त का निरूपण करते हुए कहते हैं–

बद्धों धावै दिसहि, मुक्तों निश्चल स्थाय,
ऐसइ करा पेखि सखि, विवरिय मोहिं प्रतिभाय। [45]

सिद्ध जीव को चिन्तामणि स्वरूप[46] सिद्ध करके उसी ब्रह्म का अंश मानते हैं। जो नाना कर्मों में आबद्ध होता है, किन्तु ज्ञान होने पर वह अपने वास्तविक स्वरूप से परिचय पाता है। तभी तो सिद्ध साधक अपने द्वारा अपने को पहचानने की बात करते हैं।

---

38. क. ग्र. – पृ. 220
39. उपरिवत्
40. उपरिवत् – पृ 171
41. कबीर ग्रंथावली, पृ. 130
42. उपरिवत् – 194
43. आदि गुरू ग्रंथ साहिब, गउड़ी बैरागणि – रविदास पृ. 346
44. सिद्ध साहित्य – धर्मवीर भारती, पृ. 135
45. दोहा कोश – राहुल जी, पृ. 7 दोहा – 26
46. दोहा कोश, राहुल जी, दोहा 23

सिद्धों के समान ही नाथ साधक भी आत्मा–परमात्मा में द्वैत–भाव के विरोधी हैं। गुरू गोरख नाथ जीव को सर्वोत्तम देव, गुरू, शिव स्वरूप में चित्रित करके उसे परम तत्त्व से अभेद रूप में निरूपित करते हैं।[47]

नाथों ने ब्रह्म (राजाराम) को आत्मा स्वरूप में मान करके उसका निवास सभी जीवों के सभी अंगों में बताया है।[48]

3.3.2 हिन्दी-संत एवं जीव/आत्मा का स्वरूप – निर्गुण हिन्दी संतों ने आत्मा के स्वरूप का विस्तार से निरूपण किया है।

3.3.2.1 ब्रह्म-जीव में अद्वैत भाव निरूपण – संत कबीर 'सांई के सब जीव' विचारधारा के पोषक रहे हैं। अतः वे हम तौ एक–एक करि जाना[49] कह करके ब्रह्म एवं जीव में एकता स्थापित करते हैं। इसी बात की पुष्टि हेतु अन्यत्र कबीर कहते हैं कि यह आत्मा मनुष्य, देवगण, यति, माता, पुत्र, योगी, अवधूत, ब्राह्मण, शेख आदि न होकर जाति भेद से परे निर्विकार ब्रह्म स्वरूप है। इसमें उपनिषदों की नकारात्मक शैली का प्रभाव भी दिखाई देता है –

ना इहु मानसु ना इहु देवा। ना इहु जती कहावै सेव।
ना इहु जोगी ना अवधूता। ना इहु माइ न काहू पूता।।
ना मन्दर मह कोई वसाई। ता का अंत न कोई पाई।
ना इहु गिरनी ना ओदासी। ना इहु राजा न भीख मँगासी।।
ना इहु पिंड न रकतू राती। ना इहु ब्रह्मण न इहु रवाती।
ना इहु तया कहावै सेख। ना इहु जीवै न मरता देख।। [50]

इस प्रकार कबीर ने आत्मा को ब्रह्म स्वरूप अजर–अमर कहा है।

'आतम महि रामु राम महि आतम'[51] द्वारा गुरू नानक आत्मा एवं परमामा की एकता की पुष्टि करके इसे अजर–अमर व शाश्वत सिद्ध करते हैं। धनासरी सबद – 4 द्वारा नानक 'आत्मा–परमात्मा एकौ करे' की घोषणा करके आत्मा–परमात्मा में अभेद भाव की पुष्टि करते हैं।

'जीव–ब्रह्म द्वै नाहीं' की स्पष्ट घोषणा करके संत–प्रवर दादू दयाल ब्रह्म आत्मा में एकत्त्व दर्शन[52] का भाव प्रेषित करते हैं।

---

47. आत्मा अन्तिम देव, ताही की न जाणे सेव
    आनदेव पूजि–पूजि हमही मरिये – गो. वा. – पृ. 94
48. एही राजा राम आछै सर्वे अंग बासा।
    एही पांचौ तत्त्व बाबू सहजि प्रकाश।। गो. वा. पृ. 100
49. क ग्र. – पृ. 55
50. कबीर ग्रंथावली, पृ. 301
51. भैरउ असरपदी – 1
52. घट–घट आतम राम – श्री दादू वाणी पद – 12

इसी मत की अभिव्यक्ति संत रैदास की वाणी में हुई है। वे आत्मा व ब्रह्म का सम्बन्ध ठीक वैसा बताते है जैसा सोने एवं उससे बने गहने तथा जल एवं जल की लहरों के मध्य होता है। यथा –

तोही मोही बोही तोही अन्तरू कैसा

कनक कटिल जल तरंग जैसा। [53]

3.3.2.2 ब्रह्म एवं जीव में भेद का कारण – हिन्दी के निर्गुण संतो ने स्पष्ट किया है कि वस्तुतः जीव ब्रह्म का अंश हैं, किन्तु मन, बुद्धि, माया के स्थूल पर्दों में आवरित होने के कारण वह अपनी यथार्थता को खो बैठता है।

माया के वशीभूत हो जीव जन्म जन्मान्तर के चक्रों में फँसा रहता है –

लख चौरासी जीउ जोनि महि भ्रमत नंदु बहु थाकौ रे। [54]

माया के बंधन में बँध करही जीव ब्रह्म को भुला जन्म जन्मान्तर के चक्र में फँस जाता है।

जीव–ब्रह्म के भेद को निरूपित करते हुए संत–प्रवर दादू दयाल कहते हैं कि कर्मो के वश में आने पर यह जीव ब्रह्म से विलग हो जाता है। यथा–

कर्मो के बस जीव है

कर्म रहित सो ब्रह्म। [55]

यह माया ही जीव को कर्म–बंधन में बाँधने वाली है, जिससे जीव काल के वश में हो जाता है तथा कर्मो के तंतुओं मे जकड़ा रहता है। यथा–

दादू कृत्रिम काल वश, बंध्या गुण माही।

उपजे विनशे देखता, यहु कर्त्ता नांहीं। [56]

नानक, कबीर, दादू की भाँति रविदास जी मानते हैं कि माया के कारण आत्मा स्वयं को अलग सत्ता समझने लगती है। आत्मा की अमरता को सिद्ध करते हुए है वे कहते हैं कि जीव से रहित शरीर केवल हड्डियों एवं मांस का ढेर है। यथा –

जल की भीति पवन का थंबा, रक्त बूंद का गारा।

हाड मास नाड़ी को पिंजरू पंखी बसै विचारा। [57]

हिन्दी निर्गुण संत आत्मा को परमात्मा स्वरूप में निरूपित करते हुए संसार को दिशा निर्देशित करते हैं कि जीव को माया–मोह के भ्रम से, कर्मो के बंधनों से मुक्त हो करके जीवन जीने की शिक्षा देते हैं।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि हिन्दी निर्गुण संतों ने अपने पूर्ववर्ती दर्शनों से प्रभाव ग्रहण किया; किन्तु लीक अपनी ही बनाई।

---

53. आदि गुरू ग्रंथ साहिब, रागु सिरी बाणी, रविदास जी पृ. 93
54. क.ग्र. – पृ. 322
55. दादू वाणी – मगलदास, पृ. 412
56. श्री दादू वाणी– ना. दा. पृ. 357
57. आदि गुरू ग्रंथ साहिब, रागु सोरठि वाणी रविदास की पृ. 659

3.4 माया-चिन्तन

3.4.0 माया के दो व्यापार है – यथार्थ सत्ता को छिपाना तथा मिथ्या का विक्षेप करना। विविधता रूपी जगत् यथार्थ सत्ता तथा हमारे मध्य पर्दे का कार्य करना।[58]

हम सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी–संतों के माया विषयक चिन्तन पर प्रकाश डालेंगे।

3.4.1 सिद्ध-नाथ एवं माया-चिन्तन – सिद्ध परमपद को मायामय स्वरूप बुद्धि एवं मन की पहुँच से परे बताते हुए कहते हैं –

बुद्धि विणासइ मण मरइ, तुट्टइ जहं अहिमाण,
सो माआमअ परम पउ, तहिं कि बज्जइ झाण। [59]

सिद्धों ने माया को ब्रह्म स्वरूप बताने के साथ ही उसे भ्रम–जाल फैलाने वाली कहा है। इसी माया में आबद्ध हो साधक अपने वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ बना रहता है, किन्तु जब वह मायाजाल को तोड़ देता है तो वह अनित्य भव–स्वभाव को पहचान निर्वाण के मार्ग की ओर बढ़ता है।[60]

सिद्धों ने माया के परित्याग की शिक्षा के साथ उसे हरिणी, अविद्या स्वरूप, द्वैतज्ञान वाहिका, अपरिशुद्धा, माया–जाल आदि रूपों में वर्णित किया है। समुद्र रूप में मायाके भ्रमित स्वरूप अवलोकनीय हैं –

मायामोह समुद्रा रे अन्त न बुझसि थाहा,
अगे नाव न भेला दीसअ भन्ति न पुच्छसि नाहा,
सुना पान्तर उह न दीसइ भान्ति न वाससि जान्ते। [61]

सिद्धों ने माया जनित भ्रम से निकले मार्ग गुरू द्वारा निर्दिष्ट ज्ञान को माना है। अतः गुरु का ज्ञान ही माया से छुटकारा दिलाने वाला है। इसी स्वर में स्वर मिलाते हुए नाथों ने भी माया को भ्रम जाल फैलाने वाला कहा है। वे माया–जाल काटने का उपदेश देते हैं।[62]

नाथों ने नारी को माया का स्वरूप मानते हुए उसके परित्याग की बात कही है। माया के लिए स्त्री रूपी प्रतीकों का प्रयोग इसी मत की पुष्टि करता है। वे माया को सर्पणी के समान त्रिभुवन को डसने वाली[63], निरन्तर फैलने वाली बेल[64], बिना दाँत के

---

58. भारतीय दर्शन – 2 – डॉ. राधाकृष्णन् पृ. 498
59. दोहा कोश – राहुल जी पृ. 15, दो. – 61
60. सि. फिट्टइ माह जाल जइ जाणसि – चर्यागीति कोश – पृ. 187
61. चर्यागीति कोश पृ 15
62. सब निरंतरि काटे माया, सो घरबारी कहिए निरजन की काया – सबदी पृ 13
63. मारौ–मारौ स्रपनीनिरमल जल पैठी
    त्रिभुवन डसती गोरष नाथ दीठी – गो. बा. पृ. 139–40
64. अवधू अहूठ परबत मंझार, बेलड़ी माड्यो विस्तार – उपरिवत्– पृ. 118

ही संसार को खानेवाली भग–राकसि[65] तथा बाघिनी[66] आदि रूपकों द्वारा अभिव्यक्त करके, उस पर नियंत्रण बनाये रखने की शिक्षा देते हैं।

'काया में माया बसै रे ज्यों चकमक में आग'[67] का आह्वान करते हुए नाथ काया में माया का निवास सिद्ध करके 'अभिअंतरि की त्यागै माया' द्वारा माया[68] के परित्याग का संदेश प्रेषित करते हैं।

3.4.2 हिन्दी-संत एवं माया-चिन्तन – सिद्ध–नाथों की परिपाटी का अनुसरण हिन्दी–संतों के माया–विषयक विचारों में देखा जा सकता है। जिसमें मौलिकता एवं नवीनता भी है।

3.4.2.1 ब्रह्म की शक्ति रूप में माया निरूपण – सिद्धों के समान कबीर माया को ब्रह्म की शक्ति मानते हैं तभी तो माया को रघुनाथ (ब्रह्म) की कहते हैं –

तू माया रघुनाथ की, खेलण चढ़ी अहेड़ै। [69]

'माया का ठाकुर किया माया की महिमाय'[70] का आह्वान करते हुए संत–प्रवर दादू दयाल माया को ब्रह्मोद्भूत मानते हैं। इस मत द्वारा 'मायाविधान् मायिनं महेश्वरम्' उपनिषद् के प्रति सहमति के स्वर मुखरित हुए हैं।

संत रविदास ने भी कहा है कि परमात्मा की माया अत्यंत व्यापक और प्रबल है।[71]

3.4.2.2 माया का सर्वव्यापी-मिथ्या स्वरूप – निर्गुण संतों ने माया के सर्वव्यापी स्वरूप की खुल कर चर्चा की है। सभी को अपने में आबद्ध करने वाली माया के सर्वव्यापी स्वरूप को उजागर करते हुए कबीर ने कहा है कि यह माया चाहने पर भी छोड़ी नहीं जाती भला कैसे छूटे? यह तो जल, थल, आकाश, आदर, मान–सम्मान, जप–तप, माता–पिता, स्त्री–पुरूष, पुत्र–पुत्री आदि सब में व्याप्त है। यथा –

माया तजूं तजी नहीं जाइ।
फिर फिर माया मोहि लपटाइ।
माया आदर माया मानं, माया नहीं तहां ब्रह्म गियान।
माया रस माया कर जान, माया कारनि तजै परान।
माया जग तप माया जोग, माया बाँधे सबही लोग।
माया जल थलि माया आकाश, माया व्यापि रही चहुँ पास।
माया माता माया पिता, अति माया अस्तरी सुता।

---

65. भग राकसि लो, भग राकसि लो बिण दंता जग षाया लो – उपरिवत् – 143–144
66. दिन–दिन बाघिनी सीमा लागी, रात्री सरीरैं सोषे – उपरिवत्
67. भजन भाव–नाथ कुज आश्रम, संस्करण – 2000
68. सबदी –शार्दूलसिंह कविया – पृ 13/45
69. क. ग्र. – पृ. 151
70. दादू दयाल की वाणी – भाग – 1 पृ 129
71. संत रविदास विचारक और कवि – डॉ. पदम गुरचरन सिंह, पृ. 123

माया मारि करै व्यवहार कहै कबीर मेरे राम अधार।[72]

'स्वप्ने सब कुछ देखिये,जागे तो कुछ नाहीं, ऐसा यहु संसार है, समझ देख मन मांहिं'[73] द्वारा निर्गुण संत दादू माया के स्वरूप को उजागर करते हुए कहते हैं कि यह संसार स्वप्न सदृश हैं और इस मिथ्या का कारण माया है।

संत रैदास भी माया को भ्रम कारण सिद्ध करते हुए कहते हैं कि इस माया का प्रभाव देवों से साधारण जीवों तक व्याप्त है। यह सामान्य जीव की बुद्धि को भ्रमित कर उसे भ्रष्ट बना देती है –

कही अत आन अचरी अत आन कछु समझ न परै अपर माइआ।
कहि रविदास उदास दास मति परहरि कोप करहु जीअ दइआ।[74]

3.4.2.3 रूपकों द्वारा माया का स्वरूप निरूपण – निर्गुण संतों ने माया को संकेतों, प्रतीकों तथा रूपकों द्वारा भी अपने काव्य में निरूपित किया है।

संत कबीर माया को ऐसी विचित्र बेल की उपमा देते हुए कहते हैं कि जो सत्, रज, तम गुणों से युक्त है। यदि इसे काटा जाए तो यह फैलती है और सींचा जाएं तो कुम्हलाती है।[75]

कबीर उसे पापणी–दुराचारिणी[76] विश्वासघातिनी[77] सबको मोहित करने वाली जादूगरनी[78] आदि रूपकों द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। 'एक कनक एक कांमनी जग मैं दोई फंदा' कहकर कबीर माया की लोभ एवं काम रूप में घोर निन्दा करते हैं।

एक अन्य स्थान पर वे माया को दुराचारिणी स्त्री[79] रूप में चित्रित कर उसके मिथ्या प्रेम से सावचेत रहने का संदेश देते हैं।

गुरू नानक माया को मन रूपी हाथी को भटकाने वाले घने जंगल के रूप में अभिव्यक्त करते हैं। यथा –

मन मैगलु साकतु देवाना।
वन खण्डि माइ आमोहि हैराना।
इत उत जाहि काल के चापे।
(रागआसा असर पदीआ, घर –2)

---

72. क. ग्र. – पृ. 114–115
73. श्री दादू वाणी – पृ. 230
74. आदि गुरू ग्रंथ साहिब रागु गूजरीबाणी रविदास की, पृ. 658
75. जे काटातो डहडही सीचों का कुमिलाइ
    इस गुणवंती बेल का कुछ गुणँ कहाा न जाइ। कबीर साखी सार – पृ. 210
76. कबीर साखीसार, माया को अंग, पृ. 89/2
77. उपरिवत् – पृ. 90/5
78. उपरिवत् – पृ. 91/8
79. उपरिवत् – पृ. 92/14

इसके साथ ही नानक ने इसे सर्पिणी के रूप में जीव को जकड़ने वाली कहा है। यथा –

इहू सरपनि के वस जीउड़ा [80]

संत–प्रवर दादू दयाल माया को, 'माया मन्दिर मीच का'[81] (मृत्यु का घर), काल कनक अरू कामिनी[82] यहुसबमायामृग जल, झूठा झिलमिल होइ[83] (मृग मरीचिका), स्वप्न बाजी[84] (स्वप्न और बाजीगर की इन्द्रजाल बाजी) सांपनि एक सब जीव को, आगे पीछे खाइ[85] आदि रूपकों द्वारा अपनी वाणी के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

3.4.2.4 माया-मुक्ति के उपाय – हिन्दी–निर्गुण संतो ने माया का विविध स्वरूपों में निरूपण करने के साथ ही इससे मुक्ति का मार्ग भी जन सामान्य के सम्मुख आलोकित किया है।

कहै कबीर ताके भ्रम छूटै, जे रहे राम ल्यौ लाई'[86] का संदेश प्रेषित कर संत कबीर राम नाम में लौ लगाने की शिक्षा देते हैं। 'हरि हृदय एक ग्यान उपाया, ताथै छूटिगई सबमाया'[87] कहकर के माया निवारण का एक उपाय ब्रह्म ज्ञान को बताते हैं।

गुरू नानक देव फरमाते हैं कि ईश्वर का नाम ही माया से रहित है। वह निरंजन स्वरूप है अतः मन को ईश्वर उपासना में लगाने पर ही माया बंधन छूट सकते हैं। इसी बात को वे अपनी वाणी में इस प्रकार कहते हैं –

पिंजरि पंखी बंधिया कोइ। छेरीं भरमै मुकति न होइ।
तउ छूटै जा खसमु छुड़ाये। गुरमति मेले भगति दृड़ाए।
(7 बिलावल थिती म.1,पृ. 839)

अतः माया–पिंजर से प्रभु ही हमें बचा सकते हैं।

नानक माया से छुटकारे हेतु गुरू–कृपा एवं नामस्मरण का संदेश देते हैं।[88]

जिस घर दीपक राम का तिस घर तिमिर न होय[89] का उदघोष करके संतप्रवर दादू जीव के घट में दीपक रूपी परमात्मा का आलोक फैला अंधकार रूपी माया के निवारण का उपदेश देते हैं।

---

80. संत काव्य का दार्शनिक विश्लेषण – पृ. 166
81. श्री दादू वाणी – ना दा. पृ. 243
82. उपरिवत् – पृ. 242
83. उपरिवत् – पृ. 229
84. उपरिवत् – पृ. 230
85. श्री दादू वाणी ना.दा.– पृ. 242
86. क. ग्र. – पृ. 156 / पद 200
87. कबीर साखी सार – पृ. 189
88. संत काव्य का दार्शनिक विश्लेषण – पृ. 172–173
89. दादू दयाल की वाणी (प्रथम भाग) पृ. 127

संत रैदास झूठी माया से छुटकारे हेतु मनुष्य को प्रभु–भक्ति का परामर्श देते हैं। वे कहते हैं कि जब रसना राम नाम स्मरण करेगी तब भला माया कैसे साथ रह पाएगी? यथा –

कह रैदास राम राम जप रसना, माया कैसे संग रहै रे।[90]

माया विषयक सम्यक् निरूपण के उपरांत स्पष्ट होता है कि हिन्दी निर्गुण संतों ने सिद्ध–नाथों के माया सम्बंधी विचारों को आत्मसात् किया, किन्तु मौलिकता के प्रति सचेत रहते हुए, उन्होंने इसमें नवीन तथ्यों को समाहित कर माया विषयक चिंतन को नूतन आयाम प्रदान किये हैं।

3.5 हठयोग-साधना

भारत की अपनी एक प्रौढ़ आध्यात्मिक परम्परा रही है। भारतीय जीवन अध्यात्म एवं धार्मिकता के निर्मल–पावन जल में सदा से आकंठ निमग्न रहा है। इस परम्परा में योग–दर्शन का अपना विशिष्ट स्थान है।

3.5.1 योग का अर्थ/आशय – युज् धातु से भाव में घञ् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न हुआ है।[91]

उपनिषद् में कहा है – 'तां योगयति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणम्'।

अर्थात् योग वही है जहाँ इन्द्रियाँ स्थिर रूप में साधक के वश में हो जाती है।[92]

पतञ्जलि ने चित्त–वृत्तियों के निरोध को योग कहा है।[93]

मानव–जीवन का परमलक्ष्य दुखनिवृत्ति तथा परमसत्ता/तत्त्व की अनुभूति से आनन्द प्राप्त करना है। मानव के इस लक्ष्य प्राप्ति का साधन है योग। चित्त का निरोध सरल कार्य नहीं है; परन्तु अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोध[94] कह चित्त निरोध हेतु वैराग्य एवं अभ्यास की चर्चा हुई है।

3.5.2 योग के प्रकार – उपनिषदों में योग के विविध प्रकारों की चर्चा हुई है। यहाँ योग के विविध प्रकार बताये हैं; किन्तु व्यवहार भेद से उसके चार भेद माने गए हैं – मंत्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग।[95] अष्टांग योग का प्रतिपादन पातंजल–योग–सूत्र में किया गया है। पतंजलि का अष्टांग योग विशाल वृक्ष सदृश है, जिसकी मंत्रयोग, लययोग, हठयोग, राजयोग शाखाएँ हैं।

---

90. संत रैदास (अ. योगेन्द्रसिंह) पृ. 181
91. भक्ति कालीन हिन्दी साहित्य में योग भावना – डॉ. शिव शंकर शर्मा पृ. 16
92. कल्याण – योगतत्त्वांक – पृ. 42
93. योग चित्तवृत्तिनिरोव – वही पृ. 17
94. वही पृ. 42
95. योगोहिबहुधा ब्रह्मनमिद्यते व्यवहारतः मन्त्रयोगो लयश्चैत हठोअसौ राजोगकः। योग तत्त्वोपनिषद – पृ. 367

3.5.3 हठयोग साधना – हठयोग का अर्थ है 'हठेण बलात्कारेण योग सिद्ध' अर्थात् बलपूर्वक योग साधना में सिद्धि प्राप्त करना।[96]

'हकारः कथितसूर्य ठकारश्चन्दउच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगात् हठयोगो निगद्यते।

यहाँ 'ह' का अर्थ सूर्य तथा 'ठ' का अर्थ चन्द्रमा बताया गया है। अतः सूर्य एवं चन्द्रमा का योग ही हठयोग है।[97] शास्त्र ग्रंथों में भी प्राण–निरोध साधना के रूप में इस (हठयोग) का उल्लेख मिलता है।

योगस्वरोदय में हठयोग के दो भेद बताए हैं– प्रथम में आसन, प्राणायाम,[98] षट्कर्मो द्वारा नाड़ी शुद्धि, जिससे मन निश्चल रहता है एवं परमानंद अनुभूति होती है। दूसरे भेद में बताया है कि नासिका के अग्रभाग में दृष्टि निर्बद्ध कर, आकाश में कोटि सूर्य के प्रकाश का स्मरण करना चाहिए। श्वेत,रक्त, पीत, कृष्ण रंगों का ध्यान करना चाहिए ऐसा करने से साधक चिरायु होता है और हठात् ज्योतिर्मय हो शिवरूप हो जाता है।[99]

हठयोग की दो विधियाँ बताई गई हैं – गोरक्षनाथ से पूर्ववर्ती जिसका उपदेश मार्कण्डेय आदि ने दिया तथा दूसरी गोरक्षनाथ द्वारा उपदिष्ट। प्रथम में आठ अंगों (पतंजलि का अष्टांग योग) को समाहित किया गया है (यथा – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि)।[100] द्वितीय गोरक्ष उपदिष्ट षडांग योग (जिसमें अष्टांग योग के यम–नियम की गणना नहीं होती) शेष छः मान्य हैं। नाथ–सम्प्रदाय में षडांग योग का प्रचलन रहा है।

हठयोग का प्रमुख लक्ष्य कुण्डलिनी (शक्ति) को मूलाधार से जाग्रत कर शून्य गगन स्थित सहस्रदल कमल में स्थित ब्रह्म को मिला देना। सिद्ध–नाथ एवं मध्यकालीन प्रमुख संतों ने हठयोग साधना को प्रश्रय दिया है।

3.5.4 सिद्ध-नाथ एवं हठयोग-साधना

3.5.4.1 सिद्ध-हठयोग-साधना – सिद्धाचार्य महान् हठयोगियों के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं। सिद्ध–साहित्य में स्कन्धों को पुष्ट करने का बार–बार निर्देश दिया गया है, जिससे शरीर संगठित हो सके।

बौद्ध–तन्त्र में योग के सभी अंगस्वीकृत थे। जिनका निर्देश योग–शास्त्र में दिया गया था। उन्हें षडंग योग कहा गया। प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, अनुस्मृति तथा समाधि इसके छः अंग थे। हठयोग द्वारा पवन का निरोध कर मेरूदण्ड में स्थित चक्रों का वेधन करना योगाचार की स्वीकृत पद्धति थी, योगाचार में चक्रों की स्थिति हृदय में

96. नाथ–योग – अक्षय कुमार बनर्जी, पृ. 34
97. नाथ–सम्प्रदाय–हजारी प्रसाद द्विवेदी – पृ. 137
98. नाथ–सम्प्रदाय–हजारी प्रसाद द्विवेदी– पृ. 123
99. वही – पृ. 138
100. नाथसम्प्रदाय और साहित्य – जुनेजा पृ. 115–117

मानी गई है। यहाँ पाँच चक्र, पाँच धातुएँ अन्तस्थ पूर्वोक्त ध्यान पद्धति, द्वारा पाँच रीतियाँ थी, पाँच सुथ और ध्यान की पाँच पद्धतियाँ थीं। जब साधक ध्यान द्वारा पंच महाभूतों को अन्तस्थ कर लेता था तब वह मनोवस्थु से नाभि तक के प्रदेश पर चिन्तन करता था और ध्यान एकाग्र कर चक्रों का वेधन करता था।[101]

सिद्धों ने उपर्युक्त बातों में से कुछ को अपनाया, कुछ को संशोधित कर स्वीकृत किया। तथा कुछ विशेष अवस्थाओं का साधना के अन्तर्गत निर्देशन भी किया। सिद्धों ने योग द्वारा पंच महाभूतों को अन्तस्थ करना स्वीकृत किया। इसकी प्रणाली में संशोधन कर चित्त की एकाग्रता के स्थान पर प्रज्ञोपायात्मक घर्षण को महत्त्व दिया। प्रज्ञा का स्थान उन्होंने योगाचार की भाँति हृदय नहीं मान हिन्दू योग दर्शन के समान मस्तक के अन्दर माना। चक्रों की संख्या में परिवर्तन करते हुए इन्होंने 5 चक्रों के स्थान पर 4 चक्रों को मान्यता प्रदान की। यह चार की संख्या सिद्धों के हठयोग में विशिष्ट महत्त्व रखती थी।

सिद्धों में चार कायाएँ (तीन बुद्ध काया एवं सहज/महासुख काया), चार क्षण, चार मुद्राएँ (कर्म मुद्रा, धर्म मुद्रा, महामुद्रा एवं समय मुद्रा), चार आनन्द (आनन्द, परमानन्द, विरमानन्द और सहजानन्द), चार शून्य (शून्य, अतिशून्य, महाशून्य, सर्वशून्य) तथा चारचक्र (निर्माण चक्र, धर्म चक्र, सम्भोग चक्र एवं महासुख चक्र) माने गए। चारों चक्रों को मेरूदण्ड में स्थित माना। सिद्ध इस मेरूदण्ड को सुमेरू पर्वत अथवा मेरूगिरि द्वारा सम्बोधित करते हैं।

सिद्ध कृष्णपाद (कराहपा) मेरुदण्ड को मेरुगिरि के रूप में परिकल्पित करते हुए कहते हैं कि कंकाल रूपी श्रेष्ठ सुमेरू पर्वत है, जिसके शिखर पर शबरी नैरात्मा का वास है। उसके मूल में कन्दरा (मूलाधार चक्र) है, जिसमें विमल सलिल रूपी शुक्र विरोचन बोधिचित्त स्थित है। अन्दर ही अन्दर कालाग्नि है, जो साधना के बिना अधोमुखी हो शुक्र को सुखा डालती है और पवन निरोध के बाद ऊर्ध्वमुखी होकर प्रकाश करती है और शुक्र रूपी उपाय भी प्रज्ञा के समागम के लिए गतिमान होता है।[102]

मेरूदण्ड के उच्चतम शिखर पर महासुख चक्र है, जिसमें नैरात्मा सुन्दरी (शक्ति) का वास है। इसके मूल में नाभिचक्र है, जिसमें बोधि चित्त शुक्र रूप में निवास करता है। इसके बीच में दो चक्र और हैं हृदय और कंठ के समीप। सिद्ध साहित्य में इन चार चक्रों को चार कमल माना है। इन्हें आरोही क्रम में नाभिकमल, हत्त्कमल, सम्भोग कमल एवं उष्णीय कमल बताया है। इन चारों कमलों में क्रमशः निर्माण काया, धर्म काया, सम्भोग काया एवं महासुख काया का निवास होता है। इस प्रकार चारों चक्रों में बुद्ध की चार कायाओं का निवास होता है। और उन्हीं के आधार पर चार चक्रों को नाम दिया है।[103]

101. सिद्ध साहित्य – धर्मवीर भारती पृ. 211
102. सिद्ध साहित्य – पृ. 211
103. वही पृ. 212

उष्णीय कमल में महासुख काया है अतः उसे महासुख चक्र; कंठ के समीपवर्ती चक्र में सम्भोगकाया है अतः उसे सम्भोग चक्र, हृदय प्रवेश में स्थित चक्र में धर्म काया है अतः धर्म चक्र तथा नाभि में निर्माण काया अतः उसे निर्माण चक्र नाम दिया गया है। इन चक्रों को कमल के रूप में परिकल्पित किया गया है। निर्माणचक्र में 64, धर्म चक्र में 32, सम्भोग चक्र में 16 तथा महासुख चक्र मे 6 पाँखुरी मानी गई है। इन कमलों की पाँखुरियों पर बीजाक्षर अंकित है।[104]

इन चक्रों के बंधन का मार्ग नाड़ियों से हो कर है। इनकी संख्या 32 मानी है (हेवज्र में)। चर्यापदों में ललना, रसना और अवधूती को विशेष मान विभिन्न प्रतीकों द्वारा लक्षित किया गया है। ललना नाम नासापुट के समीप है चन्द्र स्वभाव की है और प्रज्ञा रूप है। रसना दक्षिण नासापुट के समीप है, सूर्य स्वभाव की है और उपाय रूप है। अवधूती इन दोनों के मध्य ग्राह्य–ग्राहक वर्जित रूप में स्थित है।[105]

सिद्धों में दाँई–बाँई ओर स्थित नाड़ियों पर नियंत्रण करते हुए मध्य नाडी के सहारे बोधि चित्त का उन्नयन किया जाता है। शरीर में पंच वायु है। उनमें से अपान वायु की निम्नगामिनी गति है और प्राणवायु ऊर्ध्वगामिनी है। ऐसी स्थिति में सिद्ध–साधक प्राण और अपान दोनों पर नियंत्रण करना अपेक्षित है और साथ ही इनको सुषुम्ना के मार्ग से प्रवाहित करना चाहिए। इस प्रकार मुख्यवायु के सुषुम्ना के भीतर प्रवाहित होने से बोधिचित्त भी ऊर्ध्वगामी हो उष्णीय कमल तक पहुँचता है और महासुख की स्थिति उत्पन्न होती है।[106] सिद्ध–साधना में श्रेष्ठ गुरू को आवश्यक माना गया है, क्योंकि वह गुप्त प्रयोगात्मक साधना धर्म एवं उसके अलौकिक गूढ़ प्रवृत्तियों का समय–समय पर निर्देश देता है। जिससे साधक के साधना पथ में आने वाली विघ्न बाधाएँ समाप्त होती हैं।

3.5.4.2 नाथ : हठयोग-साधना – नाथ योगियों की साधना प्रणाली प्राचीन योगदर्शन पर आधारित हठयोग प्रणाली है। हठयोग की प्राचीन परम्परा में अष्टांग योग के साथ मार्कण्डेय का नाम विशेष रूप में उल्लेखनीय रहा है, परन्तु मध्यकाल तक यह प्राचीन विद्यामृत प्राण अवस्था में थी। नाथ साधकों विशेषरूप से मत्स्येन्द्रनाथ एवं गुरुगोरखनाथ ने इसे पुनः जीवित किया तथा प्रचारित किया।

हठयोग में सांसारिक इच्छाओं को हठपूर्वक रोककर अन्तर्मुखी किया जाता है। नाथ–सम्प्रदाय में शिव से शक्ति का योग ही 'हठयोग' कहलाया। हठयोग–साधना में शरीर में स्थित शक्तिरूप कुण्डलिनी को उद्‌बुद्ध कर क्रमशः षट्‌चक्रों का भेदन करते हुए शीर्षस्थ सहस्रार चक्र में जहाँ शिव का स्थान है ले जाया जाता है। हठयोग में 'ह' का अर्थ सूर्य शरीर में इडा तथा 'ठ' का अर्थ चन्द्र शरीर में पिंगला नाड़ी माना। इनकी एकता अथवा समन्वय ही हठयोग की चरम उपलब्धि मानी जाती है।

---

104. सिद्ध साहित्य – पृ 112–113

105. सिद्ध साहित्य–पृ 112–113

106. भक्ति कालीन हिन्दी साहित्य मे योगसाधना – डॉ. शिव शंकर शर्मा पृ. 78.

नाथों के हठयोग के विवेचन से पूर्व अष्टांग योग के आठ तत्त्वों का परिचय प्राप्त करना अपेक्षित होगा।

1. यम 2. नियम 3. आसन 4. **प्राणायाम** 5. प्रत्याहार 6. धारणा 7. ध्यान 8. समाधि।

नाथ हठयोग का उद्देश्य देह शुद्धि है। हठयोग की साधना में सात प्रक्रियाएँ हैं – 1. शोधन, जो षटकर्मो द्वारा होती है, 2. दृढ़ता जो आसनों द्वारा होती है। 3. स्थिरता, जो मुद्राओं द्वारा होती है, 4. धैर्य, जो इन्द्रिय–संयम द्वारा होता है, 5. लघुता, जो प्राणायाम द्वारा होती है, 6. प्रत्यक्ष, जो ध्यान द्वारा होती है, 7. निर्लिप्तता, जो समाधि द्वारा सम्भव है यही अन्तिम लक्ष्य भी है।[107]

अतः हठयोग के अन्तर्गत षाडंग योग, देहशुद्धि, मुद्रा साधना को विशेषमहत्त्व दिया है।

नाथों की साधना हठयोग पर अवलम्बित है जिसका वास्तविक आधार प्राचीन भारतीय योग–दर्शन ही है। परन्तु नाथों ने हठयोग एवं योग के क्षेत्र में अनेक अभिनव सिद्धांतों का सूत्रपात किया है! नाथयोग बौद्ध–सिद्ध योग से प्रभावित रहा है, किन्तु गोरखनाथ ने इसमें से अश्लीलता एवं घिनौनेपन का पूर्ण निषेध किया। नाथों के सिद्धांत में नाद एवं बिन्दु दोनों तत्त्व सिद्धों की विरासत रूप में मान्य हुए। हठयोग साधना में भी इन्हें विशेष मान्यता प्रदान की गई।

नाथों का योग षडांग योग कहलाया, जिसमें यम–नियम की गणना न कर शेष (आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) योगांगों को स्वीकृत किया गया है। ऐसा नहीं कि नाथों ने यम–नियम को अपनी योग साधना से बहिष्कृत माना, बल्कि उन्होंने प्रारम्भिक योग साधना के रूप में 10 यम एवं 10 नियम की व्याख्या की जिनको पतंजलि ने 5 यम और 5 नियम भेदों द्वारा व्याख्यायित किया था। इस प्रकार यम एवं नियम जिनके क्रमशः 10–10 भेद नाथों ने बताए उनका क्रमिक अभ्यास योग साधना के लिए अनिवार्य माना गया। अतः नाथ योगियों के यम एवं नियम का परिचय प्राप्त करना अत्यावश्यक है।

यम – यम के दस भेद निम्न है–

अहिंसा, सत्यम्, अस्तेयम्, ब्रह्मचर्यम् क्षमा धृतिः।
दयार्जव् मिताहार शौक चैव यमो दश।।[108]

अर्थात् सत्य,अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, क्षमा, धैर्य, दया, जीवन में सरलता, मिताहार, शरीर एवं मन की पवित्रता को दस यम बताए।

नियम – नाथ योगियों ने नियम के भी दस भेद बताए –

107. सहज साधना – पृ. 61
108. नाथ योग – अक्षय कुमार बनर्जी – पृ. 28

तपः संतोष अस्तिक्यं दानमीश्वर पूजनम्।
सिद्धानत वाक्यश्रवणं ही प्रतिश्चअपोहुतम्।।
सिद्धान्त वाक्य श्रवणं ही प्रतिश्चअपोहुतम्।।
नियमा दशा संप्रोक्ता योग शास्त्र विशारदैः।।[109]

अर्थात् तप, संतोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वर पूजा, सिद्धांत वाक्य श्रवण, ही, मति, जप, होम को नियम के अन्तर्गत माना गया।

नाथो का षडांगयोग (हठयोग) :नाथयोगी हठयोग के अन्तर्गत षडांग योग के पक्षधर है। उन्होंने योग के छः अंग माने जो वस्तुतः अष्टांग योग के ही अंग है।

1. आसन – 'स्थिर सुखम् आसनम्' अर्थात् स्थिर एवं सुखपूर्वक बैठना ही आसन है।[110]

आसन शारीरिक अवयवों का नियमित एवं निर्धारित व्यायाम है। जिसके द्वारा मांसपेशियों तथा शारीरिक अवयवों को स्वेच्छा से नियंत्रित किया जा सकता है। जिनसे विभिन्न शारीरिक अवयवों की असंगत क्रियाओं से उत्पन्न अनेक रोगों, व्याधियों और कलुषों को दूर किया जा सकता है तथा शरीर को स्वस्थ, पुष्ट, सचेष्ट, बनाया जा सकता है। साथ ही इसे इस योग्य बना सकते हैं कि यह भीतर तथा बाहर कार्य करने वाले विरोधी तत्त्वों को धैर्य एवं शांति से सहन कर सके।[111] हठयोग ग्रंथों में 48000 आसनों का उल्लेख है। जिनमें से सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन एवं भद्रासन का विशेष महत्त्व है।

2. प्राणायाम– श्वास – प्रश्वास की गति का विच्छेद प्राणायाम कहलाता है। इसके चार प्रकार है – पूरक, रेचक, बहिःकुम्भक एवं केवल कुम्भक। प्राणायाम का उद्देश्य प्राण वायु को लम्बा फैला हुआ और विशाल बनाना है। स्थूल प्राणवायु इडा–पिंगला नाड़ियों से चलता है और सूक्ष्म प्राण–वायु सुषुम्ना मार्ग से चालित होता है। यह सूक्ष्म प्राण शक्ति कुण्डलिनी के द्वारा षट्चक्र भेदन में समर्थ होती है।[112]

3. प्रत्याहार– इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा कर निरूद्ध करना प्रत्याहार है। स्थूल शरीर को शुद्ध और संयत बनाने हेतु धैर्य की प्राप्ति के लिए प्रत्याहार की प्रक्रिया की जाती है। इसमें हठयोगी स्थूल शरीर को छोड़ सूक्ष्म शरीर को वश में करने की कोशिश करता है।[113]

---

109. नाथ सम्प्रदाय एवं साहित्य – पृ. 116
110. नाथ सम्प्रदाय एवं साहित्य, पृ 116
111. नाथ योग – अक्षय कुमारबनर्जी पृ.45
112. सहज साधना – द्विवेदी पृ. 66
113. सहज साधना – पृ 66

4. धारणा – एक निश्चित वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करना धारणा है।
5. ध्यान – अविचलित एवं अपरिवर्तित अवस्था ध्यान है।
6. समाधि – ध्याता एवं ध्येय की एकमेव अवस्था समाधि कहलाता है। यही हठयोग साधना का परम लक्ष्य है।

नाथ–साधना उपर्युक्त छः सोपानों से गुजर कर ही पूर्ण होती है। हठयोग की साधना साधक के संसार से मुक्त होने के साथ शुरू होती है, जिसके लिए वैराग्य अत्यावश्यक है। अतः चित्त शोधन के लिए इन्द्रिय निग्रह आवश्यक है। इस साधना में साधक विविध साधनाओं द्वारा सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति को प्रबुद्ध कर ऊपर की ओर उद्‌बुद्ध करता है। उद्‌बुद्ध कुण्डलिनी नामक शक्ति षट्‌चक्रों (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धारण्य, आज्ञाचक्र) का भेदन करती है। ऊर्ध्वमुखी कुण्डलिनी इन षट्‌चक्रों का भेदन करती हुई तालुमूल से सिर तक स्थित सहस्रार के ब्रह्मरन्ध्र को स्पर्श करती है। प्राणवायु के निरोध से इस पिण्ड (शरीर) में ही ब्रह्माण्ड सार्थकता योगी अनुभव करता है।[114]

इस प्रकार कुण्डलिनी के ऊर्ध्वमुखी होने पर स्फोट होता है वह नाद कहलाता है तथा तब प्रकाश होता है। यह नाद वास्तव में सृष्टि में समष्टि रूप व्याप्त अनाहत नाद का व्यष्टि रूप है। इसी प्रकार प्रकाश का व्यक्त रूप इच्छा, ज्ञान, क्रिया तीन प्रकार का है। जब साधक की कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है चित्त स्थिर तब वह अनहद नाद को सुन पाता है। इसकी प्रारम्भिक अवस्था समुद्र–गर्जन भेदी, झर्झर के समान भीषण होती है। दूसरी अवस्था में मर्दल, शंख, घण्टा सी ध्वनि होती है तथा अंत में वंशी, भ्रमर, कंकणी एवं वीणा की मधुर गुंजार सुनाई पड़ती है। अन्तिम अवस्था में साधक को यह स्वर सुनाई देना बंद हो जाते हैं। तब साधक की आत्मा बाह्य प्रकृति से पूर्णतयाः कट अपने स्वरूप में स्थिर हो जाती है यही परमानन्द एवं ब्रह्मानुभूति है[115] इस सम्बंध में गोरख नाथ ने कहा है –

सारमसार गहर गम्भीरंगगन उछलिया नाद
मानिक पाया फेरि लुकाया झूठाबाद विवाद।[116]

हठयोग की पूर्ण स्थिति राजयोग की स्थिति है। अर्थात् हठयोग द्वारा राजयोग की सिद्धि होती है। हठयोग–साधना में सिद्ध योग के समान ही श्रेष्ठ गुरू के महत्त्व को स्वीकार किया है।

निष्कर्षतः नाथ हठयोग पतंजलि की योग साधना का परिष्कृत एवं विकसित रूप है।

114. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य – पृ. 118
115. नाथ सम्प्रदाय एवंसाहित्य – पृ. 120
116. गोरखबानी – पृ 5

3.5.5 हिन्दी-संत एवं हठयोग-साधना – हिन्दी–संत अपने पूर्ववर्ती योग साधना से अछूते नहीं रहे। इसका प्रमाण उनकी वाणी में जगह–जगह योग परक शब्दावली द्वारा सहज ही मिल जाता है। संत हठयोग साधना से प्रभावित थे, किन्तु उनकी विशेषता यह थी कि उन्होंने समस्त प्रभावों को आत्मसात करते हुए अपनी मौलिक चिन्तनधारा को कहीं भी अवरूद्ध न होने दिया।

संत जंगल के योगी न थे; वरन् उनके हृदय में तो जन–कल्याण की पावनसरिता हिलोरें ले रही थी। तभी उन्होंने हठयोग–साधना को सर्वोच्च न माना, किन्तु इससे ऐसा अनुमान लगाना भी नितांत असत्य होगा कि वे हठयोग से पूरी तरह अछूते थे। इनकी रचनाओं में आसन, मुद्रा, सहज समाधि, इडा, पिंगला, सुरति–निरति, अनहद नाद, षट्चक्र इत्यादि शब्दों का विवरण इनके योग–साधना के प्रति झुकाव को प्रदर्शित करता है। अतः स्पष्ट है कि हिन्दी–संतों पर हठयोग का प्रभाव रहा, किन्तु इसके साथ ही लोक–कल्याण की भावना भी इनसे संयुक्त रही।

हिन्दी–संतों ने हठयोग की रूढ़ियों एवं उसमें निहित आडम्बरों को सर्वथा अस्वीकार करते हैं। संत कबीर ने अष्टांग योग के यम–नियमों का पृथक रूप से विवेचन नहीं किया है वे विभिन्न प्रकार के आसनों के भंवर में न फँस कर आसन की दृढ़ता की ओर संकेत करते हुए कहते है –

सहज लछिन ले तजो उपाधि
आसन दिढ़ निद्रा पुनि साधि। [117]

हठयोग के अनुसार शरीर की तीनों नाड़ियों इडा, पिंगला, सुषुम्ना का विशेष महत्त्व रहा है संतों ने इडा–पिंगला के लिए सूर्य–चन्द्रमा का प्रयोग किया है –

चन्द सूर दोउ सन मुख होई
पीवै प्याला मरै न कोई। [118]

इन्हें पूर्ववर्ती प्रभावों के कारण संतों ने गंगा, यमुना, सरस्वती नाम से भी अभिव्यक्त किया है। यथा –

गंग जमुल उर अंतरै, सहज सुनि ल्यौ घाट। [119]

संत रैदास ने 'उल्टी गंगा यमुन' में लावै बिन ही जल मज्जन है पावै।'[120] कहकर इडा, पिंगला, सुषुम्ना को गंगा, यमुना, सरस्वती का नाम दिया है।

---

117. क.ग्र. – 198/325
118. रैदास की बानी पद – 40
119. क. ग्र. – पृ. 18
120. रैदास की बानी – पद – 56

संत कबीर ने 'त्रिवेणी मनाह न्हवाइए[121] द्वारा त्रिवेणी, त्रिकुटी संगम स्वामी[122] द्वारा त्रिकुटी संगम एवं त्रिकोट में आसण मांडै द्वारा[123] योग शब्दावली का प्रयोग किया है।

संतों के साहित्य में वायु–साधना के विविध स्वरूप मिलते हैं। यथा–

उलट पवन षटचक्रा भेदा। [124]

संतों ने सूर्य–चन्द्र साधना का अर्द्ध–उर्द्ध के माध्यम से किया है। संतों ने ऊर्ध्व–अर्ध का अरध–उरध कर दिया है। यह दोनों प्राणायाम योग के वाचक हैं। इनका प्रयोग करते हुए कबीर ने कहा है –

अरध–उरध की गंगा–जमुना मूल कंवल को घाट। [125]

संत रैदास भी अपनी वाणी में पाँच तत्त्व को यह रथ साज्यों अरधै उरध निवासा'[126] द्वारा ऊर्ध्व अर्ध साधना की पुष्टि करते हैं।

कबीर ने हठयोग प्रभाव स्वरूप कुण्डलिनी जागरण पर भी प्रकाश डाला है। कबीर ने शिव–शक्ति, ईश्वर–गौरी, नागिनी, मछली, पनिहारी, धरती–आकाश आदि नामों के संदर्भ में कुण्डलिनी योग की ओर संकेत किया है।[127]

ध्यान में कबीर सुरति एवं अजपा जाप का महत्त्व निर्देशित करते हैं। संत है कोई राम नाम बतावै, वस्तु अगोचर मोहि लखावै[128] कहकर निर्गुण राम के स्मरण का निर्देश करते हैं।

हठयोग–साधना में नाड़ी–साधना का बड़ा महत्त्व है। कबीर इन्हें बहत्तर अधारी[129], बहितर घर एक पुरुष समाया[130] कहते हैं। नाड़ियों के नामों का उल्लेख पहले किया जा चुका है।

संतों ने हठयोग की मुद्राओं का सिद्धांत रूप में प्रयोग न करके ध्यान और धारणा से सम्बंधित मुद्राओं की चर्चा अवश्य की है।

संतों ने षट्चक्रों का प्रयोग सिद्धांत रूप में नहीं किया, किन्तु इनकी चर्चा संत साहित्य में की गई है।

---

121. क. ग्र. – पृ. 88/4
122. उपरिवत् – पृ. 90/7
123. उपरिवत् – पृ. 158/204
124. कबीर ग्रथावली – पृ 90
125. उपरिवत् – पृ. 94
126. संत रैदास – व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ. 149
127. कबीर – व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त – सरनाम सिंह शर्मा, पृ. 412
128. क. ग्र. – पृ. 162
129. उपरिवत् – पृ 308
130. उपरिवत् – पृ 273

षट् दल कँवल निवासियाँ[131] इसी मत को स्पष्ट करता है।

संतों का रूझान अष्ट कँवल की साधना की ओर रहा है। संतों ने हृदय रूपी अष्टकंवल का वर्णन विविध प्रकार से किया है। जहाँ साधक ब्रह्म से साक्षात्कार कर लेता है।

दादू भंवर कमल रस बेधिया, सुख सखर रस पीव।
तहं हंसा मोती चुने, पिव देखे सुख जीव। [132]

संतों ने षट्चक्र, अष्ट कमल के अतिरिक्त सोलह आधारों के भेदन की बात भी की है।

सोलह मधे पवन झकोरिया। [133]

हठयोग–साधना का अन्तिम सोपान समाधि है। कबीर इसी को सहज समाधि कहते हैं; जो परम्परागत समाधि से सर्वथा भिन्न है। सहज समाधि का शब्द चित्र देखिये –

साधो सहज समाधि भली।
गुरू प्रताप जा दिन तै जागी, दिन दिन अधिक चली।
जह जह डोलो सो परिकरमा, जो कुछ करौ सो सेवा।
जब सोबो तब करो डंडवत, पूजों ओर न देवा।
कहो सो नाम, सुनौ सो सुमिरन, खाव पियौ सो पूजा।
गिरह उजाड़ एक सम लखौ, भाव मिटावै दूजा।
आँख न मूंदो, कान न रूधौ, तनिक कष्ट नहीं धारौं।
खुले नैन पहिचानौ हँसि–हँसिसुन्दर रूप निहारौ।
कह कबीर यह उनमनि रहनी सो परगटि करि गाई
सुख दुख से कोई परे परमपद तेही पद रहा समाई। [134]

संतों ने हठयोग साधना में गुरू के महत्त्व को स्वीकार किया है।

सारांश रूप से हिन्दी संतों ने जो 'पिण्डे सो ब्रह्माण्डे' ज्ञान द्वारा हठयोग में आस्था प्रकट की है। उन्होंने हठयोग को सिद्धांत रूप में नहीं माना तभी तो हठयोग की बहुत सी बातें उनके साहित्य में अस्त–व्यस्त रूप से बिखरी हुई हैं। इन उदार हृदय संतो ने हठयोग साधना की प्रवाहित होती परम्परा रूपी सरिता से हठयोग–साधना के कतिपय मोतियों को चुना तथा उसमें निहित बाह्याचारों, रूढ़ियों एवं आडम्बरों रूपी शैवाल को बाहर निकाल कर उसे स्वच्छ, निर्मल स्वरूप प्रदान किया।

---

131. क. ग्र. – पृ 88
132. श्री दादू वाणी – पृ. 90 पद – 14
133. क. ग्र. – पृ. 296
134. संत बानी – सगह – पृ. – 14 भाग – 1

3.6 दार्शनिक प्रतीक

3.6.0 प्रतीक आरोपित अर्थ की सत्ता है। दार्शनिकों एवं चिंतकों हेतु यह अनिर्वचनीय (गूंगे केरी सरकरा) को वचनीय बनाने में सहायक होते हैं।

3.6.1 प्रतीक अर्थ/आशय – प्रतीक शब्द 'प्रति' उपसर्ग धातु में ईकन् प्रत्यय लगने से निर्मित हुआ है। यथा –

प्रतीयते प्रत्येति वा इति प्रति+इं अलीकादपश्चेति इकन् प्रत्येयन साधु।[135]

अर्थात् जिसके द्वारा ज्ञान की प्रतीति हो वह प्रतीक है।

3.6.1.1 दार्शनिक प्रतीक – दार्शनिक प्रतीक प्रतीकों का वह रूप है अथवा प्रकार है जिसमें ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, आत्मा इत्यादि विषयों को अभिव्यक्त करने हेतु प्रतीकों का आश्रय ग्रहण किया जाता है। हमारे आलोच्य संतों–साधकों के साहित्य में दार्शनिक प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग हुआ है।

3.6.2 सिद्ध-नाथ एवं दार्शनिक प्रतीक – सिद्ध–नाथों का मुख्य प्रतिपाद्य दार्शनिक चिन्तन था। सिद्धों के प्रतीक–विधान को विज्ञानवाद एवं योगाचार की साधनाओं ने गहरे तक प्रभावित किया था। अतः उनकी प्रतीक योजना भी इससे अछूती नहीं रही। सिद्धों के प्रभाव स्वरूप यह परम्परा नाथों में पहुँची। यथा –

3.6.2.1 ब्रह्म-विषयक प्रतीक – सिद्ध–नाथों ने परम तत्त्व हेतु अनेक प्रतीकों का आश्रय ग्रहण किया है। यथा –

शून्य–निरंजन – सुण्ण णिरंजण परमपउ, सुइणों (अ) माअ सहाव।[136] (सिद्ध) नमो नमो निरंजन भरम को बिहंडन।[137] (नाथ)

तरू – सहज महातरू फरिए तेलोए। चर्यापद – 43

दीपक – दीपक बालि उजाला किया[138] (ब्रह्म ज्योति)

बालक – गगन सिषर महिं बालक बौले ताका नांव धरहुगें कैसा।[139]

3.6.2.2 जीवात्मा-विषयक प्रतीक – सिद्धों ने जीवात्मा के लिए तरूवर, कपास, करभ, मूषक, मेढ़क, भात, बैल, काग इत्यादि प्रतीकों को अपनाया है। यथा –

तरूवर –अद्दअ चित्त तरूअरह गउ तिहुवणे वित्थार।[140]

कपास – तुला धुनि आंशु रे आंशु

आंसु धुणि धुणि निरवर सेसु।

तउसे हेरूअ णाविअइ।

---

135. हलायुध कोश – सं. जयशंकर जोशी पृ. 456
136. दोहाकोश – राहुल जी पृ. 36
137. नाथ सिद्धों की बानियाँ – पृ. 4–5 (प्रेमदास की रचना सि0 वन्दना में)
138. गोरख बानी – पृ. 142–143
139. सबदी – शार्दूलसिंह जी पृ. 2/1
140. दोहा कोश – पृ. 38

तुला धुणि धुणि सुणे अहारिअ।

पुण लइआ अपणा चटारिउ।[141]

बैल (बोधि चित्त) – बलद बिआअव[142]

काग (अज्ञानी चित्त) – दिवसइ बहुडी काउ डरे भाअ।[143]

नाथों ने जीवात्मा को बैल, गज, हंस, मृग, बाघ, पनिहारी, काग, मछली, मृग, गाय आदि प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त किया है। कतिपय उदाहरण अवलोकनीय हैं –

बैल – मनबछौ।[144]

गज – दसवै दरवाजै कूची सार, मैमन्त हस्ती बंधिबाबार।[145]

हंस – सोहम् बाईहंसा रूपी प्यंड बहै।[146]

मृग – ह्यौ ह्यौ मृगलो बेधियौ बांण।[147]

3.6.2.3 माया-विषयक प्रतीक –

हरिणी – माया जाल पसारि रे बाधेलि माआ हरिणी (चर्यापद–23)

समुद्र – मायामोह समुद्रा रे अन्त न बुझसि थाहा। (चर्यापद गीति–15)

बेल – अवधू परबत मंझार बेलड़ी भाड़्यो विस्तार (गोरखबाणी–118)

सर्पणी – मारौ – मारौस्रपनी निरमल जल पैठी। – (गोरखबाणी–पृ.139)

2.3.2.4 जगत्-विषयक प्रतीक – सिद्ध–नाथों ने जगत् के लिए विविध प्रतीकों को ग्रहण किया है। कतिपय उदाहरण देखिये –

सांप – वेगससाप बढिल जाअ (चर्यापद 33)

तरूअर – नाना तरूवर मोउलिल रे गंअणत लागेलि डाली। (चर्यापद 28)

नदी – भवणइ गहण गम्भीर वेग वारी

दुखान्ते चिखिल माझे न थारी। (चर्यापद – 5)

खेल – यहु संसार कुबक का खेल।[148]

2.3.2.5 साधनात्मक-प्रतीक – सिद्ध–नाथों ने अपनी साधना पद्धत्ति को निरूपित करने हेतु साधनात्मक प्रतीकों का आश्रय ग्रहण किया।

सिद्धों ने गंगा (इडा), यमुना (पिंगला), सरस्वती सुषुम्ना, संगम त्रिवेणी (इडा, पिंगला, सुषुम्ना का आज्ञा चक्र में मिलन), चन्द्र (पिंगला), सूर्य (इडा) आदि द्वारा सिद्ध–साहित्य की प्रतीक परम्परा को सम्पन्न बनाया है। यथा–

---

141. चर्यापद – 26
142. उपरिवत् – 33
143. उपरिवत् – पृ. 2
144. गोरखबानी – 254
145. उपरिवत् – 175
146. उपरिवत् – 99
147. उपरिवत् – 119
148. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य – पृ. 167 से लिया गया।

चन्द्र–सुज्ज धणि घालइ घोट्टइ। [149]

सिद्धों के साधानात्मक प्रतीकों का विकसित एवं परिष्कृत रूप नाथ साहित्य में देखने को मिलता है। यथा –

अहंकार तूटिबा निराकार फूटिबा सोषीला गंग जमन का पानी।

चंद सूरज दोउ सनमुषि राषीला कहो हो अवधू तहाँ की सहिनाणी [150]

3.6.3 हिन्दी-संत एवं दार्शनिक प्रतीक – हिन्दी निर्गुण संतों ने तत्त्व चिन्तन हेतु दार्शनिक प्रतीकों का आश्रय ग्रहण किया है।

3.6.3.1 ब्रह्म-विषयक प्रतीक – निर्गुण हिन्दी–संतों ने ब्रह्म विषयक चिन्तन को विविध प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त किया है। कतिपय उदाहरण अवलोकनीय है–

3.6.3.1.1 निर्गुण ब्रह्म-विषयक प्रतीक

निरंजन– जामै मरै न संकुटि आवैनावं निरंजन जाकौ रे।[151]

परमब्रह्म परापरं सो मम देव निरंजनम्।[152]

अविगत नाम निरंजन देवा – (संत रैदास व्यक्तित्व कृतित्व–पृ.141)

अविनाशी – सदा अतीत ज्ञानधन वर्जित निरविकार अविनासी।[153]

दादू आनन्द आत्मा अविनासी के साथ।[154]

पुरूष – दादू पुरूष हमारा एक है हम नारी बहु अंग

(श्री दादू वाणी पृ.191)– पुरूष एक अविनासी। (क.ग्र. पद 48)

3.6.3.1.2 सगुण ब्रह्म-विषयक प्रतीक –संतों ने निर्गुण निराकार ब्रह्म पर विशेषणों का आरोपण किया है।

राम – बोहत दिनन की जोवती बाट तुम्हारी राम। (क. ग्र.–पृ.8/3)

सोइ राम संभालि जियरा। (दादूदयाल ग्रंथावली – पृ.457)

गोविन्द – जिनि पै गोविन्द बीछुटै तिनकै कौण हवाल। (क. ग्र.–पृ. 7/2)

निरच्च निराकार अज अनुपम, निरभय गति गोविन्द। (संतरैदास पृ.187)

मुरारी – बिनु दरसन क्यों जीवहीं मुरारी। (क. ग्र.पद 287)

3.6.3.1.3 ब्रह्म के योग परक प्रतीक – ब्रह्म के योग परक प्रतीकों को संतों ने बौद्ध, सिद्ध, नाथ के प्रभाव स्वरूप अपनाया है। कतिपय उदाहरण अवलोकनीय हैं –

शून्य – कहै रैदास सहज सुन्न सत जीवन मुक्त निधि कासी (रैदास जी की वाणी पृ. 25)

सून्न महल में दीपक बारो बिन तेल बाती (क. ग्र–पृ.205)

---

149. दोहाकोश – राहुल जी – 34
150. गोरखबानी पृ. 39
151. क. ग्र. – पद 48
152. श्री दादू वाणी – पृ.1
153. संत रैदास (सं. योगेन्द्र सिंह पृ. 187/83
154. दादूदयाल की वाणी – पृ 7

शब्द – सबदै ही सब ऊपजे सबदै सबै समाइ। (दादू बानी भाग–1पृ. 188)
सबदि मेरे तिसु निज परिवासा (नानक वाणी, पृ.226)
सहज – सहज शून्य में आठी सखे, पावैंरैदास गुरूमुख दखै (संत रैदास व्यक्तित्व कृतित्व पृ. 150)

3.6.3.1.4 ब्रह्म का व्यावसायिक स्वरूप

जुलाहा – अस जोलाहा का मरम न जाना, जिन जग आया पसारिहि ताना। (कबीर वाड़.मयखण्ड –1–पृ. 51)
बाजीगर – ''बाजीगर परकासा, यहु बाजी झूठ तमासा। (दादूवाणी भाग–2 पृ. 230)
''बाजीगर सोराचि रहा, बाजी का भरम न जाना। (रैदास जी की वानी पद–10)
दूजे पहरै रैणि के वणजरिआ मित्रा विसरि गहना धिआनु।
(गुरू ग्रंथसाहिब पृ.5 नानक)

3.6.3.2 जीवात्मा विषयक प्रतीक

हंस – ''कहै कबीर स्वामी सुख सागर हंसहि हंस मिलावैगे।''
(क. ग्र–पृ. 137)''दादू मन हंसा मोती चुणे, कंकरदीया डार।''
(श्री दादू वाणी–पृ. 332)
चकवा–चकवी – ''सूंखे सरवर उठै हिलोरा,बिनु जल चकवा करै कलोला।
(कबीर बीज पृ. 64)
''ज्यों चातक जल बूंद कौ करै पुकार–पुकार '' (दादू दयाल जी की वाणी भाग–1 पृ. 24)
रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति कर जैसी चकवी सूर (नानकवाणी –पृ.149)
मीन – ''रे मन मछला संसार समुद्र। (संत रैदास–व्यक्तित्व कृतित्व पृ.158)
''दादू तलफै मीन ज्यों, मुझ दया न आवै।
(दादू दयाल की वाणी – प्रथम पृ. 28)
लोभ तरंग मोह भयो काला, मीन भयो मन लीना।
(संत रविदास और उनका काव्य पृ. 105)
मेढ़क – मीड़क सोवै साँप पहरइया (क. ग्र. पृ. 113)
''दादूर तू कबहि न जानसि रे (नानक वाणी, रागु मारू सबद 4)
हस्ती/गज – 'मन हस्ती माया हस्तिनी सघन वन संसार।'
(श्री दादूवाणी पृ. 238)
'गुरू प्रसाद सूई के नांकै हस्ती आवैजाहीं। (क. ग्र. पृ. 61)
काग – 'कागिल गर फांदिया बहेरै बाज जीता' (क.ग्र. पृ. 141)

3.6.3.3 माया-विषयक प्रतीक –

बेल – 'इस गुणवंती बेलि का कछु गुण कह्या न जाइ।'
(कबीर सारवी सार) पृ. 210)

धर अम्बर बिच बेलड़ी' (संतबाणी संग्रह–1 पृ. 70)

डाइन – 'दादू माया डाकिणी, इन केते खाये।(दादूदयाल की वाणी–1पृ. 111)

'इक डाइन मेरे मन बसै, नित उठि मेरे मन को ड़से''(क.ग्र.–पृ. 41)

कनक–कामिनी – जहाँ कनक अरू कामिनी तहं जीव पतंगे जाहि।

(श्री दादूवाणी पृ. 242)

'कनक कामिनी कूप' (कबीर साखी सार – पृ. 93)

हरिणी – 'वन की हिरनी कूवै बियानी संसा फिरै आकास। (क. ग्र.–पृ. 147)

साँपनि – साँपणि इक सब जीव कौ, आगै पीछे खाइ।

(दादू दयाल की वाणी भाग–1 पृ. 14)

3.6.3.4 जगत्-विषयक प्रतीक

चरखा – 'जो यह चरखा लखि परै, ताको आवगमन न होइ। (क.ग्र. पृ. 486)

हाट – आनि कबीरा हाटि उतारा, सो गाहक सोइ बेचन हारा। (क.ग्र.पृ.124)

कुसम्भा फूल – जैसा रंगु कंसुभ का तैसा इहु संसारू।

(आदि गुरू ग्रंथ साहिब पृ. 346 रविदास जी)

धौलहर – प्राणी प्रीति न कीजिए, इहि झूठे संसारो रे

धूवां केरा धौलहर जात न लागै बारीरें। (क.ग्र. पृ. 220)

वन – 'सघन वन संसार' । (श्री दादू वाणी – पृ. 238)

दरिया – 'दुख दरिया संसार है।' (दादू वाणी भाग – 1 पृ.95)

जलधि – विषम भयानक भौजला तुमबिन भारी होइ। (उपरिवत्–पृ. 7 भाग–2)

''रे मन मछला संसार समुदे' (संतरैदास व्यक्तित्व एवं कृतित्व पृ.159)

3.6.3.5 साधनात्मक प्रतीक

अरध–उरध – अधर उरध दोऊ तह नहीं, राती विनसु तह नाहीं।

(कबीर–पृ. 51)

इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना संगम को त्रिवेणी बता गंगा–यमुना के प्रतीकों द्वारा संतों ने अभिव्यक्त किया है। यथा –

'गंग जमुन के तीर तिरवेणी संगम जहां' (दादूदयाल की वाणी–2पृ. 173)

उलटी गंगा जमुन में लावै, बिन ही जल मज्जन है पावै।'

(रैदास की वाणी, पृ. 56)

चन्द्र–सूर्य – चन्द सूर दोउ सन मुख होई पीवै प्याला मरै न कोई।

(रैदास की वाणी पद –40)

बंक नालि –

अवधू गगन मण्डल घर कीजै।
अमृत झरै सदा सुख उपजै।
बंक नालि रस पीवै। (क.ग्र. पृ. 110)

सारांशतः निर्गुण हिन्दी–संतों ने अपने काव्य में दार्शनिक प्रतीकों का सुन्दर निरूपण किया है। उन्होंने सिद्धनाथों के साहित्य में प्रयुक्त दार्शनिक प्रतीकों से तो प्रभाव ग्रहण किया ही है साथ ही साथ अपने मौलिक चिन्तन द्वारा इस परम्परा को विकसित भी किया है।

3.7 उलटबाँसियाँ

संतो की उलटबाँसियाँ हिन्दी–साहित्य की अनमोल निधि है। उलटवासियाँ प्रतीक परिवार की ही सदस्य मानी जा सकती है। संतो ने अपने आध्यात्मिक सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति हेतु उलटबासी शैली को अपनाया हैं।

3.7.1 उलटबाँसी का अर्थ/आशय – आध्यात्मिक अनुभव की अनिर्वचनीयता के कारण साधक को कभी–कभी विरोधी उक्तियों द्वारा व्यक्त करने का ढंग अपनाना पड़ता है, जिन्हें उलटबाँसी, 'विपर्यय' कहते हैं।[155]

पं.परशुराम चतुर्वेदी ने उलटबाँसी के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है "उलटबाँसी द्वारा किसी को व्यर्थ भुलावा न देकर, उससे भरसक वर्ण्य विषय की ओर आकृष्ट किया जाता है। जिसका उद्देश्य विनोद न होकर उसे सजग और सचेष्ट करना होता है।[156]

उलटबाँसी में किसी बात को प्रत्यक्ष न कह गूढ़ संकेतों के माध्यम से विपरीत रीति से कहा जाता है। तभी वह प्रथम दृष्टि में चमत्कार जन्य प्रतीत होती है।

उलटबाँसी शब्द भिन्न–भिन्न नामों द्वारा शैली के रूप में आदिकाल से साहित्य में वर्णित होता रहा है, किन्तु उलटबासी शब्द के प्रथम प्रयोग कर्त्ता के विषय में प्रामाणिक तथ्यों का सर्वथा अमाव रहा है। सम्भवतः उलटबाँसी शब्द को कबीर पंथियों ने नाथों के 'उलटी चरचा' से पृथक् करने के लिए ही प्रयुक्त किया है।[157] इस प्रकार विपरीत अथवा असाधारण अथवा अपरोक्ष कथन उलटबाँसी है।

3.7.2 ऐतिहासिक विकास – उलटबाँसी शैली के प्रयोगभिन्न नाम के साथ वेदों मे दिखाई देते हैं। ऋग्वेद में गूढ़ार्थक ऋचाओं के अनेक उदाहरण हैं। बिना पैरोंवाली, पैरों वाली से पहले आ जाती है, मित्रवरूण इस रहस्य को नहीं जानते। यथा –

अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरूण चिकते। [158]

एक अन्य उदाहरण में कहा गया है कि इस बैल के चार सींग, तीन चरण, दो सिर और सात हाथ हैं। यह तीन प्रकार से बंधा हुआ उच्च शब्द करता है।[159] ऋग्वेद संहिता में शरीर के लिए कहा है –

---

155. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय – पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल , पृ. 409
156. नाथ और संत साहित्य (तुलनात्मक अध्यन) – नागेन्द्र नाथ, पृ. 592
157. कबीर : व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त – सरनामसिंह, पृ. 669
158. ऋग्वेद 2–1–152–3
159. चत्वारि शृंगा – त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तातो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति। – ऋग्वेद 3–4–5–8–3

इदं वपुर्निवचनं जनासश्चरन्ति यन्नद्यस्तस्थुराप[160]

अर्थात् हे मनुष्यों, यह शरीर निश्चय ही ध्यान देने योग्य है। इसमें नदियाँ बहती हैं और जल स्थिर रहता है। यहाँ नदियों का बहना और जल का स्थिर रहना जिज्ञासा, आश्चर्य का सृजन करता है। इन दोनों में विरोधाभास है, परन्तु यहाँ यह कथन शरीर की रक्त वाहिनी शिराओं के अर्थ में प्रयुक्त है।

अथर्ववेद में भी कई मंत्र विरोध गर्भित अर्थ रखते हैं। एक स्थान पर कहा है कि काली रात ने एक श्वेत शिशु को उत्पन्न किया, वह आकाश में ऊँचा चढ़ गया है। कृष्ण का पुत्र अर्जुन है, यहाँ विरोध है, परन्तु अर्थ प्रभात समय सूर्य के गगनारूढ़ होने का संकेत करता है।[161]

वेदों की इस गूढ़ार्थ शैली का विकास आगे चलकर उपनिषदों में हुआ। उपनिषदों का विषय तत्त्व चिन्तन था, अतः उसी के अनुरूप अब गूढ़ार्थ शैली का प्रयोग होने लगा।

उपनिषद् में सूक्ष्म तत्त्व की अभिव्यक्ति उलटबाँसी शैली में की है–

तदेजति तन्नेजति तद्दूरे तद्वनितके।

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यातः।।

अर्थात वह चलता है और नहीं भी चलता, वह दूर है और समीप भी, वह सबमें है और सबके बाहर भी, वह ठहरा हुआ भी अन्य दौड़ने वालों से आगे निकल जाता है।[162]

संसार को नदी के रूपक के माध्यम से उलटबाँसी शैली में गूढ़ार्थ रूप में किया है।

पञ्चस्रोतोऽम्बुं पञ्चयोन्युग्र वक्रां, पञ्च प्राणोर्मि पंचबुद्धयादि मूलाम,

पञ्चावर्ता पञ्चदुः खौद्यवेगां, पञ्चाशद् भेदां पञ्चपर्वामधीमः।[163]

शंकराचार्य के शंकर भाष्य में उपर्युक्त मंत्र का अर्थ इस प्रकार किया है –"पाँच स्रोत (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ) जिसमें जल की धाराएँ हैं। पाँच उद्‌गम स्थलों (कारण रूप पंच भूत) के कारण जो बड़ी उग्र और वक्र है जिसमें पंच प्राण (वाक्, पाणि, पादादि) पाँच तरंगें हैं, पाँच प्रकार के ज्ञानों (पाँच ज्ञानेन्द्रियों से होने वाला ज्ञान) कामूल (अर्थात् मन) जिसका कारण है, जिसमें पाँच आवर्त्त (शब्दादि पाँच विषय) हैं जो पाँच प्रकार के दुःख (गर्भ, जन्म, जरा, व्याधि और मरण) रूप औधवाली है और जो पाँच क्लेशों (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश) रूप पर्वी वाली है, इस प्रकार इस पचास भेदों वाली नदी को हम जानते हैं।[164]

---

160. ऋग्वेदसंहिता – 5/47/5
161. कृष्णयाः पुत्रों अर्जुनोरात्र्यावत्सोंअजायत,
    सह द्यामधि रेहति रूहोरूहोह रोहित : – अथर्ववेदसंहिता 13/3/26
162. ईश्वास्योपनिषद् – मंत्र – 5
163. श्वेताश्वतोरोपनिषद – 1/5
164. उलटवासी साहित्य – रमेश चन्द ,पृ. 65

उलटबाँसी शैली में उपनिषदों में वर्णित यह रूपक परवर्ती संतो– साधकों के लिए भी बहुमूल्य है। तथा उनके संसार विषयक दृष्टिकोण को इसने प्रभावित भी किया है।

आगे चलकर धार्मिक एवं मध्यकालीन संस्कृत युग में इस विचित्र कथन शैली को बढ़ावा मिला। महाभारत श्रीमद्‌भागवत आदि धार्मिक ग्रंथों एवं संस्कृत ग्रंथों काव्यादर्श इत्यादि में उलटबाँसी शैली के अनेक उदाहरण हैं।

महात्मा बुद्ध के बौद्ध–धर्म में भी उलटबाँसी शैली के संकेत हुए है। पाली भाषा में तथागत ने उपदेश दिए तथा उनके धर्म–ग्रंथों की भी यही भाषा थी जिसका जन साधारण से गहरा जुड़ाव था अतः वह गूढ़ार्थ हेतु उपयुक्त नहीं थी। बुद्ध ने स्वयं स्पष्ट कहा था – परीक्ष्य भिक्षवो ग्राह्यं मद्वचोनतु गौरवात्[165] अर्थात् किसी प्रभाव के कारण उनके वचनों को ग्रहण न करे, बल्कि परीगण के उपरान्त उन्हें ग्रहण करें।

इन बातों से यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि इस समय में (पालि–पाकृत युग) उलटबाँसी शैली को सर्वथा त्याग दिया; बल्कि धम्मपद की गाथाओं में इस शैली को अनेक स्थानों पर अपनाया गया है। यथा –

मातरं पितरं राजानो द्वेच खत्तिये।

रट्ठ सानुचर हन्त्वा अनीद्यो याति ब्राह्मणो। [166]

यहाँ विधि–विरोध के द्वारा उलटबाँसी शैली का वर्णन किया है। अर्थात् माता–पिता (तृष्णा–अहंकार), दो क्षत्रियों (शाश्वत् दृष्टि और उच्छैद दृष्टि) तथा अनुचर के साथ राष्ट्र को (घात–वासना सहित सम्पूर्ण आसक्तियों का विनाश) मार कर ब्राह्मण पाप रहित हो जाता है।

बौद्ध–धर्म की शाखाओं वज्रयान और सहजयान ने उलटबाँसी शैली को विकसित करने में अपना योग दिया। वेदों से उद्‌भुद उलटवाँसी शैली की तनवी धारा अनेक पड़ावों से गुजरती हुई मध्ययुग में एक विस्तीर्ण – विस्तृत पारावार के रूप में विकसित हुई। सिद्ध–नाथ एवं संतों के काव्य इसके प्रमाण हैं।

3.7.3 सिद्ध-नाथ एवं उलटबाँसियाँ

3.7.3.1 सिद्ध-उलटबाँसियाँ – सिद्ध साहित्य में संध्या भाषा में अनेक उलटवासियाँ रची गई हैं। सिद्धों ने विविध रूपकों, उदाहरणों एवं विरोध जनित कथनों द्वारा कठिन साधना–मार्ग को निरूपित किया है। भुसुकपाद साधनात्मक बिम्बों की सफलता हेतु प्रतीक एवं रूपकों का सहारा लेते हुए उलटबासी शैली में साधना को चित्रित करते हैं –

अपणामांसे हरिण वैरी। खणह न छाड़अ भुसुक अहेरी।

तिण न च्छुपइ हरिणा पिबइन पाणी। हरिणा हरिणीर निदर न जाणी।

---

165. दोहा कोश – प्रबोध चन्द बागची पृ. 11

166. धम्मपद– 21/5

हरिणी बोलउ सुण हरिणा तो । ए वन च्छाड़ी होतु भान्तो।

तरसन्ते हरिणार खुर न दीसइ। भुसुक भणइ मूढ़ हि अहिन पइसइ। [167]

अर्थात् अपने मॉस के लिए हरिण स्वयं शत्रु होता है। भुसुकपाद आखेटक है वह क्षणभर भी उसका परित्याग नहीं करता। हरिण तृण–जल को छूता तक नहीं। हरिण हरिणी का घर नहीं जानता। हरिणी उसे वन का परित्याग करने का निर्देश देती है। जाल के कारण हरिण के खुर दिखाई नहीं देते सिद्ध भुसुकपाद कहते हैं कि इस अर्थ को मूर्ख नहीं समझ सकते।

यहाँ मॉस–इन्द्रिय विषय, हरिण–चंचल चित्त, हरिणी–ज्ञानमुद्रा, अहेरी (भुसुकपाद) साधक, निलअ–पवन निलय तथा वन–काया का सांकेतिक अर्थ रखते हैं।

उपर्युक्त उलटबाँसी में भुसुकपाद चित्त–वृत्ति के संयमन, साधना –मार्ग का अभ्यास तथा नैरात्म्य–भाव को लेकर महासुख रूप कमल वन में निवास करने का उपदेश देते हैं।[168]

उलटवासी शैली का प्रयोग करते हुए ढेण्ढणपाद कहते हैं –

टालत मोर घर नाहि षड़वेशी। हाड़ीत भात नाहि निति आवेशी।

बेड़.गस साप वड़हिल जाअ। दुहिल दुधु कि घेण्टे समाअ।।

वलद विआअल गविआ बाँझै। पिटा दुहिअइ एतिणा साँझे।

जो सो बुधी सोध निबुधी। जो सो चोर सोइ साधी।।

निति निति सिआला सिहे सम जुझअ। ढेण्ढण पाएर गीत विरले बुझअ।[169]

अर्थात् 'नगर में मेरा घर है, जहाँ मेरा कोई प्रतिवेशी नहीं। हण्डिका में ओदन (भात) न होने पर भी (अतिथि) नित्यपति खाने को आते हैं। मण्डूक ने सर्प को खण्ड–खण्ड कर दिया है। दुहा हुआ दूध किस प्रकार स्तन वृन्त में प्रविष्ट हो सकता है। बैल–प्रसूति धर्म को ग्रहण करता है और गाय वन्ध्या हैं। पृष्ठ भाग में संध्या पर्यन्त दोहन क्रिया होती है। जो बुद्धिमान है वही मूर्ख है और जो चोर है वही साधु हैं। शृगाल नित प्रति उठकर सिंह से जुझता हैं ढेण्ढपाद चुनौती भरे शब्दों में कहते है कि इस गीत को विरला ही समझ सकता है। इस गीत में नगर काय – वाक् चित्त से उत्पन्न दोषों से रहित स्थिति में निवास का प्रतीक है, हण्डिका साधक की काया, भात राग युक्त चित्त, सर्प संशय रूप है, बोधि चित्त रूप वज्र सत्व अवस्था की प्रसूति करे यही वृभष का प्रसूति कर्म है। नैरात्मावस्था में सभी इन्द्रियाँ निष्क्रियत्व पा लेती हैं, यही गाय का वंध्या होना है। बुद्धिमान का मूर्ख होना आत्म–ज्ञान परिचय से हैं, चित्त चोर है पर जब वह अपने लक्ष्य की ओर उन्मुख होता है, तो साधु बन जाता है, मरण से भयभीत चित्त श्रृगाल के समान डरपोक है, परन्तु साधनावस्था में युगनद्ध होकर वह स्पर्धा शील हो जाता है। इस

---

167. चर्यागीतिकोश – पृ. 19
168. उलटबासी साहित्य – रमेश चन्द्र, पृ. 84
169. चर्यागीति कोष – पृ. 108

महासत्त्व की अवस्था को सर्वग्राह्य नहीं बताया है।[170]

सिद्ध सरहपाद ने उलटबाँसी शैली का प्रयोग करते हुए अपने रहस्यवादी विचारों को अभिव्यक्त किया है। सरहपाद की उलटवासियों ने हिन्दी –साहित्य की उलटबाँसियों को प्रभावित किया हैं,[171] जिससे इनका महत्त्व स्वतः सिद्ध होता है। सरह उलटबाँसी शैली में कहते हैं –

चंद सुज्ज घसि धालइ घोट्टइ। सौ अणुत्तर एत्थु पहट्टइ।
एववहिं सबल जाग णिगूढों। सहज सतावे ण जाणिअ मूढो। [172]

अर्थात् जो साधक चन्द्र–सूर्य रूपी इडा–पिंगला को साधनाभ्यास द्वारा साधता है, वही अनुत्तर अवस्था को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण ज्ञान निगूढ़ रहता है, अपने सहज स्वभाव के कारण मूढ लोग इसे समझ नहीं पाते हैं।

अन्य सिद्ध डोम्बीपाद[173] कृष्णपाद[174], गुण्डरीपाद[175] तथा कुक्करीपाद[176] आदि ने अपनी चर्चाओं में उलटबाँसी शैलीका प्रयोग कर इस शैली को आगे विकसित करने में योगदान दिया है।

सिद्धों ने अपनी साधना पद्धति एवं दर्शन को गुप्त रखने के लिए ही उलटबाँसी शैली का उपयोग किया है।

3.7.3.2 नाथः- उलटबाँसियाँ – सिद्धों की उलटबाँसियों का विस्तार नाथ–साहित्य में हुआ है। नाथों ने अपनी दार्शनिक–साधना–पद्धति को गोपनीय बनाने हेतु इस शैली को अपनाया है। कतिपय उदाहरण देकर हम नाथोंकी समृद्ध उलटबाँसी परम्परा का निरूपण करेंगे।

गुह्य प्रकृत्ति प्रधान उलटबाँसी का उदाहरण अवलोकनीय है। यथा –

चालि रे अबिला कोयल मौरी। धरती उलटि गगन कू ढौरी।
गईयाँ बपड़ी सिघ नै घेरै।मृतक पसूसूद्र कूं उचरै।
काटै ससत्र पूजे देव। भूप करै करसा की सेव।
तलि करि ढ़कवी ऊपरि झाल।न छीजैगा महारस बचेगा काल।
दीपक बालि उजाला कीया। गोरष कै सिरि परबतदिया। [177]

अर्थात् – अरे ओ आम्र वृक्ष! तू चल कोकिला मंजरी युक्त हो गई है पृथ्वी आकाश की ओर दौड़ रही है, सिंह गायों से घिरा है।

---

170. उलटवासी साहित्य – पृ. 90
171. दोहा कोश – राहुल जी – पृ. 24
172. दोहा कोश – गीति मूल पृ. 10
173. चर्यागीतिकोश – पृ. 47
174. वही पृ. 38
175. वही पृ. 12
176. वही पृ 6
177. गो. बा. पृ. 152–53

मृतक पशु शूद्र के प्रति उच्चारण करने लगा है। शस्त्र काटा जा रहा है और देवता पूजा कर रहे हैं। राजा–प्रजा की सेवा में प्रवृत्त हो गया है ऐसी अवस्था में ढकणी नीचे और झाल ऊपर की ओर करना चाहिए। इससे अमृत रसनिःशेष नहीं होगा और काल–सीमा का अतिक्रमण हो सकेगा। गोरख ने दीपक प्रज्वलित कर प्रकाश किया है और सिर पर पहाड़ उठा लिया है।

इसका सांकेतिक अर्थ है– आमवृक्ष (मायाकृत रचना) कोकिला (सूक्ष्म मनोवृत्ति) मौरी (आनंदावस्था) धरती (कुण्डलिनी) गगन (ब्रह्मरन्ध्र), गईयाँ (इन्द्रियाँ) सिंध (मन) मृतक पशु (जीवन मुक्त), शूद्र (यमराज) प्रजा (इन्द्रियाँ) ढकनी (शिरोभाग), झाल (ऊर्ध्वमुख कुण्डलिनी), महारस (ब्रह्मानंद) बंचेगा (वंचित होगा) काल (मृत्यु) दीपक (ब्रह्म ज्योति) पर्वत (दुर्लभ–कार्य)

नाथों ने प्रकृति पदार्थो को उनके विरोधी धर्मो के साथ निरूपित करके धर्म–विरोधी उलटबाँसी भी लिखी है। यथा –

लूण कहै अलूंणा बाबू, घृत कहे में रूषा।
अनल कहे मै प्यास भूवा, जल कहे मै भूखा।
पावक कहै मै जाहण भूवा, कपड़ा कहे मै नागा।
अनहद मृदंग बाजे, तहां पांगुल नाचण लागा। (गो. बा – पृ. 117–118)

गरीबनाथ की उलटबाँसी भी अवलोकनीय है –

पाताल की मींडकी, आकास जंत्र बजावे।
चंद सूरिज मिले गंग– जमन गीत गावे।
सति सति भाषत सिघ गरीब।[178]

इस प्रकार नाथों ने उपदेश–प्रधान, माया–विषयक, साधना–विषयक परीक्षा विषयक, प्रकृति–विरोधी आदि अनेक उलटबाँसियो की रचना की है। सिद्ध–नाथों ने उलटबासियाँ द्वारा उलटबाँसी साहित्य की भी रचना की है। सिद्ध–नाथों ने उलटबासियाँ द्वारा उलट बाँसी साहित्य की श्री वृद्धि की है, जिससे संत प्रभावित हुए हैं।

3.7.4 हिन्दी-संत एवं उलटबाँसी – हिन्दी निर्गुण संतों की वाणी के समान ही उनकी उलटबाँसियाँ भी बेजोड़ है। इनकी उलटबाँसियाँ प्राचीन परम्परा एवं सिद्ध–नाथों की उलटबाँसियों का परिवर्तित एवं परिष्कृत रूप है।

निर्गुण–संतों के साहित्य में निरूपित कतिपय उदाहरण देकर हम उनकी उलटबाँसी को समझने की चेष्टा करेंगे।

विरोधी धर्मो का संयोग करते हुए संत कबीर की एक अनूठी उलटबाँसी अवलोकनीय है। यथा –

एक अचंमा देखा रे भाई। ठाढ़ा सिंघ चरावै गाई।
पहलै पूत पीछेभई माई। चेला के गुरू लागै पाई।

---

178. नाथ सिद्धों की बानिया– पृ. 13

जल की मछली तरवर ब्याई। पकड़ि बिलाई मुरगै खाई।

बैलहि डारि गूनि धरि आई। कुत्ता कूं लै गई बिलाई।

तलि रि साखा ऊपरि करिमूल। बहुत बभांति जड़ लागै फूल।

कहै कबीर या पद कौ बूझै। ताकूं तीन्यू त्रिभुवन सूझै। (क.ग्र.पृ.11)

कबीर ने परम्परा से चली आ रही स्थितियों को विधि, नियम, लोक मर्यादा प्रणाली प्रचलित व्यवस्था के व्यतिक्रम को प्रश्रय दिया है, जो आश्चर्य को जन्म देने वाली है। सांकेतिक अर्थों के ज्ञाता ही इसे समझ सकते हैं।

गुरू नानक की वाणी में उपदेशात्मकता अधिक है गोपन प्रवृत्ति कम है। गुरू नानक का उलटबांसी मूलक कथन देखिये –

धर अम्बर बिच बेलड़ी, तहँ लाल सुगंधा बूल।

झक्खर इक नाँ आयौ, नानक नहीं कबूल। [179]

संत रैदास की वाणी में रूढ़ पारिभाषिक शब्दों एवं प्रतीकों के प्रयोग से उलटबाँसी शैली व्यंजित हुई है। यथा –

देहु कलाली एक पियाला, ऐसा अवधू है मतवाला।

हेरे कलाली तै क्या किया, सिरका सा तै प्याला दिया।

कहै कलाली प्याला देऊँ, पीवन हारे का सिर लेऊँ।

चंद सूर दोउ सनमुख होई, पीवै प्याला मरै न कोई।

सहज सुन्नमें भाठी सखै, पीवै रैदास गुरूमुख दखै। [180]

संकेतार्थ – कलाली (गुरू), पियाला (भक्ति तत्व), सिरका (तुच्छपेय) पीवन हारे (साधक) चन्दसूर (नाड़ियाँ) सिरलेऊँ (सर्वस्व बलिदान) शून्य (गगन शिखर) भाठी सरवै (सहस्रारचक्र से अमृत वर्षा) गुरू मुख (गुरू कृपा)

संत प्रवर दादू की वाणी में उलटबाँसियों का सीमित प्रयोग दिखाई देता है। उदाहरण स्वरूप प्रचलित मर्यादा प्रणाली के विपरीत क्रम में एक उलटबांसी देखिये –

मैने यह अंचभौ थाये।

कीड़ीये हस्ती विडोरयो, तेन्है बैठी षाये। [181]

सारांशतः हिन्दी–संतों ने अपनी वाणी द्वारा उलटबाँसी शैली को प्रश्रय दिया। उन्होंने इसे गोपन प्रवृत्ति हेतु नहीं अपनाया। वे इसके माध्यम से वास्तविक सत्य से सामान्य जन को अवगत कराते हैं। विस्मय–विमुग्ध करने वाली वाणी लोगो को प्रभावित करती है। संत इस तथ्य से परिचित थे, तभी उन्होंने जनता को वस्तु स्थिति से अवगत कराने हेतु इस शैली को हथियार रूप में प्रयुक्त किया।

---

179. संत बानी सग्रह (प्रथम भाग) पृ. 70

180. संतबानी संग्रह (भाग – 2) पृ. 33

181. दादूवाणी – चन्द्रिका प्रसाद पृ. 448 – पद 213

3.8 निर्गुण-भक्ति

3.8.0 निर्गुण भवित्त भारतीय दार्शनिक–चिन्तन की बहुमूल्य निधि है। सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी–संतों की निर्गुण–भक्ति के विवेचन से पूर्व निर्गुण के आशय को जानना आवश्यक होगा।

3.8.1 निर्गुण अर्थ/आशय – गुणन्निर्गत[182] से निर्गुण की उत्पत्ति हुई है जिसका अर्थ है – सत्त्व, रजस् और तमस् (त्रिगुण) गुणों से मुक्त।

इस प्रकार निर्गुण शब्द अपने पारिभाषिक अर्थों में त्रिगुणों व रूप से अतीत कहे जाने वाली अनिर्वचनीय सत्ता की बोधक सत्ता है जिसे परमतत्त्व, ब्रह्म आदि संज्ञाओं से भी अभिहित किया जाता हैं।

3.8.2 सिद्ध-नाथ एवं निर्गुण भक्ति – सिद्ध–नाथ साधकों ने ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप का चित्रण कुशलता के साथ किया है। इनकी निर्गुण भक्ति का आधार पूर्ववर्ती साहित्य–परम्परा तो रहा ही साथ ही साथ तद्युगीन धार्मिक, रूढ़ियों, आडम्बरों, कुरीतियों से निर्बल होते धर्म में निर्गुण की प्रतिष्ठा कर इन्होंने उसे सर्वग्राह्य स्वरूप प्रदान करने की महान् चेष्टा की।

3.8.2.1 शून्य-निरंजन – सिद्धों ने शून्य को अद्वय तत्त्व माना एवं अभाव तथा भाव दोनों का परित्याग कर उसे मध्यम तत्त्व रूप में स्वीकार किया। सिद्धों ने परमपद (ब्रह्म) हेतु सबसे पहले लोक–भाषा में शून्य निरंजन का प्रयोग किया।[183] इसी का अनुसरण करते हुए सरह कहते हैं –

सुण्ण णिरञ्ण परम पउ सुइणोमाउ सहाव
भावहु चित्त सहावता, जउ णासिज्जइ जाव। [184]

वह शून्य निरंजन परम–पद अक्षर–वर्ण विवर्ज़ित है, वह परम महासुख है जो न त्याज्य है, न ग्राह्य है। अपार श्रद्धा वालों के लिए ही साध्य है –

अक्खर–वण्ण विवज़िउ णउ बिन्दुण चित्त।
एहु सो परम महासुह, णउ फेडिय णउ खित्त। [185]

वज्रयानी बौद्ध–सिद्धों ने आदि बुद्ध को ही निरंजन कहा। निरंजन स्वभाव निर्लिप्तता का बोधक है। यहसमस्त द्वयताओं, द्विधाओं, क्लेश, विकल्पादि मलावरणों से निरावृत्त, शुद्ध सहज रूप है, तभी तो वह अंजन रहित निरंजन है। जिसे करोड़ो साधकों में से कोई एक ही पाता है। यह निरंजन सहजपद है।[186] यथा –

लो अह गब्ब सुमुब्बहइ हउँ परमत्थे पबीण।
कोडिइ मज्झें एक्कु जइ होइ निरज्जण लीण।

---

182. कबीर : जीवन और दर्शन – उर्वशी सूरती पृ. 145
183. दोहाकोश – राहुल जी, पृ. 36
184. उपरिवत् – पृ 30/139 (दोहाकोश गीति मूल)
185. उपरिवत् – पृ 30/141
186. सहजसिद्ध – पृ. 156 से लिया गया

नाथ–सम्प्रदाय में निर्गुण शब्द का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। यथा –

निर्गुणाज्च शिवं शान्तं गगने विवतोमुखम्।

भ्रूमध्ये दृष्टिमादाय ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत। [187]

'नाथ निरंजन आरती गाऊ'[188] द्वारा नाथों ने निरंजन (निर्गुण ब्रह्म) के प्रति भक्ति दर्ज करायी हैं। नाथों ने कहा है कि यह निरंजन स्वरूप विहीन है। इसके न डाल है न मूल है यह न सूक्ष्म है, न स्थूल है यह सर्वव्यापक है। यथा –

सोईनिरंजन डाल न मूल, सब व्यापीक सुषमन अस्थूल। [189]

3.8.2.2 सहज स्वरूप – सिद्ध कृष्णपाद सहज को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि यह सहज वाक्पथातीत है भला इसे कोई कैसे कहे–

जो मणगोअर आला जाला। आगम पोथी इष्टा माला।

भण कैसे सहज बोला बाजाय। काअ वाकचिक जसुण समाअ।

आले गुरू उएसइ सीस। वाक्पथातीत कहीब कीस। [190]

सिद्ध–साहित्य में सहज को श्रवणों से अश्रव्य, दृष्टि से अदृश्य, पवन से अस्पृश्य और अकंप, अग्नि से अदाह्य, धन वर्षण से नभीगने वाला और समरस आनन्द बताया है –

संकपास तोउउ गुरू वअणे। न सुगइ सोणउ दीसइ न अणें।

पवन बहन्ते णहु सो हल्लई। जलन जलन्ते नउ सो उज्झइ।

धणि वरिसन्ते णहु सोम्मइ। नउ वज्जइणउ खअहि पइस्सर। [191]

नाथ साधकों ने इस सहज शब्द को परम तत्त्व के रूप में अपनाया है। यथा–

दुविध्यामेटि सहज में रहे ऐसा विचार मछिन्द्र कहै।

सहज सुनि मन तन थिर रहे ऐसा विचार मछिन्द्र कहै। [192]

निर्गुण भक्ति के अन्तर्गत नाथों ने सहज को परम सत्ता मानते हुए कहा है। यथा –

अवधू रात न होती दिन सहजै आया।

दिन प्रसरया राति सहजै समाया। [193]

3.8.2.3 परमपद स्वरूप – सिद्ध–नाथों ने ब्रह्म–पद को परमपद स्वरूप माना है। सिद्ध उस निर्गुण परम पद के लिए कहते हैं कि उसका स्थान वहाँ है जहाँ पवन, रवि–शशिका प्रवेश नहीं, अतः वही मन लगाने का उपदेश देते हैं। यथा–

---

187. सिद्ध सिद्धात पद्धत्ति कल्याणी बोस, 1954 पूना पृ. 70
188. गोरखबानी – बड़थ्वाल पृ. 154
189. उपरिवत् – पृ. 39
190. सहज सिद्ध– पृ. 114 से लिया गया।
191. उपरिवत् – पृ. 114–115
192. हिन्दी काव्यधारा – राहुल जी पृ. 169
193. गो. बा. – मछीन्द्र गोरखनाथपृ. 189/30

जहं मन पवन न संचरै, रवि शशि नाहिं प्रवेश।

तहं मूढ़ चित्त विश्राम करू, सरह कहेउ उपदेस। [194]

सिद्धों के परमपद (ब्रह्म) सर्वातीत[195] सर्वव्यापक[196] हैं।

सिद्धों की परिपाटी के अनुकर्त्तानाथों ने भी ब्रह्म को परम पद कहकर निर्गुण भक्ति का उपदेश दिया है।

3.8.2.4 शब्द-स्वरूप – शब्द ब्रह्म की प्राचीन धारणा को अपना गोरखनाथ अनहद नाद से नाद ब्रह्म (शब्द) तक की प्रत्यक्ष अनुभूति की बात करते हैं। यथा –

सबदहि ताला सबदहि कूँची, सबदहि सबदजगाया।

सबदहिंसबद सूं परचा हुआ, सबदहिं सबद समाया। [197]

सबद बिंदौ रे अवधू सबद बिंदौ[198] की घोषणा करते हुए नाथों ने शब्द साधना रूप में निर्गुण भक्ति का उपदेश दिया है।

3.8.2.5 अनिर्वचनीय तत्त्व-रूप – सिद्ध कृष्णपाद ने ब्रह्म का (सहज) वाक्पथातीत[199] कहकर उसकी अनिर्वचनीयता का उद्घाटन किया है। नाथों ने निर्गुण अगम–अगोचर ब्रह्म के अनिर्वचनीय स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है –

बसती न सुन्यं सुन्यं न बसती, अगम अगोचर ऐसा।

गगन–सिषर महिं बालक बौलै ताका नांवधरहुगे कैसा। [200]

नाथों के निर्गुण ब्रह्म अगम, गोचर, निष्काम है, जो महाशून्य में निवास करते हैं निर्गुण भक्ति का मार्ग प्रशस्त करते हुए वे कहते हैं कि जब तक चंचल मन पर पूर्ण अधिकार न होगा तब तक ब्रह्म सानिध्य सम्भव नहीं।[201]

सारांश रूप में सिद्ध–नाथों ने निर्गुण भक्ति को अपनाया तथा उसका उपदेश सामान्य जन को देकर तद्युगीन धार्मिक विकृतियों पर प्रहार किया। सगुण भक्ति जन सामान्य के लिए दुर्लभ हो चली थी। ऐसे में इन्होंने तद्युगीन सगुण–भवित में आबद्ध रूढ़ियों, कुरीतियों की प्रतिक्रिया स्वरूप निर्गुण–भक्ति में आस्था प्रकट की। जिसे परवर्ती संतों–साधकों ने अपना कंठहार बनाया।

---

194. दोहा कोश – पृ. 13/49 (दोहा कोश गीति छाया)
195. आइण तन्त ण मज्झतहंणउ भव णउ णिव्वाण
  एहु सो परममहामुह णउ पर णउ अप्पाण। – दोहाकोश पृ. 12
196. अग्गे पच्छे दस दिस जं जं जोअमि ओवि।
  ऐव्वे तु दीठन्त डी, णाह ण पुच्छमि कोवि। – उपरिवत्
197. सबदी – शार्दूल सिंह कविया पृ. 7/21
198. उपरिवत् – पृ. 33/124
199. सहजसिद्ध– पृ. 114
200. सबदी – शार्दूलसिंह जी पृ. 2/1
201. अगम अगोचर रहै निहकाम, । भवर गुफा माहीबिसराम
  जुगति न जाणै जागैं राति, मन काह कैं न आवै हाथि – उपरिवत् पृ. 35/132

3.8.3 हिन्दी-संत एवं निर्गुण-भक्ति

हिन्दी के संतों ने अपनी वाणी के माध्यम से निर्गुण–भवित्त की अभिव्यवित्त की हैं। इन्होंने निर्गुण ब्रह्म को भजकर उसी के माध्यम से निर्गुण भवित्त की अजस्र मंदाकिनी प्रवाहित की है।

3.8.3.1 शून्य-निरंजन – संतों के ब्रह्म शून्य निरंजन रूप हैं। इसी का अनुमोदन कबीर ने इन शब्दों के माध्यम से करके शून्य ब्रह्म में मनुष्य को लीन रहने का उपदेश दिया है। यथा –

जीवत मरै मरै पुनि जीवैं ऐसे सुन्नि समाया। [202]

इसी शून्य की अभिव्यवित्त रैदास करते हैं। यथा –

कहै रैदास सहज सुन्न सत जिवन मुक्तनिधि कासी। [203]

संत–प्रवर दादू दयाल भी शून्य रूपी ब्रह्म को सभी जीवों में रहने वाला बताते हैं। यथा –

सहज सुनि सब ठौर है सब घट सबही माही। [204]

संत ब्रह्म को निरंजन अभिधान प्रदान करते हुए उसे निर्गुण, निराकार, अगम, अगोचर, अक्षय स्वरूप मानते हैं। संत कबीर इसी शब्द को कुछ इस प्रकार कहते हैं –

जा मै मरै न संकृटि आवै नावं निरंजन जाकौ रै (क. ग्र. पद–48)

संत रैदास भी माया से निर्लिप्त निर्गुण ब्रह्म को निरंजन कहकर उसके प्रति भक्ति–भाव प्रदर्शित करते हैं। यथा –

आविगत नाम निरंजन देवा।[205]

2.8.3.2 सहज स्वरूप – संतों का निर्गुण ब्रह्म सहज स्वभाव वाला है। कबीर सहज स्वरूप निर्गुण ब्रह्म में अद्वैत ब्रह्म का प्रतिपादन इस प्रकार करते हैं। यथा –

कहि कबीर मन सरसी काजि
सहजसमानोतोभरम भाजि। [206]

संत–प्रवर दादू ने भी सहज रूप में अद्वैत ब्रह्म के प्रति भवित्त–भाव को प्रेषित किया है और वे उसी सहज में समाने की बात कहते हैं।[207]

इसी सहज स्वरूप ब्रह्म के बिना सिद्धि प्राप्ति सम्भव नहीं होती। ऐसा कहकर रैदास युगीन जन को सहज की भवित्त का उपदेश देते हैं। यथा–

भाईरे सहज बंदा लोई, बिन सहज सिद्धि न होई। [208]

---

202. क. ग्र. पृ. 291
203. रैदास जी की बानी – पृ. 25
204. श्री दादू वाणी – पृ. 100 / 56
205. संतरैदास व्यक्तित्व एव कृतित्व पृ. 141
206. क. ग्र. पृ. 301
207. ज्ञान गहै गुरूदेव का, दादू सहज समाइ श्री दादू वाणी पृ. 5 / 23
208. संतरैदास व्यक्तित्व एवं कृतित्व – पृ. 121

2.8.3.3 शब्द-स्वरूप – अनहद सबद होत झंनकार[209] द्वारा कबीर निर्गुण की परम्परा का अनुमोदन करते हैं।

संत–प्रवर दादू शब्द ब्रह्म की सर्वव्यापकता, सर्वसामर्थ्य का उद्घाटन करते हुए कहते हैं कि शब्द ब्रह्म में सभी बंधे हैं सभी उससे उत्पन्न हुए हैं और अंत में सभी उसी में लीन होंगे। यथा –

दादू शब्दै बंध्या सब रहै, शब्दै ही सब जाइ
शब्दै ही सब ऊपजै, शब्दै सबैसमाइ। [210]

सबदि मर तिसु निज परिवासा।[211] द्वारा गुरु नानक शब्द ब्रह्म की पुष्टि करते हैं।

2.8.3.4 अनिर्वचनीय स्वरूप – संतो ने निर्गुण ब्रह्म का निरूपण अनिर्वचनीय तत्त्व के रूप में किया हैं। संतों का निर्गुण ब्रह्म ऐसा है जिसको परिभाषित करना संभव नहीं। वह तो निराकार, गुणातीत, निरंजन, अगम, अगोचर है। ऐसे निर्गुण ब्रह्म को निर्गुणात्मक विशेषणों द्वारा संतों ने विशिष्ट बना दिया है।

संत कबीर निर्गुण ब्रह्म को तत[212], परमपद[213], अनूपतत[214], निजतत[215], आदि शब्दों का सहारा देते हैं। वास्तविकता यह है कि उक्त नामों द्वारा वे निर्गुण ब्रह्म की अनिर्वचनीयता को ही उद्घाटित करने का सार्थक प्रयास करते हैं।

कबीर का निर्गुण ब्रह्म तो रूप–रंग विहीन तो है ही साथ ही वह पुष्प सुरभि से भी महान है –

जाके मुह माथा नहीं, नाही रूप करूप
पुहुप बास तै पातरा, ऐसा तत्त्व अनूप। [216]

ऐसा राम हमारे आवै वार पार कोइ अन्त न पावै[217] द्वारा संत दादू ब्रह्म का अनिर्वचनीय स्वरूप दिखाते हैं।

संत रैदास भी ब्रह्म को अनिर्वचनीय मानते हैं। वह निर्गुण ब्रह्म तो अपने जैसा आप ही है। उसे भला किसकी उपमा दी जाए कह कर संत रैदास ब्रह्म के अनिर्वचनीय स्वरूप को वाणी द्वारा निरूपित करते हैं।

---

209. क ग्र. – पृ 269
210. श्री दादू वाणी – पृ. 500
211. नानक वाणी – पृ 226
212. तत पाया तन बीसज्या – क ग्र. – पृ. 15 / 32
213. कहै कबीर परम पद पाया – उपरिवत् – पृ. 154 / 196
214. ऐसा तत्त अनूप – क. ग्र. – पृ. 163 / 220
215. कहणी रहणी नि ततजाणै – पृ. 142 / 162
216. उपरिवत् पृ. 60
217. श्री दादू वाणी – पृ. 500 / 54

कह रविदास अकथ कथा, बहु काइ करीजै।

जैसा तू तैसा तूही, किआ उपमा दीजै। [218]

हिन्दी–निर्गुण संत, रूप न रेख वरण कहूँ कैसा[219] द्वारा निर्गुण ब्रह्म की अनिर्वचनीय स्वरूप के प्रति 'तिन चरणों चित्त रह्या'[220] समाइ का उपदेश लोगों को देते हैं।

सारांशतः हिन्दी के निर्गुण–संतों ने निर्गुण–भक्ति की प्राचीन परम्परा को विस्तार दिया है। जिसमें सिद्ध–नाथों की निर्गुण–भक्ति के प्रभाव को आत्मसात करके तद्युगीन परिस्थितियों–परिवेश के ढाँचे में ढाल कर उसके अभिनव स्वरूप द्वारा युगों को आलोकित किया हैं। इन युग–प्रर्वतकों ने निर्गुण भवित्तमें निष्काम भाव, सदाचार, जीवन–मूल्यों के रंग मिला कर निर्गुण–भक्ति को रंगीन चटकदार बना दिया है तथा सभी के लिए निर्गुण–भक्ति के बुलन्द दरवाजा रूपी द्वार खोल दिए।

------

218. संतरविदास विचारक और कवि पृ. 103

219. श्री दादू वाणी – पृ. 476

220. उपरिवत् – पृ. 476

चतुर्थ-अध्याय

सिद्ध-नाथ और हिन्दी सन्तों का धार्मिक चिन्तन

4.0 धर्म सम्पूर्ण सृष्टि की प्रतिष्ठा है। धर्म एवं मानवता दोनों सहोदर हैं। भारतीय संस्कृति और सभ्यता की सुदृढ़ नींव मानवतावादी एवं मंगलकारी धर्म पर आरूढ़ है। जगत् के प्राणियों के कल्याण का एक मात्र आधार धर्म ही है। ऋषि–महर्षियों का यह सुनिश्चित निर्भ्रान्त निर्णय ही भारतीय संस्कृति में धर्म को सर्वोपरि बनाता है। सिद्ध–नाथ और हिन्दी–संतों के धार्मिक चिन्तन के विवेचन से पूर्व धर्म के अर्थ, आशय, स्वरूप तथा ऐतिहासिक विकास का अवलोकन करना आवश्यक है; क्योंकि यही वह आधार है जिससे इन सत्पुरूषों का धार्मिक चिन्तन निर्मित हुआ है।

4.0.1 धर्म का अर्थ/आशय – 'धृञ्' धातु से निष्पन्न 'धर्म' शब्द का अर्थ है – धारण करना, पालन करना, आश्रय देना। ''धृञ्–धारणे' धातु में 'मन्' प्रत्यय लगाने पर धर्म शब्द निर्मित हुआ है।[1] धार्यत इति धर्मः अर्थात् धर्म का अर्थ है धारण करने वाला। 'अमर कोष'[2] में धर्म को अनेकार्थी बताया हैं।

वेदों में जिन कर्मो का विधान है वही धर्म है और उसके विपरीत कर्म अधर्म है।[3] धर्म की प्रथम व्याख्या वेदों में ही प्राप्त होती है। ऋग्वेद में धर्म को परमब्रह्म द्वारा सृष्टि में कर्म समूहों के रूप में स्थापित करने का उल्लेख मिलता है।[4] ऋग्वेद में अन्यत्र कहा गया है –

---

1. धर्मशास्त्रांक (कल्याण) धर्म तत्त्व मीमांसा प. जानकी नाथ शर्मा, पृ. 131।
2. (क) स्याद् धर्मम स्त्रिययॉ पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृष। मुत्प्रीति प्रमोदो हर्ष प्रमोदामोद समदा। (श्लोक सं – 24)
   (ख) श्रुति स्त्री वेद आम्नायस्त्रयी धर्मस्तु तद्विधः। स्त्रियामूक सामयजुषी इति वेदास्त्यस्त्रयी। (श्लोक सं. 3)
   (ग) धर्मा पुन्यमन्याय स्वभावाचार स्वभावाचार सोमपा। उपायपूर्ण आरम्भ उपधा चाप्युपक्रम। (श्लोक– 139)
3. वेदप्रणिहितो धर्मोह्याधर्मस्तपिर्यय। (श्रीमदभागवत 3/2/40)
4. त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः
   अतो धर्माणि धारयन्। ऋक–संहिता 1/22/18

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। [5]

अर्थात् यज्ञ के द्वारा यज्ञपुरूष की देवताओं ने पूजा की थी, वह प्राथमिक धर्म था। इस प्रकार ऋग्वेद में धार्मिक विधियों, जगन्निवहिक कर्म समूहों को धर्म बताते हुए विवेचन किया। अथर्ववेद में धर्म का अर्थ धार्मिक आचार द्वारा मिलने वाला पुण्य है।[6] ऋग्वेद में वर्णित धर्म (धार्मिक क्रिया–कर्म) का स्वरूप उपनिषदों में विस्तृत अर्थ प्राप्त करता नजर आता है।

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात् कृताकृतात्[7]

इस मंत्र में शास्त्रीय अनुष्ठान को धर्म कहा है।

सत्यं वद। धर्मं चर।[8] यहाँ सत्य बोलो। धर्म (अनुष्ठेय कर्म) का आचरण करो। यहाँ धर्म अनुष्ठेय कर्म का अर्थ देता है।

छन्दोग्योपनिषद्[9] में कहा है – जो कोई साधुगण विशिष्ट रूप में साम की उपासना करता है, उसके पास सारे उत्तम धर्म (पुण्य समूह) अति शीघ्र आ जाते हैं यहाँ धर्म शब्द पुण्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

वैशेषिक दर्शन में कणाद मुनि ने धर्म को परिभाषित करते हुए कहा है – धर्म वह है जो हमें सम्पूर्ण विनाश और अधोगति से बचाकर अभ्युदय और निःश्रेयस प्रदान करे। यथा –

यतोऽभ्युदयः निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। [10]

ऐतरेय ब्राह्मण में सम्पूर्ण धार्मिक कर्तव्यों को धर्म रूप में परिभाषित किया है। यथा –

धर्मस्य गोप्ताजनीति तमभ्युत्कृष्टमेवं विदिभिषेक्ष्यन्नेतयार्चाभिमन्त्रयेत। [11]

भगवान मनु एवं उनके धर्म–शास्त्र का भरतीय वाङ्मय में विशेष स्थान हैं। उन्होंने मानव–संस्कृति के निर्माण हेतु जिस मनुस्मृति की रचना की वही मानव–जाति का आदि संविधान है।

मनुस्मृति में मनुष्य को सही अर्थों में मनुष्य बनाना, सभी के लिए वेदशास्त्रोक्त धर्म का निरूपण करने का महनीय कार्य मनु ने किया है। मनु स्मृति में धर्म का अर्थ

5. ऋग्वेद – 10/90/16
6. अथर्ववेद – 11/9/17
7. कठ 1/2/14
8. स च एतदेव विद्वान.....। छन्दोग्योपनिषद 2/1/4
9. कल्याण – धर्मशास्त्राक, पृ. 110
10. ऐतरेय ब्राह्मण 7/17
11. मनुस्मृति – 1/2

वर्णाश्रम विहित कर्त्तव्य है। मनु आचार, नैतिकता को परम धर्म बताते हैं।[12] अन्य स्थान पर मनु ने सत्य वचन को धर्म की संज्ञा दी है।[13]

मनु ने धृति (धैर्य, संतोष), क्षमा, दम (मनोविग्रह) अस्तेय (अचौर्य) शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी (कर्त्तव्याकर्तव्यविवेक), विद्या (आत्म–ज्ञान) सत्य और अक्रोध – इन दसों लक्षणों को धर्म माना है।[14]

मनु चारों वर्णो द्वारा उपर्युक्त दशविध धर्म को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच और इन्द्रिय निग्रह रूप को पंच विध रूप में चारों वर्णो के लिए इसका पालन अपेक्षित बताया है। यथा –

अहिंसा, सत्यमस्तेयं, शौच मिन्द्रियनिग्रह

एवं सामासिकं धर्म चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनु।। [15]

श्रीमद्भागवत वेदों में बताए कर्मो को धर्म की संज्ञा देते हुए अन्य कर्मो को अधर्म की संज्ञा देता है।[16]

धर्म की परिभाषा करते हुए महाभारत में बताया गया है कि 'धारण करना[17]' धर्म का अर्थ है।

महाभारत के ही शांतिपर्व में धर्म की महनीयता एवं व्यापकता की ओर संकेत करते हुए कहा गया है[18] वेदों के द्वारा धर्म का विधान किया गया है जो अदृश्य फल देने वाला है सद्वस्तु के आलोचन (तपः) का फल मरण से पूर्व ही प्राणी को मिलता है अर्थात् ज्ञान दृष्टफल है। धर्म के द्वार बहुत से हैं, जिनसे वह अपनी अभिव्यक्ति करता है। धर्म की कोई भी क्रिया विफल नहीं होती – धर्म का कोई भी अनुष्ठान व्यर्थ नहीं। अतः धर्म का आचरण सर्वथा श्लाघनीय है।

अधर्म का आचरण करने से मनुष्य की जो श्रीवृद्धि दिखाई देती है, वह क्षणिक होती है, परन्तु अंत में वह समूल नाश को प्राप्त होता है –

---

12. आचारःपरमो धर्मः श्रुयुक्त स्मार्त् एवं च। तस्मादस्मिन्द।युक्तों नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः ।। मनु. अध्याय 1/108 श्लोक।
13. 'सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात सत्यम प्रियं।
14. धृतिः क्षमा दमोअस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विधा सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।। मनु. 6/92।
15. मनु 10/63
16. वेद प्रणहितो धर्मो द्रधर्मस्तद्विवपर्ययः। वेदो नारायणः साक्षात्स्वयम्भूरिति शुश्रुम
अध्याय – 6/श्लोक 44 श्रीमद्भागवत
17. धारणाद्दर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः
यस्माद् धारणं संयुक्तं स धर्म इति निश्चयः। महाभारत कर्ण पर्व 69,59
18. सर्वत्र विहितो धर्मः स्वर्ग्यः सत्यफलं तपः।
बहुद्वारस्य धर्मस्य नेहास्ति विफला क्रिया।। शांतिपूर्व 174/2

वर्धत्यधर्मेण नरस्ततो भद्राणि पश्यति।

ततः सपतान्जयति समूलस्तु विनश्यति।। [19]

महाभारत में धर्म–अधर्म की विशद व्याख्या करने के साथ ही मानव जीवन का सार 'धर्म' को बताया है। धर्म का साम्राज्य विस्तृत, व्यापक एवं सार्वभौम बताया गया है।

4.0.2 धर्म के लक्षण – देवर्षि नारद के मतानुसार महापुरूष की आज्ञा के अनुसार कर्म करना धर्म है।[20]

नारद जी ने युधिष्ठिर की धर्म–विषयक जिज्ञासा के शमन हेतु धर्म के त्रिंशल्लक्षण इस प्रकार विस्तार से विवेचित किए हैं सत्य, दया,तपस्या, शौच, तितिक्षा, उचित–अनुचित का विचार, मन का संयम, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा– ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, संतोष, समदर्शी महात्माओं की सेवा, धीरे–धीरे सांसारिक भोगों की चेष्टा से निवृत्ति, मनुष्य के अभिमान पूर्ण प्रयत्नों के परिणाम की विपरीतता को देखना, मौन, आत्मचिन्तन, प्राणियों को अन्न आदि का यथायोग्य विभाजन, उनमें और विशेष करके मनुष्यों में अपनी आत्मा तथा इष्टदेव का भाव, संतों के परम आश्रय भगवान् श्री कृष्ण के नाम, गुण, लीला आदि का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, उनकी सेवा, पूजा और नमस्कार, उनके प्रति दास्य, सख्य और आत्मसमर्पण – तीस प्रकार का आचरण सभी मनुष्यों का परम धर्म है इसके पालन से सर्वात्मा भगवान् प्रसन्न होते हैं।[21]

धर्माचार्य मनु ने जीवन में दस पदार्थों के धारण को 'धर्म' की संज्ञा देते हुए धर्म के दस लक्षण बताए है।[22] .... ।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्यासत्यम क्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।

उपर्युक्त दस लक्षणों का विस्तार इस प्रकार है –

(1) धृति – चित्त में धैर्य धारण करना, दुःख होने पर उद्विग्न न होना, धर्म से स्खलित न होना, अपने धर्म पर अटल रहना, अनुद्विग्नभाव से कर्त्तव्य पालन करना।

---

19. वन पर्व 94/4
20. धर्मशास्त्राक (कल्याण) पृ. 58
21. सव्यंदया तपः शौच तितिक्षेक्षा शमो दमः। अहिंसा ब्रह्मचर्य च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्।।
संतोषः समदृक सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः। नृणांविपर्ययेहेक्षामौनमात्मविमर्शनम्।।
अन्नाद्यादेः संविभागोभूतभ्यश्चयथार्हतः। तेष्वात्मदेवता बुद्धिः सुतरां नृपु पाण्डव।।
श्रवणं कीर्तनचास्य स्मरणं महता गतेः। सेवेज्यावनतिर्दास्य सख्यमात्मसमर्पणम्।।
नृणामयं परोधर्मः सर्वेषां समुदाहृतः। त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति।।
(श्रीमद्भागवत– सप्तम स्कन्ध, अध्याय 11, श्लोक 8–12)
22. मनुस्मृति – 6/92

(2) क्षमा – दूसरे के अपराध को सह लेना, क्रोधोत्पत्ति के कारण उपस्थित होने पर भी क्रोध न करना, अपकार का बदला न लेना, द्वन्द्व सहिष्णुता, अपमान सह लेना, शांति।

(3) दम – उद्दण्ड न होना, तपस्या करने में जो क्लेश हो उसे सह लेना, मन को निर्विकार रखना, मन को रोक रखना, मन को मनमानी न करने देना।

(4) अस्तेय – दूसरे की वस्तु में स्पृहा न होना, अन्याय से परधनादि को ग्रहण न करना, पर–द्रव्य को न लेना।

(5) शौच – आहार की पवित्रता, स्नान–मृत्तिकादि से शरीर को शुद्ध रखना, शास्त्र की रीति से शरीर को शुद्ध रखना, बाह्याभ्यन्तर की पवित्रता।

(6) इन्द्रियनिग्रह – इन्द्रियों को विषयों में प्रवृत्त न करना, इन्द्रियों को उसके विषय से पृथक् रखना, जितेन्द्रिय होना।

(7) धी – भली भाँति समझना, प्रतिपक्ष के संशय का निवारण करना, आत्मोपासना, शास्त्र के तात्पर्य को समझना, बुद्धि का अप्रतिहत होना।

(8) विद्या – आत्मानात्यविषयक विचार, बहुश्रुत होना, आत्मोपासना।

(9) सत्य – मिथ्या अहित कारी वचन न बोलना, यथार्थ बोलना।

(10) अक्रोध – क्षमा करने पर भी कोई अपकार करे, तब भी क्रोध न करना, दैव वश क्रोध उत्पन्न होने पर उसको रोकने का प्रयत्न करना, अपने मनोरथ में बाधा डालने वालों के प्रति भी चित्त का निर्विकार होना।[23]

धर्म एक अतिन्द्रिय पदार्थ है, अतः धर्म की पहचान उसके लक्षणों द्वारा ही सम्भव है। वेदों, उपनिषदों, स्मृतिग्रंथों, ब्राह्मणग्रंथों, वेदज्ञ विद्वानों द्वारा धर्म की अनेकानेक परिभाषा प्रस्तुत की गई है। उन्हीं के आधार पर धर्म के लक्षणों का निरूपण भी हुआ है। इन सभी अभिमतों का सार मत यही है कि सदाचार ही श्रेष्ठ धर्म है। धर्म के ये उदार, व्यापक लक्षण ही धर्म को सार्वकालिक, सार्वदेशीय बनाते हैं।

4.0.3 धर्म सम्बन्धी समस्त मतों का निष्कर्ष – उपर्युक्त परिभाषाओं एवं धर्म के लक्षणों से स्पष्ट हो जाता है कि जो सबको धारण करे, जिससे अभ्युदय तथा निःश्रेयस की सिद्धि हो वही धर्म है। व्यक्ति, समाज एवं देश की परिस्थितियाँ सदैव एक सी नहीं रहती; वरन् परिवर्तित होती रहती हैं। अतः धर्म का एक निश्चित स्वरूप सभी के लिए सभी परिस्थियितों में अभ्युदय, निःश्रेयस सिद्धि कारक रहे, यह असम्भव है। अतः धर्म एक होकर भी अनेक रूपा है।[24] समय के साथ धर्म के स्वरूप में आए परिवर्तन का कारण भी यही है। अतः धर्म के दो पक्ष माने जा सकते हैं।

---

23. धर्मशास्त्रांक (कल्याण) पृ. 56–57
24. धर्मशास्त्राक (कल्याण) पृ. 82

1. सामान्य धर्म, या सनातन धर्म या शाश्वत धर्म,
2. विशेष धर्म या असामान्य धर्म या अशाश्वत धर्म।[25]

(1) सामान्य धर्म अथवा शाश्वत धर्म – वह है जो अनादि, अनन्त है, जो सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर सृष्टि–प्रलय काल तक रहेगा। इसके नियम सबके लिए समान हैं। श्रीमद्भागवत् के सप्तम स्कन्ध, ग्यारहवें श्लोक में सभी मनुष्यों के लिए सनातन धर्म को बताया गया है।

(2) विशेष धर्म अथवा अशाश्वत धर्म – विशेष धर्म देशकाल एवं व्यक्ति की सीमाओं में बंधा होता है। विविध परिस्थितियों, कालों, जातियों एवं विविध देशों में धर्मों के अन्तर का कारण यही धर्म का विशेष स्वरूप ही है।

सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट हो चुका है कि धर्म सर्वकल्याणकारी है। धर्म चाहे वह शाश्वत हो या अशाश्वत, धर्म शब्द का अर्थ व्यापक है। मनुष्य के मानवीय गुणों में श्रीवृद्धि कर, उसे ऊर्ध्वमुखी देवत्व के स्तर पर प्रतिष्ठित करता है। धर्म मनुष्य का आत्मपरिष्कार कर स्वस्थ समाज की अधिरचना में सहायक रहा है।

धर्म का अंकुश समाज को अमर्यादित – भ्रष्ट होने से सदैव रोकता रहा है। इस प्रकार धर्म के द्वारा समाज पर नियंत्रण बना रहता है; परन्तु जब धर्म के स्वरूप पर आघात होता है तो धर्म अपने वास्तविक अर्थ को खो देता है, जिससे धर्मारूढ़ समाज भी अनियंत्रित, अमर्यादित हो जाता है। जब धर्म ही विकृतियों से घिर जाए, अमर्यादित, दूषित पतित एवं पंकिल हो जाए, तो भला ऐसा धर्म समाज के लिए कहाँ तक और कब तक कल्याणकारी होगा? मध्ययुगीन धर्म भी तद्युगीन विषम परिस्थितियों के कारण अपने पावन स्वरूप से च्युत हो खोखला हो गया था। धार्मिक रूढ़िग्रस्तता ने अनेकानेक मत–मतान्तरों, धर्म की शाखा–प्रशाखाओं, पंथ–सम्प्रदायों, साधना–पंथों को पल्लवित होने का अवसर दिया। ऐसे घोर नैराश्य में सत्पुरूषों ने आशा के दीप प्रज्वलित कर धर्म के वास्तविक प्रकाश से अंधकारयुक्त वातावरण को अलौकिक आभा से जगमगा दिया।

सिद्ध–नाथ एवं संतों ने तद्युगीन प्रचलित धर्म की विविध शाखाओं, मतमतान्तरों आदि की रूढ़ियों, बाह्याचारों, का कड़े शब्दों में विरोध किया। उन्होंने धर्म के पावन, निर्मल एवं स्वस्थ स्वरूप को ग्रहण कर सार्वभौमिक मानवतावादी धर्म की स्थापना की। उन्होंने सनातन धर्म की मशाल प्रज्वलित कर धार्मिक जन आन्दोलन का अभियान छेड़ दिया, जिससे मानवतावादी धर्म की जडें जो विषम परिस्थितियों के कारण उखड़ने लगी थी, पुनः सुदृढ़ हो गई।

4.1 सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी-संत कालीन धार्मिक परिवेश

4.1.0 साहित्य समाज का दर्पण है, जिस पर युगीन मानवीय भावनाओं के विविध रंगी चित्र प्रतिबिम्बित हो उठते हैं। इन भावनाओं के पोषण में युगीन परिवेश की

25. मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर बौद्ध धर्मका प्रभाव – सरला त्रिगुणायत पृ. 21

अहम् भूमिका होती है। अतः सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी संतों (कबीर, नानक, रैदास व दादू) के धार्मिक चिन्तन की सम्यक् जानकारी हेतु तद्युगीन धार्मिक परिवेश, परम्पराओं एवं परिस्थितियों को उजागर करना परमावश्यक है।

4.1.1 सिद्ध कालीन धार्मिक परिवेश – सिद्ध–बौद्ध संतति है। बौद्ध–धर्म का आविर्भाव वैदिक धर्म में बढ़ती रूढ़ियों के प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। महात्मा बुद्ध के पश्चात् बौद्ध–धर्म संगठित नहीं रह पाया और इसके धर्म विचारकों के आपसी मतभेदों ने इसे शाखाओं–प्रशाखाओं में विभक्त कर दिया।

सिद्ध काल धर्म की दृष्टि से इस युग का संधि काल है। बौद्ध धर्म हीनयान एवं महायान नामक अपनी दोनों शाखाओं को चरम विकास तक पहुँचा कर अब नई दिशा की ओर मुड़ने की तैयारी में था। यह स्थिति केवल बौद्ध धर्म की ही न थी; वरन् भारतीय धार्मिक वातावरण को युगीन धार्मिक सम्प्रदाय, उपसम्प्रदायों के आपसी मतभेदों ने दूषित कर दिया था। अब समाज में नित नये धार्मिक एवं दार्शनिक सम्प्रदाय एवं मत–मतान्तर उभरने लगे थे। युगीन तांत्रिक लहर ने सम्पूर्ण सांस्कृतिक वातावरण को अपनी चपेट में ले लिया।

समाज में पाखंड, बाह्याचार, पुस्तकीय थोथा ज्ञान बढ़ता जा रहा था। ऐसे विषम समय में सिद्ध वाणी एक क्रांतिकारी आन्दोलन के रूप में प्रकट हुई। इनकी वाणी के माध्यम से युगीन घुटती ज्वाला धधक कर प्रज्वलित हो उठी। जिसने पाखंड, आडम्बर पुरोहितवाद, बढ़ता जातिवाद, पुस्तकीय थोथा ज्ञान, धार्मिक ठेकेदारों के निहित स्वार्थों, धार्मिक व्यावसायिकता को दग्ध कर सामान्य जनताको शीतलता प्रदान की। सिद्ध जन सामान्य के हितैषी थे, अतः इनके विद्रोह को लोकप्रियता मिली। सिद्धों ने तांत्रिक पद्धतियों को अपनाया तथा गुह्य साधनाओं को प्रश्रय प्रदान किया। 'इनका लक्ष्य द्वैत से मुक्ति और अद्वैत की प्राप्ति माना गया। इस साधना से सम्बंधित अवस्था विशेष को विभिन्न मतों में विभिन्न नाम दिए गए यथा अद्वय, मैथुन, युगनद्ध, थामल, समरस, युगल, सहज समाधि, शून्य समाधि या केवल समाधि। इन साधनाओं की अद्वैतवादी प्रेरणा के मूल में सामाजिक प्रेरणा भी आवश्यक थी। सच तो यह है कि धर्म साधना और व्यक्ति के बीच निहित व्यवधानों की निष्कृति से धर्म–साधना के क्षेत्र में सबको मुक्त बनाना ही इस साधना की पृष्ठभूमि थी।[26]

आलोच्य युग में विभिन्न धार्मिक मत–मतान्तरों ने धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता को बढ़ावा दिया। जिससे धार्मिक कर्म–काण्ड, पाखंड, बाह्याचार बढ़ने लगे और धर्म का व्यावसायीकरण होने लगा। विभिन्न धर्म–प्रधान धर्म की आड़ में अपनी सुविधा की खेती करने लगे। इससे जहाँ एक ओर धर्म का वास्तविक स्वरूप लुप्त हुआ, वहीं अनेक भ्रांतियों ने भी जन्म लिया। सामान्य लोग धर्म साधना के नाम पर कर्म–काण्डों, मिथ्याचारों का अनुसरण करने लगे।

26. कबीर – व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धांत – शर्मा पृ. 181

ऐसी विषम परिस्थितियों में जब सम्प्रदायों के मत–मतान्तरों, शाखा–प्रशाखाओं के व्यूह में धर्म फँस गया तो इन युगद्रष्टा, क्रांतिकारी जन प्रतिनिधि सिद्ध साधकों ने धर्म के निर्मल स्वरूप की रक्षा की।

4.1.2 **नाथकालीन धार्मिक परिवेश** – सिद्धों की साधनात्मक विकृतियों तथा तंत्रों के निरन्तर बढ़ते प्रभाव के फलस्वरूप सिद्ध साधकों का झुकाव पंचमकारों (माँस, मत्स्य, मैथुन, मद्य, मुद्रा) की ओर हुआ। सहज की उपलब्धि हेतु शून्यता का ज्ञान प्रज्ञा के रूप में सुन्दरी का प्रतीक बन गया।

तद्‌युगीन धर्म में स्वेच्छाचारिता, अतिवादिता, साधनाओं की आड़ में भोगवादी प्रवृत्ति का निरन्तर प्रचलन बढ़ता गया। धार्मिक व्यावसायिकता का रंग भी निरन्तर चटक होता चला गया। जिससे धर्म के साथ आडम्बर, रूढ़ियों का घनिष्ठ जुड़ाव हो गया। ऐसे विषम समय में नाथ साधकों ने शुद्ध शारीरिक, मानसिक आचार–विचार, सात्त्विक कर्मठ जीवन पर बल देकर, युगीन आडम्बरों का खण्डन किया।

इन्होंने धार्मिक कर्म–काण्ड, प्रतिद्वन्द्विता, बढ़ती व्यावसायिकता पर कुठाराघात करते हुए अपने परवर्ती सिद्ध–साधकों के समान विद्रोहात्मक प्रवृत्ति क्रांतिकारिता, दमन–मार्ग का परित्याग, अव्यावहारिक थोथे ज्ञान का विरोध, गुरू महिमा की महत्ता, कर्मकाण्डों का विरोध किया। जिसके पद–चाप परवर्ती काल तक सुनाई दिये।

4.1.3 **हिन्दी-संत कालीन धार्मिक परिवेश** – संतो का युग उथल–पुथल का युग था। धार्मिक कट्टरता, कर्म–काण्ड तथा आध्यात्मिकता के नाम पर विभिन्न मत–मतान्तर सामान्य जन को प्रभावित करने में लगे थे। इस्लाम ने अग्नि में घी का कार्य किया। मुस्लिम शासक थे, अतः अपने प्रभुत्व का पूरा फायदा उठाते हुए उन्होंने हिन्दुओं पर अत्याचार किए। धर्म–परिवर्तन के अतिरिक्त निर्धन हिन्दुओं के पास कोई विकल्प न था, जो उन्हें शासक के अत्याचारों से त्राण दिला सके।

समाज में हिन्दुओं के साथ मुस्लिम निर्धन लोगों की स्थिति भी दयनीय थी। उन्हें प्राणों के भय के अतिरिक्त अन्य संकट झेलने पड़ते थे।

हिन्दू धर्म ने सभी संकटों का सामना पूरी शक्ति के साथ किया। इसी का परिणाम था कि उत्तर प्रदेश में मुसलमानों की संख्या 14 प्रतिशत ही रही।[27] इसी धर्म–रक्षा की भावना ने नये सिद्धांतों व सम्प्रदायों को जन्म दिया। समाज में विभिन्न धर्म, मत–मतान्तरों का बोलबाला था, जिससे धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता बढ़ती गई। ब्राह्मण–मुल्ला धर्म के ठेकेदार बन उसकी मनचाही व्याख्या कर लोगों को भ्रमित करने लगे। अब समाज के किसी भी अंग का पुनर्निर्माण अथवा उसकी कार्य–पद्धति का समुचित निर्देशन केवल धार्मिक विधान एवं धार्मिक शब्दावली के ही सहारे सम्भव समझा जाता था।[28]

---

27. कबीर – व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धांत – पृ. 179
28. कबीर साहित्य की परख – परशुराम चतुर्वेदी पृ. 2

निर्धन जनता धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में शोषण को सहती रही। युगीन नारी भी अनेक शोषणों को झेल रही थी। उसे धर्म साधना से विमुख किया जा चुका था। समाज में धर्म व्यवसाय बन चुका था, जो अब धनिक वर्ग तक ही सीमित था। धर्म की मनचाही व्याख्याओं ने धर्म के वास्तविक मर्म को ही ढक दिया था। युगीन समाज में हिन्दुओं पर ब्राह्मणों का व मुस्लिमों पर मुल्ला–काजियों का प्रभुत्व था। अपने प्रभुत्व का उन्होंने भरपूर लाभ उठाया। उन्होंने धर्म की मनचाही व्याख्या कर सामान्य जन को धर्म के नैसर्गिक स्वरूप से कोसों दूर खड़ा कर दिया। जिससे युगीन समाज कृत्रिम धार्मिक आडम्बरों, मत–मतान्तरों के जाले में फँस कसमसाने लगा।

ऐसे समय में आलोच्य साधकों ने युगीन विषम परिस्थितियों में विद्रोह का शंखनाद कर समाज में धर्म के निर्मल व पावन स्वरूप को स्थापित किया।

4.2 सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी-संतः विभिन्न मत एवं धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता

4.2.0 धर्म समाज का अंकुश है, जो उसे पथ–भ्रष्ट होने से रोकता है। इस प्रकार धर्म समाज पर नियंत्रण बनाये रखता है, किन्तु जब धार्मिक रूढ़िवादिता बढ़ने लगे तो भला धर्म का पावन स्वरूप अक्षुण्य कैसे रहेगा? अतः जब धर्म विकृतियों एवं विकारों से घिरने लगा तो उसमें अनेकानेक मत–मतान्तरों, शाखा–प्रशाखाओं, पंथ–सम्प्रदायों का उदय हुआ। जिससे इन विविध मतों के मध्य धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता की भावना बलवती होती चली गई।

ऐसे विषम समय में सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी संतों ने मानवतावादी सर्वकल्याणकारी धर्म को पुनः प्रतिष्ठित करने का अथक प्रयास किये। इन्होंने सर्वस्वीकार्य धर्म की प्रतिष्ठा करके विविध धर्मों की बढ़ती प्रतिद्वन्द्विता से पीड़ित जनता को त्राण दिलाया।

4.2.1 सिद्ध-नाथ : विभिन्न मत एवं धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता – सिद्ध–नाथों के समय धार्मिक व्यवस्था रूग्ण हो चुकी थी। समाज में ब्राह्मण, पाशुपत, जैन, बौद्ध, शाक्त, कापालिक इत्यादि विभिन्न मत–मतान्तरों के मध्य स्वयं के वैशिष्टय को लेकर आपसी टकराव की स्थिति बन चुकी थी। युग के सजग प्रहरी सिद्ध–नाथ भला धर्म की मृगमरीचिका में तृषित सामान्य जन को क्यों भटकने देते, अतः धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता की शिकार बनती जनता को सिद्ध–नाथों ने सचेत किया। इसके लिए उन्होंने निम्नांकित कदम उठाये।

4.2.1.1 धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता का प्रतिकार – धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता के फैलते जाल को काटने हेतु सिद्ध–नाथों ने तद्युगीन प्रचलित विविध धार्मिक मतों के दुर्गुणों को उजागर करके धर्म में गहरे तक जड़े जमा चुकी रूढियों, आडम्बरों को खुली चुनौती दी।

तद्युगीन धर्म नियंता ब्राह्मण वर्ग का कच्चा–चिट्ठा खोल इन संतों (सिद्ध–नाथ) ने उनकी नींद हराम कर दी तथा लोगों को बताया कि ये धर्म नियंता बन बैठे ब्राह्मण स्वार्थी हैं, इन्होंने स्वयं को श्रेष्ठ घोषित करके अपने हितों का ही संवर्धन किया हैं।

वास्तविकता यह है कि सभी प्राणी समान हैं जातिगत श्रेष्ठा इनकी चाल है। ये वेदों के भेद से अपरिचित है –

ब्राह्मण न जानत भेद, यों ही पढ़े ये चारों वेद। [29]

सिद्ध–नाथों ने ब्राह्मणों के पुस्तकीय ज्ञान पर भी सवालिया निशान लगाये। सिद्धों ने पंडित सअल सत्थ वक्खाणअ देहहिबुद्ध वसन्तण जाणअ[30] द्वारा इनके ज्ञान को थोथा व पोथियों को व्यर्थ सिद्ध करके ब्राह्मण को निर्लज्ज कहा जो कि शास्त्रों की चर्चा तो करते हैं; किन्तु शरीर में विद्यमान बुद्ध को नहीं पहचानते।

नाथ–साधकों ने भी पण्डितों के थोथे ज्ञान को अनुपयोगी मानते हुए लोगों को सचेत किया कि उनका ज्ञान तो पिंजरे के तोते का ज्ञान है, जो रटी रटाई बातें बोलता हैं, किन्तु जब बिल्ली उसे उठा ले जाती है तो वह सारे ज्ञान को भूल टाँय–टाँय ही बोलता है। ठीक वैसे ही ये पण्डित जीवन पर्यन्त इन थोथी पोथियों को पढ़ते हैं, लोगों को भरमाते हैं। अन्तकाल में पोथी तो हाथ में ही रह जाती है, उसका थोथा ज्ञान किसी काम नहीं आता।[31] नाथ 'पंडित ज्ञान मरौ क्या झूझि'[32] द्वारा पाण्डित्य के बल पर की गई साधना को वृथा घोषित करते हैं।

ब्राह्मणों की जातीय श्रेष्ठता एवं थोथे ज्ञान पर प्रश्न चिह्न लगाने के साथ ही सिद्ध ब्राह्मण जनित कर्मकाण्डों को शरीर को कष्ट पहुँचाने वाली बाह्य क्रियाएँ मात्र सिद्ध करके इनकी निन्दा करते हैं। यथा –

मट्टि पाणि कुस लई पठन्त। धराहि बइसी अगनि हुणन्त।

कज्जे विरहिअ हुअवन्त होमें। अक्खि डहाविअ कडुओ धूमे। [33]

नाथों ने भी ब्राह्मणों द्वारा फैलाये जा रहे आडम्बरों की निन्दा करके लोगों को बताया कि ये तीर्थ, व्रत, मूर्ति–पूजा आदि नैमित्तिक आचरण मात्र मिथ्या हैं। ये आत्मानुभूति के साधन नहीं हैं। नाथों ने लोगों के समक्ष इन आडम्बरों की पोल खोल कर लोगों को सत्य से अवगत कराया –

कैसे बोलौ पंडिता, देव कौन ठाई।

नित तत निहारतां अम्हे तुम्हें नाहीं।

पषांसाची देवल पषाणं चा देव, पषांण पूजिला कैसे फटीला स्नेह।

---

29. दोहा कोश – राहुल जी पृ. 2
30. दोहा कोश, राहुल जी,– पृ. 18
31. सबदी – शार्दूल सिंह कविया – पृ. 32 / 119
32. उपरिवत् – पृ. 35 / 134
33. दोहा कोश – राहुल जी पृ. 2

सरजीव तोडिला निरजीव पूजिला, पाप ची करणी कैस दूतर तिरीला।

तीरथि तीरथि सनान करीला, बाहर धोये कैसे भीतरि भेडिला।

आदिनाथ नाती मछींद्र नाथ पूता, निज तात निहारै गोरष अवधूता। [34]

तद्युगीन पाशुपत धर्म में निहित आडम्बरों को सिद्ध खुली चुनौती देते हैं। वे लोगों को वास्तविकता से अवगत कराते हुए कहते हैं कि – ये घर में दीप जला, घंटा बजा, आँख–मूँद कर आसन लगाने को ही धर्म मान बैठे हैं। इनके साथ ही ये शैव साधु राख लपेट, सिर पर बालों का बोझ लादे हुए भ्रामक वेश धारण करके लोगों को भ्रमित करते हैं –

घर ही बइसी दीवा जाली। कोणहिं बइसी घण्टा चाली।

आविख णिवेसी आसण बन्धी। कण्णेहि खुसखुसाइ जण धन्धी। [35]

सिद्ध जैन साधकों की पोल खोलते हुए, जैन धर्म में निहित कुरीतियों को सामान्य जन के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं कि – नग्न रहने पर मुक्ति की धारणा भ्रामक है। यदि ऐसा होता तो कुत्तों–सियारों को इसका लाभ कब का मिल चुका होता। यदि लोम उत्पाटन ही मुक्ति की शर्त होती, तो युवतियों के नितम्बों को मुक्त हो जाना चाहिए था। यदि मोर–पंख धारण करना मुक्तिदायी होता तो हाथी, घोड़े की पूँछ में ये बाँधा हीजाता है। यदि उच्छिष्ट भोजन से मुक्ति होती, तो घोड़े को मुक्ति मिल जानी चाहिए थी। इस प्रकार सिद्ध तार्किक शैली द्वारा आडम्बरों को खोखला करते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि तत्त्व रहित कोई भी साधना मोक्षदायी नहीं हैं।[36]

पावडिया पग फिसलै अवधू लौहे छीजत काया।

नागा मूनी दूधा चारी एता जोग न पाया। [37]

द्वारा नाथ तद्युगीन जैन, शैव संन्यासियों के आडम्बरों पर प्रहार करते हैं।

सिद्ध महायान एवं हीनयान के उन सम्प्रदायों की आलोचना करते हैं जो प्रज्ञोपायात्मक नहीं हैं। सिद्ध दश शिक्षापदी, भिक्षु, कोटि शिक्षापदी भिक्षु व दशवर्षोपन्न स्थविर आदि हीनयानी बौद्धों को तत्त्व ज्ञान अनभिज्ञ मान उनकी आलोचना करते हैं, किन्तु यदि ये ही महायान का आश्रय ग्रहण कर लेते हैं, तो भी परमार्थ इनसे नहीं सधता। ऐसी घोषणा करके सिद्ध तत्त्व ज्ञान से अनजान हीनयान–महायान दोनों के विद्‌वज्जनों की कटु आलोचना करते हैं। यथा–

---

34 संत सुधा सार – पृ. 3/37

35 दोहा कोश – पृ. 2

36 उपरिवत्

37 सबदी – शार्दूल सिंह जी पृ 12/39

चेल्लु भिक्खु जे त्थविर उएसे। वन्देहिअ पब्बज्जिउ बेंसे।

कोइ सुत्तंत बक्खाण बइट्ठो। कोवि चित्त करुअ मइ दिट्ठो।

अण्णु तहि महाजाणे धाविउ। मण्डल चक्क मवि ना धेउ। [38]

नाथों के समय मुस्लिम धर्म एक सशक्त प्रतिद्वन्द्वी का रूप ले चुका था। ऐसे में इन्होंने मुस्लिम धर्म नियंता की पोल खोली व उन्हें समझाया कि काजी मुहम्मद का वास्तविक अर्थ जान, व्यर्थ की हिंसा का त्याग कर, लोगों को धर्म के नाम पर मत भटका।[39] सिद्ध–नाथों ने विविध धर्मो के कुत्सित स्वरूप को उजागर करके सामान्य जन को उसके आकर्षण से मुक्त किया।

4.2.1.2 **श्रेष्टमत की प्रतिष्ठा** – सिद्ध–नाथों ने मण्डन की प्रवृत्ति को अपनाते हुए लोगों को श्रेष्टमत से अवगत कराया। सिद्धों ने स्पष्ट किया कि तत्त्व ज्ञान सहज में है, वह शास्त्र, पुराणों से कोसों दूर है, और सहज की प्राप्ति सहज को जानने वाला गुरू ही करा सकता है।[40]

'अवधू ऐसा ग्यान विचारीतामै झिलमिल जोति उजाली' का शंखनाद करके नाथों ने जनता को सन्मार्ग दिखाया। नाथों ने श्रेष्ठ कर्मो की शिक्षा दी। 'काल विकारे टाकर मारे, सोवे काणेरी देव[41] के द्वारा समय के सदुपयोग का संदेश दिया। वाद–विवाद न कुरते नाथ[42] का आह्वान करके व्यर्थ वाद–विवाद की निन्दा की।

सिद्ध–नाथों ने धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता से आहत जनता को सत्य, दया, शील, संतोष, प्रेम आदि जीवन–मूल्यों का अनमोल उपहार प्रदान किया।

4.2.2 **हिन्दी-संत : विभिन्न मत एवं धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता** – हिन्दी संतों के समय में धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता के चलते समाज कई खेमों में विभक्त हो आपसी टकराव की स्थिति तक पहुँच चुका था। इस धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता की चाकी में तद्युगीन जनता पिसती जा रही थी। संत–साधक थे, किन्तु वे अपने आसपास की स्थिति से बेखबर नहीं थे। इस धार्मिक विषमता ने संतों को झकझोर दिया। सिद्ध–नाथों की परिपाटी का अनुसरण करते हुए, संतों ने विभिन्न मत–मतान्तरों व धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता के विरूद्ध समाज के अभ्युदय एवं श्रेयस कामना की विजय पताका फहराई।

4.2.2.1 **धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता का प्रतिकार** – तद्युगीन बढ़ती धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता से लोहा लेने के लिए संतों ने सिद्ध–नाथों की तर्ज पर विविध मत–मतान्तरों के आडम्बरों, रूढ़ियों का प्रतिकार किया। इसके लिए उन्होंने खण्डनात्मक वृत्ति को अपनाया।

---

38. दोहा कोश – पृ. 4
39. महंमद महंमद न करि काजी महंमद का विषय विचार।– सबदी पृ. 4/9
40. सिद्ध–साहित्य–धर्मवीर भारती – पृ. 306
41. नाथ सिद्धों की बानिया – पृ. 11
42. उपरिवत् – पृ. 104

सर्वप्रथम संतों ने धर्म नियंता बने ब्राह्मण–मुल्ला वर्ग को आड़े हाथों लिया। 'ब्राह्मण होय के ब्रह्म न जानै, घर मँह जग्य प्रतिग्रह आनै'[43] द्वारा कबीर ने युगीन ब्रह्म से अनभिज्ञ, यज्ञ से धन पाने वाले ब्राह्मण को फटकारा। एक कदम आगे बढ़ाते हुए संतों ने युगीन देवता की उपाधि से महिमा–मण्डित ब्राह्मण को राक्षस की संज्ञा प्रदान करके[44] उसे मिथ्यावादी सिद्ध कर ब्रह्म से अनभिज्ञ बताया। संत–प्रवर दादू ने लोगों को सचेत किया कि ये ब्राह्मण हमें अपने जाल में फँसा जन्मदाता ब्रह्म से हमें दूर किये जा रहा है। यथा –

दादू जिन पैदा किया, ता साहिब से छिटकाइ। [45]

संत पलटू ने 'मान बड़ाई में मुए भूल गये सब पंथ'[46] द्वारा महंत की वास्तविक छवि को उजागर किया। संत धरनी दास ने ब्राह्मण को भ्रम देश का निवासी बताकर भ्रम फैलाने वाला[47] सिद्ध करके लोगों को उसके भ्रम जाल से निकलने का उपदेश दिया है।

काजी मुल्लां भरमियां चला दुनी के साथि।

दिल तो दी बिसारिया करद लाई जब हाथि। [48]

द्वारा कबीर मुस्लिम धर्म नियंता काजी को भ्रम का शिकार हो धर्म के मर्म से अपरिचित ठहराते हैं।

सिद्ध–नाथों की परिपाटी का अनुसरण करके संत धर्म–नियंताओं के मिथ्या ज्ञान, थोथी पोथियों को अनुपयोगी सिद्ध करके 'झाड़ चले हम कछु नहीं लिया' कहकर समाज को उनसे मुक्त होने का आह्वान करते हैं।

तद्युगीन समाज में साधुओं की जमात बढ़ती जा रही थी। वे साधु–वेश से साधु थे; किन्तु असाधु कर्मों में लिप्त थे। तब संतों ने लोगों को ऐसे साधुओं से सावचेत किया। संत कबीर ने लोगो को कहा कि इन वेशधारी साधुओं पर विश्वास मत करो बगुला भी सफेद होता है; किन्तु सदैव मछली का ध्यान लगाये रहता है, ठीक वही बगुला प्रवृत्ति इन दिखावटी साधुओं की है, जिनका अन्तःकरण पंकिल है –

उज्ज्वल देखि न धीजिए, बग ज्यौ माँडे ध्यान।

धोरे बैठे चपेटसी सौ ले बूड़े ग्यान। [49]

---

43. कबीर वाड्मय, खण्ड 2 पृ. 459
44. राक्षस करनी देव कहावै, बाद करै गोपाल न भावै – उपरिवत् पृ 460
45. श्री दादू वाणी – पृ. 262 / 15
46. स.बा. स (प्रथम) पृ 207
47. धरनी भरमी बाम्हने, बसहि भरम के देस–उपरिवत् पृ 110
48. क. ग्र. पृ. 42 / 6,7
49. कबीर ग्रंथावली – पृ 49

भेष की व्यर्थता सिद्ध करते हुए नानक ने समाज को नाम की महत्ता बताई है। यथा –

गउ बिरामण का कर लखह, गोबर तरण न जाई।

धोती टीके तै जपमाली, धानु मलेच्छा खाई।

अंतरिपूजा पढहि कतेबा, संजामि तुरुकां भाई।

छोड़ि ले पखण्डा, नामि लइए जाहि तरन्दा। [50]

कबीर तद्युगीन पाखंडी जैन मुनियों की खबर लेते हुए कहते हैं कि – जैन अहिंसा के पुजारी हैं फिर भी बाह्याचारों में फँसे हैं। महावीर स्वामी के चरणों में फूल–पत्ते अर्पित करते हैं; किन्तु वनस्पति में जीव होता है वे इस सत्य से अनजान हैं। अहिंसा परमोधर्म का दंभ भरने वाला स्वयं हिंसा में लिप्त है। ऐसा करके वह अपना जन्म नष्ट कर देता है –

जैन धर्म का मर्म न जाना, पाती तोरि देवधर आना।

दौना मरुआ चंपा कै फूला, मानहूँ जीव कोटि सम तूला।

औ प्रिथिमि के रोम उचारै, देखत जन्म आपनौ हारै। [51]

'नागे फिरे जोग जो होई, बन का मृग मुकति गया कोई'[52] द्वारा कबीर सिद्धों के स्वर को तेज करते हुए तद्युगीन मिथ्याचारी धर्म–नियंताओं की पोल खोलते हैं।

संत जन धर्म के नाम पर प्रचलित आडम्बरों, मिथ्याचारों को खोखला सिद्ध करते हैं । संत 'दादू पूरण ब्रह्म तजि बंधे भ्रम की गाँठि'[53] का उद्‌घोष कर ब्रह्म से अनभिज्ञ भ्रम–जाल में आबद्ध मिथ्याचारी लोगों से जनता को सावचेत करते हैं।

4.2.2.2 **श्रेष्ठ मत की प्रतिष्ठा** – संतों ने समाज में श्रेष्ठ मत की प्रतिष्ठा करके लोगों को ऐसे मत (धर्म) की ओर आकृष्ट किया है, जो साम्प्रदायिक सीमाओं से परे सार्वभौम पथ था। जहाँ सभी बराबर है। संतों ने सत्य, अहिंसा, दया, करूणा, प्रेम, अहिंसा आदि जीवन–मूल्यों को अपनाने की सीख युगीन जनता को देकर उसे कृतार्थ किया है।

---

50. आदि ग्रथ – पृ 255
51. कबीर वाड्.मय – खण्ड 1 रमैणी – 30 पृ.55
52. क. ग्र. – पृ. 130
53. दादू दयाल ग्रंथावली – पृ. 153

'तुम सबन में सब तुम माहीं'[54] का उद्‌घोष करके संतों ने एकता का प्रतिपादन करके बंधुत्व एवं आत्मीयता का पोषण करके आपसी प्रतिद्वन्द्विता का प्रतिकार किया है।

सो काजी जाकौ काल न व्यापै, सो पंडित पद बूझै।

सो ब्रह्मा जो ब्रह्म विचारै, सो जोगी जग सूझै। [55]

उपर्युक्त पद द्वारा संतों ने धर्म नियंताओं की वास्तविक छवि पर से पर्दा उठाया है।

संतों ने धर्माकाश पर छायी आडम्बरों, रूढ़ियों, मिथ्या धारणाओं की धूल को हटाकर, अपनी अमृत तुल्य वाणी द्वारा मानवतावादी धर्म के सतरंगी सुरचाप को अंकित किया है।

4.3 सिद्ध-नाथ एवं प्रमुख हिन्दी-संतों की भक्ति-साधना

4.3.0 भारत में भक्ति की दिव्य धारा अनादि काल से प्रवाहित होती आ रही है। सिद्ध–नाथ एवं प्रमुख हिन्दी–संतों की भक्ति–साधना के विवेचन से पूर्व भक्ति के अर्थ स्वरूप को प्रकाशित करना अपेक्षित है।

4.3.1 भक्ति का अर्थ/आशय – भक्ति शब्द संस्कृतके 'भज' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से बना है। प्रत्यय का अर्थ है प्रेम और धातु का अर्थ है सेवा करना। सामान्य नियमानुसार धातु और प्रत्यय के योग से एक सम्पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति होती है और उस अर्थ में प्रत्यय का अर्थ ही प्रधान रहता है। अतः भक्ति का अर्थ हुआ सेवा करना।[56]

4.3.2 विविध परिभाषाएँ – हमारे विभिन्न आचार्यो ने भक्ति की अधोलिखित परिभाषाएँ दी हैं –

2.1 **श्रीमद्‌भागवद् गीताकार** – 'मध्यर्पितमनो बुद्धिर्यो मद्‌भक्तः स में प्रिय' अर्थात् जिसने अपना मन और बुद्धि मुझे अर्पित कर दिया, वह भक्त मुझे प्रिय है।[57]

2.2 **शाण्डिल्य** – 'सा परालुरक्तिरीश्वरे' अर्थात् अराध्य के प्रति अनन्य अनुराग ही भक्ति है।[58]

2.3 **नारद**–''सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतवरूपा च। तत्रापि महात्म्यज्ञान–विस्मृत्यपवादः तद्विहीनं जाराणामिव।''

---

54. संतरैदास (स. संगमलाल पाण्डेय) पृ. 100/33
55 क. ग्र. पृ. 139
56. कल्याण – भक्ति अंक, सं. 2052 द्वितीय संस्करणबत्तीसवे वर्ष का विशेषांक पृ. 15
57. श्रीमद भागवत गीता– अध्याय – 12/14
58. कल्याण – भक्तिअक पृ. 15

अर्थात् भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेम रूपा और अमृत स्वरूपा है।[59]

2.4 श्री रूप गोस्वामी ने अपने 'भक्ति रसामृतसिन्धु' में भक्ति की व्याख्या इन शब्दों द्वारा की है –

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।

अर्थात् अध्यात्म ज्ञान की प्राप्ति की अभिलाषा न करते हुए कर्म अथवा वैराग्य का भी मोह न रखते हुए, केवल कृष्ण की संतुष्टि के लिए उनका प्रेम भाव से चिन्तन करना ही उत्तम भक्ति है।[60]

2.5 **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** – श्रद्धा एवं प्रेम का योग भक्ति है।[61]

2.6 **डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी** – भक्ति भगवान के प्रति अनन्यगामी प्रेम का ही नाम है।[62]

उपर्युक्त भक्ति की विभिन्न परिभाषाओं में शाब्दिक अन्तर अवश्य दृष्टिगोचर होता है, किन्तु इनमें अर्थगत समानता है। इन सभी का निचोड़ यह स्पष्ट करता है कि ईश्वर की महिमा का ज्ञान रखते हुए श्रद्धा एवं प्रेम के साथ ईश्वर के प्रति आत्म समर्पण कर देना ही भक्ति है।

4.3.3 भक्ति का ऐतिहासिक विकास – भारतीय वाङ्मय में भक्ति एक ऐसी अजस्रधारा है, जो वैदिक काल से लेकर आज तक निरवच्छिन्न गति से प्रवाहित होती आ रही है। निम्न बिन्दुओं द्वारा भक्ति की विकास यात्रा को समझा जा सकता है –

3.1 वैदिक-साहित्य – वेद हमारे आदि ग्रंथ हैं। वेदों में भक्ति भावना के बीज स्पष्ट दिखाई देते हैं। ईश्वर भक्ति के सुगंधित पुष्प वेद के मंत्रों के माध्यम से स्वाध्यायशील व्यक्ति के हृदय को सुवासित कर देते हैं। आनन्द स्वरूप ईश्वर की वन्दना अवलोकनीय है –

यस्येमे हिमवन्तो महत्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।

यस्येमा दिशोयस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम।[63]

अर्थात् जिसकी महिमा का गान हिमाच्छादित पर्वत कर रहे हैं, जिसकी भक्ति का राग सागर अपनी सहायक नदियों के साथ सुना रहा है और ये विशाल दिशाएँ जिसके बाहुओं के सदृश्य हैं उस आनन्द स्वरूप प्रभु को मेरा नमन है।

---

59. नारद भक्तिसूत्र – 2–3
60. कल्याण – भक्ति अंक, पृ. 16
61. वृहत् साहित्यिक निबंध – पृ. 522
62. उपरिवत्
63. यजु. – 25/12

जिस ईश्वर ने हमें उत्पन्न किया उसे जानना हमारा कर्त्तव्य है। ऋग्वेद में ऐसा उद्घोष किया है –

न तं विदाथ या इमा जनान?'[64]

अर्थात् मनुष्य क्या उस ब्रह्म को नहीं जानता जिसने सारा संसार उत्पन्न किया है।

इस प्रकार वैदिक साहित्य में भक्ति पर उदात्त एवं पुनीत उद्‌गार अनेक स्थलों पर अंकित हैं।

3.2 उपनिषद् – उपनिषदों में केवल ज्ञान की चर्चा है, यह यथार्थ नहीं है। उपनिषद् में ज्ञान, कर्म एवं भक्ति की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। उपनिषद् में ब्रह्म की उपासना उचित बताई गई है। कठोपनिषद में कहा है कि भजनीय वस्तु होने के कारण ब्रह्म की उपासना करनी चाहिए –

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।

मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते। (कठोपनिषद् 2/2/3)

छन्दोग्य उपनिषद् में प्रतीक उपासना का भी उलल्‍ेख मिलता है –

'मनो ब्रह्मेत्युपासीत' (छ. 3/18/1)

अर्थात् मन की ब्रह्म रूप में उपासना करो।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में निर्गुण भक्ति का उल्लेख मिलता है, जो अपने परवर्ती साहित्य में निरन्तर विकसित हुआ है।

भक्तिमार्ग की साधना में गुरू भक्ति की जो उच्च प्रशंसा है, उसका मूल भी उपनिषद् में है।[65]

छन्दोपनिषद् में एक स्थान पर प्रभु भक्ति को उत्कृष्ट व सर्वोत्तम रस सिद्ध किया है, जो अपने माधुर्य से मन–चातक को मतवाला बना देता है। यथा –

स एव रसानां रसतमः परमः परार्ध्रे। [66]

उपनिषदों में ज्ञान, कर्म व भक्ति का संगम हुआ है।

3.3 गीता – गीता मूलतः उपनिषदों का ही सार है। यहाँ भक्ति को विशद रूप में प्रस्तुत किया गया है। गीता में स्पष्ट उद्घोष किया है –

---

64. ऋग्वेद – 10/82/7
65. कल्याण – भक्ति अक पृ. 51
66. उपरिवत् – पृ. 52

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वमः। (18/55)

अर्थात् भक्ति के द्वारा मनुष्य मुझको जान सकता है कि मैं क्या वस्तु (सच्चिदानन्द स्वरूप) हूँ तथा मेरा परिणाम क्या है (मै सर्वव्यापी हूँ।)[67]

गीता में मोक्ष हेतु तप–वैराग्य को अनावश्यक नहीं माना; किंतु यह स्पष्ट कहा गया है कि मुक्ति शुष्क नैतिक आचरण में नहीं, वरन् भावपूर्ण उपासना या भक्ति में है। समर्पण भक्ति का प्रमुख अंग है तथा गीता में समर्पण की भावना पर बहुत बल दिया गया है। वासुदेव कृष्ण अर्जुन से कहते हैं –

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।

स्त्रियो वैश्यास्तया शूद्रास्तेऽति यान्ति परागंतिम।।

अर्थात् हे पार्थ, मेरी शरण में आने पर पापी व्यक्ति भी चाहे वे स्त्री हों, चाहे वैश्य हों और चाहे शूद्र हो, परमगति को प्राप्त होते है।[68]

महाभारत के शांतिपर्व तथा भीष्मपर्व में नारायणीयोपाख्यान का वर्णन है।

3.4 नारद-भक्तिसूत्र – भक्ति का प्रथम बार सांगोपांग विवेचन नारद भक्ति सूत्र में किया गया है। इसमें ज्ञान व कर्म की अपेक्षा भक्ति को प्रमुखता प्रदान की गई है। यहाँ ईश्वर के प्रति परम अनुराग को भक्ति की संज्ञा दी गई है। उन्होंने भक्ति को मोक्ष प्राप्ति का एक मात्र साधन बता भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है।

इसमें भजन, भगवद गुण श्रवण, कीर्तन, ईश्वर अनुकम्पा को भक्ति प्राप्ति के साधन सिद्ध करते हुए कुसंगति को सभी बुराइयों का मूल मान भक्ति में सबसे बड़ी बाधा माना है।

3.5 पौराणिक-साहित्य – भक्ति के व्यावहारिक स्वरूप का उद्‌घाटन पौराणिक साहित्य में हुआ है। यहाँ अवतारवाद की प्रतिष्ठा हुई व भागवत धर्म की स्थापना हुई। विष्णु षट् ऐश्वर्यों से युक्त होने से भगवत् कहलाये और उपासक भागवत नाम से प्रसिद्ध हुए।[69]

सातवीं–आठवीं शताब्दी में बौद्ध–धर्म की विकृतियों ने महायान, वज्रयान में योग–साधना को बढ़ावा दिया, जिससे पौराणिक धर्म प्रभावित हुआ। अब श्रद्धा के स्थान पर प्रेम की महत्ता बढ़ी।

3.6 मध्ययुगीन विभिन्न वैष्णव सम्प्रदाय – धर्म में निरन्तर बढ़ती विकृतियों को देख शंकराचार्य जी ने अद्वैतवाद का प्रवर्तन किया। शंकराचार्य के सिद्धांत का नाथ मुनि ने विरोध किया। रामानुजाचार्य ने शंकर के मायावाद का खण्डन कर विशिष्टद्वैतवाद

67. कल्याण – भक्ति, अंक पृ. 51
68. वृहत् साहित्यिक निबंध – पृ. 526
69. वृहद् साहित्यिक निबंध पृ. 527

की संकल्पना प्रस्तुत की। इसके बाद मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, विष्णुस्वामी बल्लभाचार्य आदि ने अपनी व्याख्या भक्ति के लिए प्रस्तुत की। इन सबने भक्ति की धारा को अजस्र बनाने में अपना योग दिया।

3.7 मध्ययुगीन वैष्णवेतर विचार धाराएँ – सहजयानियों की सहज साधना से भक्ति का विकास हुआ। इन्होंने चित्त–शुद्धि पर बल दे सहजावस्था को ही परम पुरूषार्थ माना।

सूफी चिन्तकों के रहस्यवाद से भी भक्ति प्रभावित हुई। इससे नीरस भक्ति में सरसता का संचार हुआ।

इन सभी का संत साधकों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

4.3.4 सिद्ध-नाथः भक्ति साधना – सिद्ध–नाथों की भक्ति साधना को समझने के लिए उसमें समाहित विशेषताओं को उजागर करना अपेक्षित होगा।

4.3.4.1 गुरू की महत्ता – सिद्ध–नाथों ने बड़ी निष्ठा के साथ गुरू की महिमा को स्वीकार किया है। गुरू के व्यक्तित्व एवं साधना निर्देशन के कारण सिद्ध–नाथ गुरू को सर्वोत्तम पद का अधिकार प्रदान करते हैं। साधना की जटिलता को सरल बना गुरू साधक को साधना में प्रवृत्त करने वाले हैं। सिद्ध–नाथों ने गुरू की महत्ता के विविध पक्षों को उजागर किया है। यथा–

'गुरू–उवएसे अमिअ रसु'[70] के उद्‌गार द्वारा सरहपाद गुरू के वचनों को अमृततुल्य कल्याणकारी, जीवनदायी सिद्ध करते हैं। गुरू–वन्दना करते हुए सरह कहते हैं जिसने करूणा–किरण से प्रपंचित किया मैंने उसी रत्नप्रभामंडल से तन समूह प्रध्वस्त किया (अनाविल नयन से स्वविलास दीर्घदर्शी) उस वैरोचन गुरू को नमस्कार।[71]

संत भूसुकुपा सद्‌गुरू की महिमा का बखान करते हुए उसे माया–जाल से मुक्ति दिलाने वाला मानते हैं –

माआ जाल पसारी बांधेलि माआ हरिणी।

सद्‌गुरू बोहें बूझि रे कासु (काहिणी)[72]

एक स्थान पर सरहपाद ने गुरू को परमेश्वर मान तीनों लोकों से तारने वाला माना है –

सो परमेश्वर परम गुरु, उत्तारइ तइलोअ।[73]

70. हिन्दी काव्य धारा – पृ. 9
71. दोहाकोश – राहुल जी पृ. 279
72. हिन्दी काव्य धारा – पृ. 132
73. दोहा कोश – पृ. 34

सिद्ध सरहपाद ने जन सामान्य को सचेत किया है कि गुरू उसे ही बनाये, जो स्वयं साधना में निष्णात हो। यदि अयोग्य व्यक्ति को गुरू बनाया, तो शिष्य–गुरू की वही स्थिति होगी जैसी एक अंधा दूसरे अंधे को साथ ले और दोनों कुए में गिर पड़े। यथा –

जावण अप्पा जाणिज्जइ ताण साहिस्स करेइ

अन्धँ अन्ध कढ़ाव तिम वेण वि कूप पड़ेइ। [74]

सिद्धों के समान नाथों ने भी 'सतगुरू मिलै तो ऊबरै बाबू नहीं तौप रलै हूवा'[75] कहकर सतगुरू को तारणहार बना दिया है। सतगुरू के उपदेश का महत्त्व बताते हुए गोरखनाथ कहते हैं कि गुरू उपदेश में ही वह शक्ति है, जो संशय एवं शोक का हरण कर सके।[76] 'गुरू वचन प्रतिपालना प्यिंरा मइला मोष्य मुक्ति'[77] कहकर नाथों ने गुरू वचन को मोक्षदायक सिद्ध किया है।

इस प्रकार गुरू साधक की अज्ञानता का शमन करने वाले, संसार सागर से पार उतारने वाले मुक्तिदाता हैं। जिनके प्रति सिद्ध–नाथों ने अटल भक्ति का उपदेश दिया है।

4.3.4.2 भक्ति में प्रेम-भाव – आचार्य शुक्ल ने प्रेम एवं श्रद्धा के योग का नाम भक्ति बताया है। सिद्ध–नाथों की भक्ति में मधुरा भाव को देखा जा सकता है। सहज की प्राप्ति हेतु सिद्ध प्रथमानन्द, परमानन्द, विरमानन्द, सहजानन्द का उल्लेख करते हैं। जिनमें प्रेम आध्यात्मिक अर्थ रखता है। श्रृंगार–भावना प्रधान पद अवलोकनीय है –

ऊँचा–ऊँचा पाबत तहिं वसइ सबरी बाली।

मोरड़ंगी पिच्छिप (हि) रहि सबरी गिवत गुजरी माला। [78]

उपर्युक्त पद में यदि प्रतीकात्मक अर्थ को जाना जाए, तो प्रेम के आध्यात्मिक स्वरूप के दर्शन सहज ही किए जा सकते हैं। वे प्रेम में तल्लीन हो पूरी तरह परम सत्ता में विलीन हो जाना चाहते हैं।

नाथों ने योग पर विशेष बल दिया है। जिसमें ध्यान, धारणा, समाधि के अन्तर्गत परम तत्त्व के प्रति नाथों के अनुराग की झलक पाई जाती है। यहाँ परमतत्त्व में समर्पण एवं उसी की सत्ता में विलीन होने का भाव माधुर्य भाव को प्रदर्शित करते हैं।

---

74. काव्य धारा – पृ. 3
75. सत सुधा सार – पृ. 35
76. जे आसाते आपदा, जे संसा त सोग।
    गुरमुषि बिना न भाजसी (गोरष) ये दोन्यू बड़ रेग।– संतसुधा सार – पृ. 34
77. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य– पृ. 187
78. दोहा कोश – राहुल जी पृ. 24–25

4.3.4.3 उपास्य का स्वरूप – सिद्धों के ब्रह्म शून्य स्वरूप हैं, जो परम विशुद्ध, परम महासत्य, परम विज्ञान, परमोत्कर्ष, आदि–अनादि, मध्य–अमध्य, अन्त–अनन्त, अस्ति–नास्ति, पाप–पुण्य, भव–निर्वाण, जरा–मरण से परे है।[79]

नाथों के उपास्य अनगढ़ है अर्थात् मूर्तिरूप नहीं हैं। वह ज्योति स्वरूप है। जिसे वे अगम, अगोचर,अरूप, अमूल, अतीत–पुरूष, अक्षय, अचिन्त्य, अविगत, अनादि, अनुपम, अलख, अविनाशी आदि अभावात्मक अथवा निषेधात्मक शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। नाथ अवतारवाद को स्वीकार नहीं करते तथापि उपास्य में कुछ सूक्ष्म गुणों का आरोप वे भी करते हैं। उनके उपास्य सर्व कर्तृव्यशक्ति युक्त आवश्यक है; किन्तु उसमें सर्वज्ञत्व और सर्वानंदमयत्व भी है, इसकी अभिव्यक्ति नहीं हो सकी है।[80] सिद्ध नाथों के ब्रह्म निर्गुण स्वरूप है।

4.3.4.4 नाम-स्मरण – नाथ पंथी अपने आत्म–चिन्तन में नाम–स्मरण को महत्त्व देते हैं। यथा –

ऐसा जाप जपो .मन लाई, सोहं सोहं अजपा गाई। [81]

नाथ उनके सर्वव्यापकत्व और सर्वकर्तृत्व का स्मरण भी करते है; किन्तु यह 'स्मरण' जिसे भक्ति का प्रकार मानते हैं, नाथों में प्रत्यक्षतः वर्णित नहीं हैं, अपितु उनकी रचनाओं में अनुमित है।

4.3.4.5 आचरण की शुद्धता – नाथ भक्ति के अन्तर्गत अभ्यान्तरिक पवित्रता के पक्षधर हैं। वे मन, वचन, कर्म की पवित्रता में अटूट आस्था रखते हैं तथा लोगों को इसी का उपदेश देते हैं। सिद्ध–नाथ सामान्य जन को दया, दान, शील, संतोष व सादगी का पाठ पढ़ाते हैं।

4.3.5 हिन्दी-संत : भक्ति-साधना – हिंदी–संतो ने अपने युग में भक्ति की सरल, सहज एवं सौम्य त्रिवेणी को प्रवाहित किया। हिन्दी संतों की भक्ति साधना पर सिद्ध–नाथों की भक्ति का भी प्रभाव पड़ा, किन्तु उनकी विशिष्टता इसमें थी कि उन्होंने विभिन्न प्रभावों को आत्मसात कर लीक अपनी ही बनाई। उन्होंने ऐसी भाव–भक्ति की सरिता प्रवाहित की कि जिसमें अवगाहन कर जन सामान्य का अन्तर्मन आलोकित हो उठा। निम्नांकित विशेषताओं के उल्लेख द्वारा उनकी भक्ति–साधना को सरलता से समझा जा सकता है। यथा–

4.3.5.1 गुरू की महत्ता – सिद्ध–नाथों की गुरू के प्रति निष्ठा की भावना को हिन्दी–संतों ने विरासत रूप में अपनाया है। संत कबीर 'गुरू सेवा ते भक्ति कमाई[82]

---

79. सहज सिद्ध – रणवीर साहा पृ. 104
80. नाथ और संत साहित्य – तुलनात्मक अध्ययन पृ. 211–212
81. गोरखबानी– पृ. 124
82. क. ग्र. पृ. 283

का उद्घोष करते हुए अपनी भक्ति को गुरू की देन स्वीकार करते हैं और इसी भाव–भक्ति को उन्होंने 'सात द्वीप नौ खण्ड' में प्रकाशित कर युगों को आलोकित कर दिया है।

कबीर गुरू को गोविन्द से श्रेष्ठ सिद्ध करके, गोविन्द से पहले गुरू के चरण–वन्दन करते हैं, जिसने गोविन्द मिलन के मार्ग को दिखाया–

गुरू गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पांय।

बलिहारी, गुरू आपने, गोविन्द दियो बताय। [83]

'जीती बाजी गुरू प्रताप तें, माया मोह निवार'[84] द्वारा संतों ने सिद्ध–नाथों के स्वर में स्वर मिलाते हुए गुरू को माया–मोह से मुक्ति दिलाने वाला सिद्ध किया है। संत–प्रवर दादू दयाल ने गुरू को परमेश्वर का स्वरूप माना है –

दादू ऐसा गुरू हमारा, आप निरंजन जोगी। [85]

सिद्ध सरहपाद के समान ही संतों ने गुरू–ज्ञान को भव सागर से पार उतारने वाला माना है। यथा –

खेवट सतगुरू ज्ञान है, उतरि जाव भौ पार। [86]

संतों ने गुरू की महिमा का बखान किया है; किन्तु वे सिद्धों के समान लोगों को अज्ञानी गुरू से सचेत करते है –

जाकागुरू भी अंधला, चेला खरा निरंध।

अंधै अंधा ठेलियां, दूनयूं कूप पडंत। [87]

4.3.5.2 भक्ति में प्रेम भाव – संतों की भक्ति साधना में प्रेम भाव का विशिष्ट स्थान रहा है। सिद्ध–नाथों के समान संतों ने भी प्रेम को आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान किया है। ईश्वर भक्ति में प्रेमी (भक्त) तथा प्रियतमा (ब्रह्म) की लीला का वर्णन संतों ने व्यापक रूप से किया है। तभी तो उनकी भक्ति में परमात्मा के प्रति अनुराग के अनन्त निर्झर फूट पड़े हैं। संत–प्रवर दीन दयाल प्रेम को ईश्वर की जाति, अंग, वजूद, रंग इत्यादि कहकर प्रेम को ब्रह्म का स्वरूप ही मान लिया है। यथा–

इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग।

इसक अलह औजूद है,इसक अलह का रंग। [88]

---

83. कबीर वाणी ज्ञानामृत – पृ. 53
84. स.बा. स. प्रथम भाग – पृ. 94
85. संत कवि दादू और उनका पंथ – पृ. 171
86. स.बा. स. – पृ. 115
87. क.ग्र. पृ. 2/साखी 5
88. स. वा. स (प्रथम भाग) पृ. 79

'प्रेम–पुंज प्रगटै जहाँ, तहाँ प्रगट हरि होय'[89] द्वारा संत दया बाई ने भक्ति में प्रेम–भाव के महत्त्व को दर्शाया है।

संतो ने स्पष्ट किया है कि जिस हृदय में ब्रह्म के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है वहाँ तन, मन, सूरत के सब आवरण जल जाते हैं अर्थात् सारे भ्रम स्वतः नष्ट हो जाते हैं –

दादू इसक अलाह का, जे कबहूँ प्रगटै आइ।

तौ तन मन दिल अरवाह का, सब परदा जलि जाय (स. बा. स. पृ. 79)

संतों की भक्ति में प्रेम के वियोग पक्ष का भी सुन्दर निरूपण हुआ है। विरह भक्ति को तपा कर कुन्दन बना देता है। विरह वर्णन के अन्तर्गत विरहिणी आत्मा की अभिलाषा, संदेश, प्रतीक्षा, उद्वेग, चिंता, प्रलाप इत्यादि को उकेर कर संत जन विरह के कुशल चितेरे बन गये हैं। संतों के विरह का स्वरूप देखिये जहाँ नायिका तब तक रोती रहती है जब तक प्रभु से मिलन नहीं हो जाता –

रात दिवस का रोवणां, पहर पलक का नांहि।

रोवत रोवत मिल गया, दादू साहिब मांहि।[90]

संतो का मानना है कि विरह की अग्नि में जलकर मन के मैल विकार नष्ट हो जाते है; जिससे प्रभु (प्रिय) का साक्षात्कार स्वतः ही हो जाएगा।[91]

4.3.5.3 उपास्य का स्वरूप – संतो के उपास्य का स्वरूप मूलतः निर्गुण है; किन्तु सगुणता का छायाभास कहीं–कहीं प्रतीत होता है। वे अपनी भक्ति को निर्गुण भक्ति कहते हैं, उन्होंने अपने निर्गुण उपास्य के लिए हरि, गोविन्द, राम, रहीम, करीम इत्यादि नामों का उपयोग अवश्य किया है।

कबीर के राम न केवल निर्विकार हैं, वरन् निर्गुण भी हैं। वे रूप, रंग, आकार सात्वादि गुणों से मुक्त है; क्योंकि ये सब तो मायाक्षेत्रीय हैं और राम मायातीत हैं।[92]

'निराकारं निर्मलम् तस्य दादू वन्दनम्'[93] का उच्चारण करके संत–प्रवर दादू ने निर्गुण ब्रह्म की वन्दना की हैं। संत रैदास ने अपने उपास्य के निर्गुण स्वरूप को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है। यथा –

---

89. उपरिवत् – पृ. 161
90. श्री दादू वाणी – पृ. 83 / 136
91. विरह अग्नि मे जल गये, मन के मैल विकार।
    दादू बिरही पीव का, देखेगा दीदार। – श्री दादू वाणी – पृ. 84 / 141
92. कबीर : व्यक्तित्व, कृतित्व एवंसिद्धांत – पृ. 432
93. श्री दादू वाणी – गुरूदेव का`अंग / 2

अगम अगोचर अक्षर अतरक्ष, निर्गुण अति आनन्दा।

सदा अतीत ज्ञान विवर्जित, निर्विकार अविनासी। [94]

सिद्ध–नाथों के समान संतो के ब्रह्म भी निर्गुण–निराकार हैं। नाथों के स्वर में स्वर मिला गुरू नानक ने ब्रह्म को ज्योति स्वरूप सिद्ध करके समस्त विश्व में व्याप्त माना है –

अगम अगोचर अलख अपारा, चिंता करहु हमारी।

जलि थलि महीअलि भरिपूरि, लीणा घटि घटि जोति तुमारी। [95]

'परम ज्योति पुरूसोत्तमों, जाके रेख न रूप' द्वारा कबीर ने भी निर्गुण ब्रह्म को ज्योति स्वरूप बताकर नाथों की विचारधारा को पोषण दिया है।

4.3.5.4 नाम-स्मरण – राम कहे भला होइगा, नहिंतर भला न होइ' की घोषणा करके संत नाम–स्मरण की महिमा को जन सामान्य में प्रतिष्ठित करते हैं।

गुरू नानक के अनुसार नाम ही जप, तप एवं संयम का सार तत्त्व है, नाम द्वारा ही वास्तविक योग प्राप्त होता है। जैसा कि नानक वाणी में कहा है –

नामे नामि रहै वैरागी, साचु रखिआ उरिधारे।।

नानक बिनु नावै जोगु, कदे न होवै देखहु रिदै वीचारे।। – नानक वाणी

संत सुन्दर दास ने नाम को सकल शिरोमणि, सुखसागर एवं सुखधाम[96] सिद्ध करके संसार को हिरदे मेंहरि सुमिरिये अंतरजामी राई[97] का संदेश दिया है। संत कवि दरियासाहिब ने नाम स्मरण के बिना जीवन को व्यर्थ सिद्ध किया है।[98] सहजोबाई ने नाम को पारस पत्थर की उपमा प्रदान कर महिमा मण्डित करते हुए 'जागत में सुमिरन करै, सोवत में लौ लाय'[99] द्वारा दिन–रात नाम–स्मरण का उपदेश दिया है।

संतो ने नाम को ब्रह्म माना है। वे ऐसा स्मरण चाहते हैं जिसमें साधक एवं आराध्य एक स्वरूप हो जाये–

लाली मेरे लाल की, जित देखू तित लाल।

लाली देखन मै गयी, तो मैं भी हो गई लाल। (कबीर)

---

94. संत रैदास (सं.योगेन्द्र सिंह) पृ. 187 / 83
95. राग बिलावलु – पद – 2
96. संत बानी संगह – प्रथम भाग – पृ. 102
97. उपरिवत्
98. उपरिवत् पृ. 115
99. उपरिवत् पृ. 146

संतों ने नाम स्मरण को अपनी साधना में स्थान दिया है साथ ही वे 'दादू राम संभालि ले, जब लग सुखी शरीर[100] का संदेश सामान्य जन को देते हुए उन्हें सचेत करते हैं कि यदि ऐसा नहीं किया तो बाद में पछताना पड़ेगा।

4.3.5.5 आचरण की शुद्धता – नाथों ने भक्ति–साधना के अन्तर्गत आचरण की शुद्धता पर बल दिया है। संतों ने इसी परिपाटी का अनुसरण करते हुए शुद्धाचरण को भक्ति–साधना की आवश्यक शर्त बना दिया है। तभी तो संतो ने भक्ति में सदाचार को परमावश्यक अंग स्वीकार किया है।

संतो ने अपनी वाणी द्वारा सदाचार के सहायक एवं बाधक तत्त्वों का निरूपण करते हुए सामान्य जन के लिए सदाचार के सौम्य मार्ग का पथ प्रदर्शन किया है। संतों ने कनक–कामिनी, माया, कुसंगति, दुर्जन आदि को भक्ति में बाधा रूप निरूपित करके इनके परित्याग का संदेश प्रेषित किया है।

'कबीर संगति साध की, कटै कोटि अपराध' की घोषणा करके कबीर ने साधु संगति को अपराध काटने वाली सिद्ध करके महिमा–मण्डित किया है। आचरण की शुद्धि के लिए संतों ने सत्य, अहिंसा, दया, धर्म, दान आदि का उपदेश दिया।

साराशंतः सिद्ध–नाथों की भक्ति–साधना के प्रभाव को संतों ने आत्मसात किया। उसमें उन्होंने मौलिक चिन्तन के रंगों को समाहित कर अपनी भक्ति साधना को नूतन स्वरूप प्रदान किया। उनकी भक्ति को कर्मकांडों युगीन धार्मिक सिद्धांतों के दायरों से मुक्ति दिलाकर उसे सामान्योन्मुखी बनाती है।

4.4 सिद्ध-नाथ और हिन्दी-संतः हठयोग-साधना

4.4.0 हठयोग एक ऐसी शारीरिक साधना है, जिसके द्वारा साधक अमरत्व प्राप्त करता है। यह अमरत्व उसे सूर्य, चन्द्र के मिलन से, शुक्र और रज के मिलने से या शक्ति एवं शिव के मिलने से प्राप्त होता है।[101] हठयोग के दो आधार भूत सिद्धांत है। प्रथम के अनुसार समस्त ब्रह्माण्ड घट में है तथा दूसरे के अनुसार शरीर में जीवात्मा और परमात्मा दोनों अवस्थित हैं। उनका मिलना ही योग है।[102]

सिद्ध–नाथ एवं प्रमुख हिन्दी–संतों ने अपनी भक्ति–साधना में हठयोग को प्रश्रय दिया है।

4.4.1 सिद्ध-नाथः हठयोग-साधना – सिद्ध–नाथों ने अपनी भक्ति–साधना में हठयोग साधना को अपनाया है। सिद्धों के योग के छः अंग प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, अनुस्मृति तथा समाधि थे।[103]

100. उपरिवत् पृ. 74
101. निर्गुण साहित्यः सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पृ. 55
102. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि – पृ. 479–80
103. सिद्ध साहित्य – पृ. 210

सिद्धों की हठयोग साधना चित्त निरोध से प्रारम्भ होती है। जिसकी अन्तिम परिणति समाधि है, जो महामुद्रा के साथ साधक के समागम अथवा प्रज्ञा व उपाय के समागम के कारण सहज समाधि कहलाती है। यही इनकी हठयोग साधना का चरम लक्ष्य है। सिद्ध सरहपाद ने शबर का साधक एवं शबरी बाला के रूप में सहजावस्था का सुन्दर निरूपण किया है। यथा –

ऊँचा–ऊँचा पाबत तहिं वसइ सबरी वाली।

मोरङ्गी पिच्छि प (हि) रहि सबरी गिवत गुजरी माला।

ऊमत सबरो पागल सबरो, माकर गुली गुहाड़ा।

तोहारि णिअ धरिणी सहज सुन्दरी। ध्रुव।

णाणा तरूवर मौलि रे गअणत लागेलि डाली।

ए कली सबरी ए वन हिण्डइ, कर्ण कुंडल वजधाली।

तिअ धाउ खाट पडिला सबरी, महासुख सेज छाइली।

सबरो भुजंग णइरामणि दारी पेक्ख (त) राति पोहाइली।

हिए ताबोला महासुहे कापुर खाई।

सून निरामणि कण्ठे लइआ महासुहे राति पोहाई।

गुरू वाक पुंछआ बिन्ध णिअ मणे वाणे।

एके शर–सन्धानेंबिन्धह, बिन्धह परम णिवाणें।

उमत सबरो गरूआ रोषे,

गिरिवर सिहर सन्धि पइसन्ते, सवरो लोड़िब कइसे। [104]

नाथों के षडांग योग के अंग आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि हैं। जिनमें से ध्यान, धारणा, समाधि अवस्था में परम तत्त्व में पूर्ण सम्पूर्ण उसीकी सत्ता में लीन होने का भाव दिखाई देता है। नाथों में समाधि अवस्था अन्तिम एवं सर्वोपरि अवस्था है। जहाँ व्यक्ति और विश्व, अहं और इदम, आत्मा और पर का विरोध शमित हो जाता है। उसका मस्तिष्क लोकोत्तर मस्तिष्क और उसकी शक्ति लोकोत्तर शक्ति हो जाती है।[105] साधक साधना में इतना मग्न हो जाता है कि सभी प्रकार के बंधनों को काटता हुआ नाथ स्वरूप हो जाता है। यथा

निष्पती जोगी जानिबा कैसा। अगनी पाणी लोहा मानै जैसा।

राजा परजा समिकरि देष। तब जानिबा जोगी सपति का भेषा। [106]

---

104. दोहाकोश – पृ. 24–25

105. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य – पृ.

106. गोरखबानी पृ. 47

4.4.2 हिन्दी-संत : हठयोग-साधना – संतों ने हठयोग को सिद्धांत रूप में नहीं अपनाया है। हठयोग की बहुत सी बातें उनके साहित्य में अस्त–व्यस्त अवस्था में बिखरी पड़ी है। उनके लिए तो हठयोग सहजयोग का साधन है, तथा सहज योग द्वारा आचरण शुद्धि में हुआ योग ही हठयोग है। इस प्रकार संतों ने हठयोग का सहजीकरण कर दिया है।

संतों ने भक्ति की तरंग में आकर जगह–जगह सुरति–निरति इडा–पिंगला, चन्द्र–सूर्य, सुषुम्ना, कुण्डलिनी, अष्ट चक्र, अष्टकमल इत्यादि का उल्लेख किया है तथा इनका सम्बंध भक्ति से स्थापित करके वाणी में हठयोग एवं प्रेमा भक्ति का अद्‌भुत समन्वय किया है।[107]

संतो ने जीवात्मा और परमात्मा की एकता के रूपक भी प्रस्तुत किये हैं। सहज समाधि अवस्था में पहुँच कर साधक परमात्मा के अलौकिक और अवर्णनीय आनन्द को प्राप्त करता है, जो कि सिद्ध–नाथों के हठयोग का भी अन्तिम लक्ष्य है। इस सहज समाधि के बाद जन्म–मरण का समापन होता है और साधक मुक्त हो ब्रह्म में लीन हो जाता है। यथा –

सहज समाधि उपाधि रहत, पुनि बड़ै भागि लिव लागी।

कह रविदास प्रगासु रिदै धरि, जनम मरण भै भागी। [108]

संत कबीर भी सहज समाधि में हर्षातिरेक के कारण आनन्द मगन हो गा उठते हैं –

अब हम पाइबो रे पाइबो ब्रह्म गियान।

सहज माधि रूख में रहिबों कोटिकलप विसराय। [109]

साराशंतः सिद्ध–नाथों की हठयोग साधना को संतों ने सिद्धांत रूप में नहीं अपनाया है। उनकी वाणी में यत्र–तत्र योग–विषयक बातों का उल्लेख मात्र दिखाई देता है। संतों के लिए हठयोग मात्र सहजयोग की प्राप्ति का साधन है। संतों का लक्ष्य भी सहज योग ही है। अतः संतों ने योग का सहजीकरण कर दिया है।

4.5 सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी-संतः धर्म-साधना और निम्न वर्ग

4.5.0 समाज के सुव्यवस्थित संचालन हेतु बनाई गई कर्माधारि वर्ण व्यवस्था विकृत हो जन्माधारित हो गई। वर्ण को व्यापकता प्रदान करते हुए वर्ग का उदय हुआ। समाज में शूद्र, गरीब, पिछड़ी जातियाँ, स्त्री आदि को निम्न वर्ग मान उन्हें अछूत एवं

---

107. प्रेम भगति हडोलना सब सन्तनि कौ विश्राम।
    चन्द सूर दोइ खम्भवा, वंक नालि की डोरि। – क.ग्र. पृ. 91 / 18
108. आदि गुरू ग्रथसाहिब, रागु गूजरी वाणी रविदास जी की पृ. 658
109. क. ग्र. – पृ. 89

घृणास्पद माना जाने लगा। उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक अधिकारों को प्रभुत्व सम्पन्न तथाकथित उच्चवर्ग ने छीन लिया।

धर्म–नियंता बने ब्राह्मण–मुल्ला वर्ग ने अपने हित संवर्धन की तुच्छ लालसा में निम्न वर्ग को नैसर्गिक, धार्मिक अधिकारों से वंचित किया। मानवतावादी साधकों–संतों को समझते देर नहीं लगी कि ऊँच–नीच की यह दूषित विचारधारा पीढ़ियों को मतिभ्रष्ट कर देगी। अतः उन्होंने इस स्वार्थयुक्त व्यवस्था का प्रतिकार किया। उन्होंने अपनी अमृत–वाणी द्वारा समरसता एवं समता की भावना का प्रसार करके जाति–वंशगत ऐश्वर्य के मद में चूर उच्च–वर्ग की स्वार्थ–तंद्रा को भंग किया। उन्होंने हताश निम्न वर्ग को गले लगाते हुए उनके आत्मविश्वास, आत्मगौरव को झकझोरा तथा उन्हें उनके अधिकारों के प्रति सचेत किया।

4.5.1 सिद्ध-नाथः धर्म-साधना और निम्न वर्ग – सिद्ध–नाथ निम्न वर्ग की दारूण दशा को देख व्यथित थे। उन्होंने ऊँच–नीच की भावना को जन्म देकर उसे निरन्तर विकराल स्वरूप प्रदान करने वाले उच्च वर्ग (धर्म नियंता) को फटकारा तथा निम्न वर्ग में असीम आत्मविश्वास का संचार किया।

4.5.1.1 धर्म नियंताओं की भूमिका पर प्रहार – असत् धर्म के पोषक बन निम्न वर्ग पर धार्मिक प्रभुत्व रखने वाले तद्युगीन धर्म नियंताओं को सिद्ध–नाथों ने आड़े हाथों लिया। सिद्धोंने उन्हें उनके कुकृत्यों के कारण हीन जाति का बताया –

ओह ब्राह्मण हीन जाति गृह (संकीर्ण गवेषणा याचक जिमि)। [110]

तद्युगीन धर्म–नियंताओं ने अपने थोथे ज्ञान के हथियार से निम्न वर्ग को छला और छीला था। ऐसे में जागरूक सिद्ध–नाथों ने 'पंडिअ सअल सत्थ वक्खाणअ, देहहि बुद्ध वसन्त ण जाणअ'[111] और 'पंडित ज्ञान मरो क्या झूझि'[112] द्वारा उनके ज्ञान को थोथा एवं अनुपयोगी सिद्ध करके उनके धर्मदण्ड (हथियार) को भोटा बना दिया। सिद्ध–नाथों ने धर्म के ठेकेदारों द्वारा आडम्बरों, कुरीतियों का खुलकर विरोध किया। उन्होंने निम्न वर्ग के समक्ष धर्म–नियंताओं का कच्चा चिट्ठा खोलकर उनसे सचेत रहने की शिक्षा प्रदान की।

4.5.1.2 असीम आत्मविश्वास का संचार – तद्युगीन निम्न वर्गीय जनता में सुप्त आत्मविश्वास को जगाने हेतु सिद्धनाथों ने सब घट व्यापक एक ब्रह्म की अवधारणा का प्रचार करके ऊँच–नीच को कृत्रिम बंधन घोषित कर निन्दनीय ठहराया।

धर्म–नियंताओं ने निम्न वर्ग को तुच्छ एवं हेय घोषित कर भक्ति के द्वारों को उनके लिए बंद कर दिया था। जागरूक सिद्ध–नाथों ने निम्न वर्गीय तिरस्कृत व्यक्तियों को अपना शिष्य बना भक्ति के नवीन पटों को खोल दिया।

---

110 दोहा कोश – राहुल जी पृ 195

111 उपरिवत् – पृ 18

112 सबदी – शार्दूल सिंह पृ 35 / 134

4.5.1.3 श्रमशीलता –सिद्ध–नाथों ने उपेक्षित एवं पशुतुल्य जीवन को अपनी नियति मान बैठे निम्न वर्ग को उसकी क्षमताओं का बोध कराते हुए उन्नत जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान की। तद्युगीन समाज में निम्न वर्ग द्वारा किये गये कार्यो को हेय माना जाता था। ऐसे में सिद्ध–नाथों ने निम्न वर्ग में श्रम की महत्ता की भावना को जगाने के लिए कर्त्ता एवं उनके कर्म को ब्रह्म एवं कर्म की उपमा प्रदान कर गौरवान्वित किया।

सिद्ध शांतिपाद ने रूई धुनने के कार्य को आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान करते हुए कहा –

तुला धुणि धुणि आँसुरे आंसु। [113]

सिद्ध–नाथों ने श्रम की महत्ता का निरूपण करके निम्न वर्ग को समाज संचालन का आधार घोषित किया।[114]

4.5.1.4 सादा-जीवन उच्च-विचार – सिद्ध–नाथों ने निम्न वर्ग को सादा जीवन उच्च विचार का उन्नति मंत्र सौपा है। 'धन जोबनकी करै न आस' का आह्वान करके नाथ सांसारिक वैभव–प्रलोभनों से मुक्त रहने का संदेश निम्न वर्ग को देते हैं। मानव का बहुत कुछ मूल्यांकन उसके बोल–चाल, आचार–विचार, रहन–सहन तथा व्यवहार से होता है, अतः नाथ निम्न वर्ग को सहज जीवन जीने, मधुर बोलने, धैर्यशाली बनने, अहं विसर्जन करने तथा सहज भाव में अग्रसर होने की सीख दे, उसका मार्ग प्रशस्त करते हैं।[115]

4.5.1.5 श्रेष्ठ मानव – सिद्ध–नाथों ने निम्न वर्ग को सत्य, अहिंसा, दया, प्रेम, करूणा, बंधुत्व का पाठ पढ़ा। उन्हें सच्ची मानवता का प्रतिनिधि बनने की प्रेरणा दी।

4.5.2 हिन्दी-संत : धर्म-साधना और निम्न वर्ग – निम्न वर्ग को धर्म से पृथक करने का जो षड्यंत्र धर्म नियंताओं ने रचा था। वह संतों के समय तक आते–आते विकराल रूप धारण कर चुका था। इस ऊँच–नीच के लाइलाज रोग ने समाज को पतन के गर्त में ढकेल दिया था। ऐसे में सिद्ध–नाथों की परिपाटी का अनुगमन करते हुए संतों ने जर्जर धार्मिक व्यवस्था पर निर्ममता पूर्वक प्रहार किये तथा निम्न वर्ग के हितों की पैरवी की।

5.2.1 धर्म-नियंता की भूमिका पर प्रहार – धर्म–नियंताओं ने धर्म को अपने तक सीमित कर लिया था। उन्होंने निम्न वर्ग से साधनागत अधिकार छीन उन्हें तिरस्कृत घोषित किया। संतों ने धर्म नियंताओं (पंडित–मुल्ला) की चाल को समझते हुए उनकी

---

113. साहित्येतिहास – पृ. 163
114. सबदी – शार्दूलसिंह पृ. 6/19
115. हबकि न बोलिबा ठबकि न चलिबा धीरै धरिबा पांव।
गरब न करिबा, सहजै रहिबा भणत गोरष रावं। – उपरिवत् पृ 9

धार्मिक भूमिका पर ही हमला बोल धर्म नियंताओं की नींद हराम कर दी। कबीर ने पंडित कवन कुमति तुम लागे[116] की घोषणा कर कुमति के पोषक ब्राह्मण को जोरदार फटकार लगाई। संतों ने अधिक गरब न होय भलाई[117] द्वारा धर्म नियंताओं के वंशानुगत मद को मसल कर रख दिया तथा उन्हें मिथ्या अहंकार के परित्याग का संदेश दिया। संतों ने धर्म नियंताओं के ह्रदय में स्थित, काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि को आलोकित करके उनकी छवि समाज के समक्ष उजागर की।[118]

भाव भगति भावै नहीं अपनी भक्ति का भाव'[119] द्वारा संतों ने धर्म नियंताओं की चारित्रिक कमजोरियों को रेखांकित किया।

तद्युगीन धर्म नियंताओं ने अपने थोथे ज्ञान द्वारा धर्म की मनचाही व्याख्या प्रस्तुत कर लोगों को उलझा कर धर्म पर एक छत्र राज कर रखा था। अतः पंडित वाद वन्दते झूठा[120] का आह्वान करके संतों ने 'थोथा पंडित, थोथी बानी, थोथी हरिबिन सबै कहानी'[121] द्वारा धर्म–नियंताओं के ज्ञान को अनुपयोगी सिद्ध किया है। 'झाड़ चले हम कछु नहीं लिया[122] कहते हुए संतों ने धर्म–नियंताओं के मिथ्याज्ञान से निम्न वर्ग को मुक्त होने का संदेश दिया है।

5.2.2 असीम आत्म-विश्वास का संचार – निम्न वर्ग की दारूण दशा को देख संत जन कराह उठे। उन्होंने निम्न वर्ग के धार्मिक अधिकारों की रक्षा का बीड़ा उठाया तथा निम्न वर्ग के ह्रदय में बनी हीनता की ग्रंथि पर प्रहार करके उनमें आत्मविश्वास, आत्मबल एवं आत्म–गौरव का संचार किया।

संतों ने 'सब घट एकै आत्मा[123] की घोषणा करके ऊँच–नीच की दीवार को ढहा समाज को भाईचारे का पाठ पढ़ाया।

निम्न वर्ग को हीन जाति का होने के कारण धर्म–साधना से वंचित किया गया था। ऐसे में संतों ने स्वयं को बार–बार निम्न जाति का बता बड़े गर्व के साथ उल्लेख किया है। यथा –

---

116. कबीर वाड्.मय पृ. 205
117. क. ग्र. पृ 240 रमैणी – 5
118. भीतर द्वन्द्वर भर रहे तिनको मारे नाही– श्री दादू वाणी पृ. 263 / 18
119. श्री दादू वाणी – पृ. 273 / 78
120. क. ग्र. – पृ. 101 / 40
121. रैदास साहित्य , भाग – 2 पृ. 141 / 68
122. क. ग्र. पृ. 272
123. श्री दादू वाणी – प्राक्कथन से

नागर जनां मेरी जाति बिखिआत चमारं। [124]

तथा

जाति जुलाहा नाम कबीरा। [125]

इस प्रकार संतों ने स्वयं को बार–बार निम्न जाति का कहकर जाति अहंकार को निरर्थक कर दिया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि भक्ति के बल से निम्नतम जाति का व्यक्ति भी परमगति को प्राप्त कर सकता है। भगवान के दरबार में पहुँचने के लिए जाति या वंश बाधा नहीं है। प्रभु कृपा से सभी महान् बन जाते हैं। यथा –

नीचहूं ऊँच करै मेरा गोविन्दु, काहुते न डरै। [126]

धर्म–नियंताओं ने भक्ति–सरिता के प्रवाह को रोक कर स्वयं तक सीमित कर लिया था। संतों ने उस भक्ति–सरिता की निर्मल धारा को निम्न वर्गीय जनता के मध्य प्रवाहित किया। उन्होंने सिद्ध–नाथों का अनुसरण करके निम्नवर्गीय जनता को अपना शिष्य बनाया।

इस प्रकार संतों ने धर्म–नियंताओं की अवहेलना करते हुए निम्न वर्गीय जनता को भक्ति निसेनी[127] पर चढ़ाते हुए उनमें आत्मविश्वास को जाग्रत किया।

5.2.3 **श्रमशीलता** – तद्युगीन निम्न वर्ग के तिरस्कार का एक कारण उनका व्यवसाय माना जाता था। अधिकांश संत स्वयं निम्न वर्ग से थे, किन्तु श्रमजीवी संस्कारों की पवित्रता ने उनमें भरपूर आत्मविश्वास भरा था। संतों ने अपने इसी आत्मविश्वास को निम्न वर्ग में जगाया।

उन्होंने बताया कि ये छोटे–छोटे व्यवसाय ही समाज–व्यवस्था का आधार हैं। यही समाज को गतिशील बनाये हुए हैं। सिद्ध–नाथों का अनुकरण करते हुए संतों ने आध्यात्मिक क्रियाओं का व्यावसायिक क्रियाओं से नाता जोड़कर श्रम क्रियाओं द्वारा साधना–पद्धत्ति को समझाया। सूत कातते वक्त की एकाग्रता एवं साधना की एकाग्रता का अद्भुत मिलाप अवलोकनीय है –

नानहां काती, चित्त दे मंहगे मालि बिकाय।

गाहक राजा राम है और न नेड़ा आए।[128]

संत स्वयं श्रम से उपार्जित धन का ही उपभोग करते थे। उन्हें सम्पत्ति से मोह नहीं था। तभी तो रविदास ने ईश्वर को पारस पत्थर लौटा दिया था –

---

124. संत रैदास – साहित्य भाग– 2 पृ. 64 / 1 (राग मलार)
125. क. ग्र. पृ. 181
126. आदि गुरू ग्रंथ साहिब – पृ. 1106
127. सीढ़ी ''
128. क. ग्र. पृ. 27

माधवे पारस मनि लइ जाउ।

मोहि सोने का नहि चाउ।[129]

संतों ने कर्म एवं भजन का सुन्दर समन्वय करते हुए व्यक्ति को श्रेष्ठ मार्ग दिखाया है –

जिव्हा से औकार भज हत्यन सौ कर कार।

राममिलहि घर आइकर कहि रविदास चमार। [130]

इस प्रकार संतों ने श्रम द्वारा ईश्वर प्राप्ति का मार्ग निम्न वर्ग को दिखाया है।

5.2.4 **सादा जीवन उच्च विचार** – संतों ने निम्न वर्ग को भक्ति में लीन रहते हुए सादा जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान की है तथा उच्च आदर्शों को आत्मसात करने की शिक्षा प्रदान की है।

रूखा सूखा खाइ के ठंडा पानी पीव।

देखि बिरानी चूपडी, मत ललचावै जीव। [131]

द्वारा संतों ने सादा जीवन पर बल दिया है।

संत मलूक दास दया–धर्म को मन में बसाने, अमृत–वाणी बोलने तथा विनम्र व्यक्ति को ही ऊँचा मानते हैं। यथा –

दया धर्म हिरदे बसै, बोलै अमृत बैन।

तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन। [132]

5.2.5 **श्रेष्ठ मानव** – संतो ने निम्न वर्गीय जनता को मानवीय मूल्यों को अपनाने का संदेश दिया है। उन्होंने अपनी वाणी द्वारा प्रेम, दया, अहिंसा, सत्य, बंधुत्व का शंखनाद करके निम्न वर्ग को सच्ची मानवता का प्रतिनिधि बनने की शिक्षा दी है।

संत दया, नम्रता, दीनता, शील, क्षमा एवं संतोष के सुमिरन का आह्वान करते हुए निम्न वर्ग को कहते हैं कि ये जीवन–मूल्य ही मुक्ति के साधन हैं। अतः इन्हें आत्मसात् करे।

दया नम्रता दीनता, छिमा, सील, संतोष।

इन कूँ लै सुमिरन करै, निस्चै पावै मोख। [133]

---

129. संत रविदास – इन्द्र राज पृ. 97
130. उपरिवत् – पृ. 122
131. स.बा. स. प्रथम – पृ. 57
132 संत बानी संगह – प्रथम भाग पृ 98
133. उपरिवत्– पृ. 140

सारांशतः सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी संतों ने धार्मिक अधिकारों से वंचित निम्न वर्ग को गले से लगाया। उन्होंने उसे अपना शिष्य बना साधना का अधिकार दिया। उन्होंने निम्न वर्ग में सुप्त आत्मविश्वास को जाग्रत करके, मानवीय मूल्यों को आत्मसात कर उन्हें वास्तविक मानवता का प्रतिनिधि बनाया।

4.6 सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी-संत : धार्मिक कर्म-काण्डों पर प्रहार

अनादि काल से जो धर्म का सुदृढ़ दुर्ग निर्मित था, उसे समाज में निरन्तर फैलते कर्मकाण्डों, बाह्याचारों ने न केवल खोखला बनाया; वरन् उसकी नींव तक हिला कर रख दी। जिससे धर्म का पावन स्वरूप लुप्त होने लगा। जनता नियम बद्ध होने लगी। वह कर्मकाण्डों के व्यूह में फँसती चली गई। ऐसे विषम समय में हमारे आलोच्य साधकों, संतों ने पथ–भ्रष्ट समाज को सांस्कृतिक चैतन्य प्रदान करने का दायित्व ग्रहण किया। उन्होंने धार्मिक कर्म–काण्डों का खण्डन करके, व्यापक एवं सार्वभौम मानव–धर्म को प्रसारित किया।

4.6.1 सिद्ध-नाथ : धार्मिक कर्मकाण्डों पर प्रहार

सिद्ध–नाथों ने जब देखा कि तद्युगीन धर्म अपने पावन स्वरूप को छोड़ता जा रहा है तथा धर्म–नियंता उसे अपने हित संवर्धन हेतु मनचाहे स्वरूप में ढाल रहे हैं। जिससे धर्म, कर्म काण्डों व बाह्याचारों की शरणस्थली बन गया है, तो उनका हृदय कराह उठा। उन्होंने अपनी वाणी द्वारा धर्म के इस दूषित आडम्बर युक्त मुखौटे को हटा सामान्य जन को धर्म के पावन स्वरूप के दर्शन कराये।

इसके लिए सिद्ध–नाथों ने तीर्थ–व्रत, पूजा–पाठ, तंत्र–मंत्र, थोथे ज्ञान, कुरीतियों, आडम्बरों का खुल कर विरोध किया।

6.1.1 शास्त्र एवं तंत्र-मंत्र खण्डन – सिद्धों ने शास्त्रीय ज्ञान को अनुपयोगी सिद्ध करने के लिए उसे मरूस्थल की संज्ञा प्रदान की। जहाँ व्यक्ति भटकता रहता है और उसकी तृष्णा शांत नहीं होती। अर्थात् शास्त्र–ज्ञान, भूल–भुलैया है, जिसमें फँसने पर व्यक्ति निकल नहीं सकता –

बहुसात्थात्थ–मरूत्थलिहिं, तिसिअ मरिब्बो तेहिं।[134]

सिद्धों के समय तंत्र–मंत्र का बोलबाला था। धर्म–नियंता इनके सहारे लोगों को भ्रमित करते थे। विद्रोही संतों ने लोगों को बताया, कि तंत्र–मंत्र शांति–दायक नहीं है। ये तो भ्रम है। अतः सिद्धों ने इनके परित्याग का संदेश भ्रमित संसार को प्रदान किया।[135]

---

134. दोहा कोश – पृ. 12

135. मन्तण तन्तण धेअण धारण, सत्ववि रे बढ़ वि (ब) भम–कारण।
असमल चीअम झाणे म झाणें खरडह। सुह अचछन्तें म अप्पण झगडह। – उपरिवत् पृ. 10

नाथों ने जनता को वेद–पुराणों की मृगमरीचिका से निकाला एवं स्पष्ट घोषणा की कि – ये वेद–पुराण परमात्मा का भेद नहीं जानते, वह परमात्मा गहन गम्भीर है, उसे वाणी द्वारा नहीं पाया जा सकता। यथा –

वेद कतेब न षाणी बाणीं, सब ढंकी तलि आणी।

गगन सिषर महि सबद प्रकास्या, तहं बूझै अलष बिनांणी। [136]

नाथों ने मुस्लिम धर्म ग्रंथ–कुरान के वास्तविक मर्म को समझने की शिक्षा भी दी।[137]

6.1.2 आडम्बरों का खण्डन – सिद्ध–नाथों ने धर्म के नाम पर फैलते आडम्बरों को चुनौती दी। उन्होंने तार्किक शैली को अपना करके आडम्बरों का कड़ा विरोध किया। सिद्ध–नाथों ने तद्युगीन ब्राह्मणों के थोथे ज्ञान, कर्म–काण्डों, हवन–यज्ञ आदि को अपनी तीव्र विरोधधारा में आहुत किया।

ब्राह्मणों द्वारा फैलाये जा रहे आडम्बरों का खुलासा करते हुए सिद्धों ने स्पष्ट किया कि – ये ब्राह्मण असत धर्म के पोषक है; ये वेद–मंत्र पढ़ते है, हवन–धूएँ से आँखों को पीड़ित करते हैं तथा लोगों में धर्म की मिथ्या धारणाओं को फैलाते हैं –

ब्रम्हणें हिम जानन्तहि भेउ। एवइ पढ़िअउ एच्चउवेउ।

कजजे विरहिअ हुअवह होमे। आक्खि डहाविअ कडुओ धूमें।

मिच्छेहिं जग वाहिअ भुल्ले। धम्माधम्म ण जाणिअ तुल्ले। [138]

सिद्धों ने नग्न रहने, मोर पंख धारण करने से मुक्ति मिलने की भ्रांत धारणाओं को आडम्बर घोषित करके इनका विरोध किया।[139] नाथों ने धार्मिक आडम्बरों को व्यर्थ बताते हुए घोषणा की कि पैरों में पावड़ी धारण करने से फिसलने का भय रहता है, कमर में लोहे की साँकल कष्ट देती है नग्न रहने, मौन व्रत करने, केवल दूध पीकर जीने से योग नहीं सधता, अपितु काया को कष्ट ही होता है।[140] अतः इन्हें त्यागना ही श्रेष्ठ होगा।

धर्म के नाम पर केश–मुण्डन का विरोध करते हुए चरपट नाथ ने लोगों को बताया कि केश काटना तो आडम्बर है। यदि काटना ही है, तो मन के विकारों को काटों।

---

136. सबदी – शार्दूल सिंह जी पृ. 3/4
137. महमद – महमद न करि काजी, महमंद का विषम विचारं – उपरिवत् पृ. 4/9
138. दोहा कोश – पृ. 2/1,2,3
139. सतसुधासार – पृ. 4,5
140. पावडिया पगफिसलै अवधू लोहै छीजंत काया।
     नागा मूनी दूधाधारी एता जोग न पाया। – सबदी – पृ. 12/39

मन नहीं मूंडे केस, केसां मूड़या क्या उपदेश।

मूडे नहीं मन मरदक मान, चरपट बोले तत गियान। [141]

देह में ही तीर्थ का संदेश देते हुए सिद्धों ने देव–प्रतिमा पूजन, तीर्थ–व्रत आदि नैनिमित्तक आचरणों को मुक्ति का साधन मानने का कड़ा विरोध किया है। यथा –

देवस पूजहू तित्थ णा जावा।

देव पूजाहि णा मोक्ख पाणा। (संत सुधासार – पृ. 10/6)

उन्होंने लोगों को बताया कि देह में ही गंगा, यमुना, सरस्वती है, यहीं प्रयाग है[142] अतः तीर्थ–यात्रा पर भटकना व्यर्थ एवं अनुपयोगी है।

'अवधू मन चंगा तो कठौती में गंगा' का उद्घोष करके नाथों ने लोगों को बताया कि तीर्थाटन से निर्वाण–पद का भेद नहीं पाया जा सकता।[143]

'घट ही भीतर अठसठि तीरथ, कहाँ भ्रमै रे भाई'[144] का सम्बोधन करके गोरखनाथ ने भ्रमित जनता को घट में ही तीर्थ के वास्तविक सत्य से अवगत करवा के व्यर्थ भटकन से मुक्त होने का संदेश दिया।

सब घट व्यापक एक ब्रह्म है, काहू को जिन मारी'[145] द्वारा नाथ धर्म के नाम पर बढ़ती हिंसक वृत्ति पर विराम की चेष्टा करते हैं।

सिद्ध–नाथों ने कर्मकाण्डों एवं आडम्बरों को मुक्ति मार्ग का रोड़ा मानते हुए इनके परित्याग का संदेश प्रेषित किया।

4.6.2 हिन्दी-संत : धार्मिक कर्मकाण्डों पर प्रहार

हिन्दी संतों ने सिद्ध–नाथों से प्रेरणा ग्रहण करके तद्युगीन धर्म में प्रचलित कर्म–काण्डों को समाप्त करने का बीड़ा उठाया। इसके लिए उन्होंने व्यंग्य को हथियार बना करके पाखण्डों पर निर्ममता पूर्वक करारा प्रहार किया। उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम दोनों धर्मों में व्याप्त कर्म–काण्डों को निन्दनीय सिद्ध किया।

6.2.1 शास्त्र-विरोध – संतों ने सिद्ध–नाथों की तर्ज पर शास्त्र ज्ञान को व्यर्थ सिद्ध किया। उन्होंने वेदो–शास्त्रों का विरोध इसलिए किया क्योंकि वे रूढ़ि के पोषणकर्त्ता हैं। वेद–शास्त्रों को पढ़–पढ़ कर पण्डित लोग वेद के वास्तविक अर्थ तत्त्व ज्ञान को भूल गये हैं, इसी की पुष्टि मलूक दास ने की है –

---

141. नाथ सिद्धोकी बानिया – पृ. 32
142. दोहा कोश – पृ. 22/96
143. कपड़ा सन्यासी तीरथ भरमाया, न पाया नृबांण पद का भेवं – सबदी – पृ. 26/96
144. सबदी– पृ. 43/163
145. नाथ सिद्धो की बानिया – पृ. 112

वेद पढ़–पढ़ पण्डित भूले। [146]

संत कबीर ने पंडित मुल्ला जो लिख दिया छांडि चले हम कछु न लिया द्वारा पंडितों के शास्त्र ज्ञान के परित्याग का संदेश सामान्य जन को दिया है।

6.2.2 पाहन पूजा की व्यर्थता – संत जन पाहन पूजा का कड़ा विरोध करते हुए उसे व्यर्थ सिद्ध करते हैं। मूर्तिपूजा के प्रति अरूचि प्रदर्शित करते हुए कबीर ने कहा है –

हम भी पाहन पूजते, होते वन के रोझ।

सतगुरू की किरपा भयी, डारया सिर थै बोझ। [147]

इस प्रकार कबीर प्रतिमापूजा को बोझ कहकर उससे जगत् को मुक्त होने का उपदेश देते हैं।

पत्थर को देव मान उसका पूजन करने वाले अंत में स्वयं पत्थर भाव को प्राप्त होते हैं ऐसे बहुत से अज्ञानी संसार–सागर में डूब गये है।[148] ऐसी धारणा व्यक्त कर दादू दयाल ने लोगों को प्रतिमा–पूजन से सचेत किया।

संत पलटू साहिब ने मूर्ति–पूजा को व्यर्थ बता करके तन को देहरा व मन को सालिगराम मानने का संदेश समाज को दिया है। यथा –

जल पषान के पूजते, सरा न एकौ काम।

पलटू तन करू देहरा, मन करू सालिगराम। [149]

कबीर मूर्ति–पूजा के साथ भोगप्रथा का मजाक उड़ाते हुए कहते हैं कि –

लाडू लावर लापसी पूजा चढ़े अपार।

पूजि पुजारा ले चला दे मूरति के मुखछार। [150]

इस प्रकार संत पाषाण–पूजन, भोग–प्रथा से तद्युगीन भ्रमित जनता को सावधान करते हैं।

6.2.3 अवतारवाद का विरोध – संतों ने बहुदेव वाद एवं अवतार वाद का दृढ़ता के साथ विरोध किया है। कहै कबीरएक राम जपहु रे'[151] की घोषणा करके उन्होंने एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा की है।

146. संत काव्य में विद्रोह का स्वर – पृ. 53 से लिया गया।

147. क. ग्र. – पृ 44 / 4

148. अन्तकाल पत्थर भये, बहु बूडे इहि ज्ञान – श्री दादू वाणी – पृ. 123

149. स.बा. स. प्रथम भाग– पृ. 205

150. क.ग्र. – पृ. 155 / 198

151. क.ग्र. – पृ. 106 / 57

गुरू नानक ने ब्रह्म को एक माना है, जो आत्मस्वरूप सबका स्रष्टा, परमसमर्थ, निर्भय, निर्वैर, अजन्मा, कालातीत है –

एक ओमकार सति नामु करता पुरखु निरभउ निखेरू

अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरू प्रसादि। [152]

6.2.4 तीर्थ-यात्रा एवं वेश की व्यर्थता – मन, मथुरा, दिल द्वारिका, काया काशी जानि[153] की धारणा में विश्वास करने वाले संत तीर्थयात्रा को निरर्थक मानते हैं। संत गरीबदास तीर्थ करने पर मुक्ति की धारणा का विरोध करते हुए कहते हैं –

कोटि कूप तीरथ खनै,मिटै नहीं जम मार। [154]

संत 'अठसठ तीरथ भरमता, भटक मुआ संसार[155] की धारणा व्यक्त करके तीर्थ की निरर्थकता सिद्ध करके सच्चे ब्रह्म विचार की शिक्षा भ्रांत समाज को देते हैं।

मक्का मदीना द्वारिका, बद्री और केदार को बिना दया के मलूक दास मिथ्या घोषित करते हैं।[156] संत तीर्थ–यात्रा पर विराम लगाने के साथ ही 'कह यारी घर है मिलै, काहे जाते दूर[157]', का संदेश समाज को देते हुए हृदय में ब्रह्म को खोजने का उपदेश देते हैं।

जिस प्रकार भावहीन उपासना व्यर्थ है उसी प्रकार जप–माला, छापा तिलक, मुंडन, केश रखना आदि भी अनुपयोगी है। तद्युगीन साधु सिर मुड़ाने को धर्म मान बैठे थे ऐसे में कबीर ने उन्हें फटकारते हुए कहा कि केशों को काटने से क्या होगा अपने मन के विकारों को काटो –

कबीर मन मूढ़या नहीं केस मुडाय काइ।

जो किछु किया सो मन किया मुंडा मुंड अजाइ। (क. ग्र. – पृ. 257 / 105)

संत धरनी दास जी कुल को त्याग कर वेश धारण किये सत्य से अनभिज्ञ लोगों को समझाते हैं कि ऐसा करने से प्रभु प्रसन्न नहीं होगे; क्योंकि ये सब व्यर्थ है –

कुल तजि भेष बनाइया, हिये न आयो साच।

धरनी प्रभु रीझै नहीं, देखत ऐसो नाच। [158]

---

152. जपुजी – 1
153. क. ग्र. – पृ. 44 / 10
154. संत बानी संगह – प्रथम – पृ 173
155. उपरिवत् – पृ 188
156. उपरिवत् – पृ 99
157. संत बानी संग्रह–प्रथम – पृ. 114 / 5
158. उपरिवत् – पृ 109

तन को जोगी सब करै, मन को विरला कोइ[159] की घोषणा करके संत कर्मकाण्डों की अवहेलना करके मन का योगी बनने का संदेश देते हैं।

6.2.5 नमाज की व्यर्थता – संतों ने मुस्लिम धर्म में प्रचलित कर्म–काण्डों के साथ कोई रियायत नहीं बरती। उन्होंने नमाज को बाह्य साधना मान उसे अनुपयोगी बताया। अजॉं पर करारा व्यंग्य करते हुए कबीर ने कहा है –

कांकर पाथर जोरि कै, मसजिद लयी चुनाइ।

ता चढ़ि मुल्ला बॉंग दै, बहरा हुआ खुदाय। [160]

6.2.6 रोजा, हज की व्यर्थता – 'दिन में रोजा धरत हो रात हनत हो गाय' कहकर संत कबीर ने रोजे का मखौल उड़ाया है। संत मुल्ला ने मक्का यात्रा (हज) को मुक्तिदायक नहीं माना है, उन्हें कहा है कि मक्का जाने से बात खत्म नहीं होती (मुक्ति नहीं मिलती) वह तो तब मिलेगी जब व्यक्ति अहम का विसर्जन करेगा।[161]

'मन करि मका, कबिला करि देही, बोलन हारा जगतगुर ये ही'[162] का उद्घोष करके संतों ने सिद्ध–नाथों के समान देह को ही तीर्थ मानने की शिक्षा प्रदान की है।

6.2.7 हिंसा विरोध – धर्म की आड़ में पनपती हिंसा–वृत्ति को देख हिन्दी–संतों का हृदय द्रवित हो उठा तब उन्होंने इस कुकृत्यको अधार्मिक घोषित करके उसकी घोर अवहेलना की। 'कुंजरचींटी पसू नर, सबमें साहिब एक'[163] की उदार विचारधारा का पोषण करके हिंसा–वृत्ति पर विराम लगाया।

संत–प्रवर दादू दयाल दिशा भटके लोगो को संदेश देते हैं कि व्यक्ति अपनी बुराइयों को नहीं मारता, बल्कि जीव–हत्या करता है भला ऐसा करने से ईश्वर कैसे मिलेंगे–

आपस कौ मारे नहीं, पर कौ मारन जाहि।

दादू आपा मारै बिना, कैसे मिलै खुदाय। [164]

संत सभी प्राणियों में ब्रह्म का अंश स्वीकार करते हुए हिंसा–वृत्ति के परित्याग का संदेश देकर अहिंसा का मार्ग दिखाते हैं।

साराशंतः सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी–संतों ने धार्मिक कर्मकाण्डों का कड़ा विरोध किया तथा धर्म के पावन स्वरूप से लोगों का साक्षात्कार करवाया।

---

159 क. ग्र. – पृ. 46 / 17

160. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि – डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना पृ. 108से लिया गया।

161. बुल्ला मक्के गयाँग मुकदी नहीं जिचर दिलों न आप मुकाय – सं. बा. स. – पृ. 143

162 क. ग्र. – पृ. 107

163. स.बा. स. पृ. 98

164. स.बा. स. प्रथम भाग पृ. 93

4.7 सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी-संत : धर्म-साधना और नारी

4.7.0 वैदिक काल में नारी की स्थिति उन्नत एवं संतोषजनक थी, किन्तु उसकी यह गरिमा अक्षुण्ण न रह सकी। उत्तर वैदिक काल से उसकी सम्मान जनक स्थिति का क्रमिक रूप से ह्यास होता चला गया।

वैदिक धर्म में बढ़ते आडम्बरों, कर्मकाण्डों की जटिलता, ऊँच–नीच तथा कथित पवित्रता के प्रतिक्रिया स्वरूप बौद्ध–धर्म का आविर्भाव हुआ। नारी जो पुरूषों के अत्याचारों के बोझ तले दबी जा रही थी, शास्त्रकारों ने जिसे व्यक्तिगत आराधना का अधिकार भी नहीं दिया था, उसे बौद्ध काल में संवेदना का संदेश मिला।[165]

मानवता के उपासक महात्मा बुद्ध ने तिरस्कार के गर्त में गिरती नारी को समानता का धरातल प्रदान किया। उन्होंने रूढ़िवादी धारणाओं (नारी विषयक) पर विराम लगाते हुए इस सत्य का प्रकाशन किया कि पुरूष के समान नारी भी अपने पूर्व जन्म के सद्–असद् कर्मो का फल भोगती है। अतः उसे भविष्य के लिए अपने कर्मो पर निर्भर रहना चाहिए। इस प्रकार बुद्ध ने नारी को सत्मार्ग दिखाया और युगीन खोखले विचारों को घोर निन्दनीय घोषित किया। महात्मा बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य आनन्द के अनुरोध पर संघ के द्वार नारी के लिए खोल करके एक क्रांतिकारी कदम उठाया। संघ में प्रवेश पाने वाली प्रथम महिला बुद्ध की सौतेली माता प्रजावती गौतमी थी।[166] गौतम बुद्ध ने संघ के द्वार विवाहिता, अविवाहिता, विधवा, बंध्या,वेश्या, पतिता सभी के लिए उन्मुक्त किये।

बौद्ध–धर्म के इस 'सर्वजनहिताय' के सिद्धांत से नारी को भवित्त का अधिकार मिला। बौद्धों के इस साहसभरे, सराहनीय कृत्य का अनुसरण उनके परवर्ती सिद्ध–नाथ एवं संतों ने किया।

4.7.1 सिद्ध-नाथ : धर्म-साधना और नारी – सिद्ध–नाथों ने बौद्धों द्वारा प्रारम्भ किये गये नारी–मुक्ति आन्दोलन की गति को धीमा नहीं होने दिया। इनके साहित्य के अवलोकन द्वारा उसमें निहित नारी–विषयक उदात्त विचारों को सहज ही जाना जा सकता है। धर्म–साधना में नारी को उचित अधिकार दिलाने हेतु इन्होंने निम्नांकित सराहनीय कदम उठाये। यथा –

7.1.1 भक्ति में स्थान – युगों से अवहेलनीय नारी को सिद्ध–साधकों ने अपनी साधना का परमावश्यक अंग घोषित करके उसे भक्ति–साधना में प्रमुखता प्रदान की। सिद्धों ने नारी को अपनी साधना के अन्तर्गत महामुद्रा बनाया। उन्होंने भगवती नैरात्मा को महामुद्रा में परिकल्पित करके नारी को डोम्बी, चाण्डाली, कपाली, योगिनी, शबरी इत्यादि नाम दिये।[167]

165. संस्कृति के चार अध्याय – पृ. 55
166. प्राचीन भारत का इतिहास और संस्कृति – पृ. 852
167. सिद्ध–साहित्य – धर्मवीर भारती, पृ. 220

मण्डल–चक्र और मुद्रा–मैथुन में स्त्रियों का उपभोग सिद्धों के यहाँ आवश्यक अनुष्ठान माना गया था; किन्तु मण्डल चक्र एवं मुद्रा–मैथुन साधनाओं को केवल भौतिक अर्थ में ग्रहण नहीं करते थे, वे प्रज्ञाको परमार्थ रूप में नैरात्मा ज्ञान मानते थे और सम्वृत्ति रूप में देहधारी नारी रूप। अतः प्रज्ञा का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए पहले नारी रूपिणी सम्वृत्त प्रज्ञा, देह धारिणी प्रज्ञा का उपभोग करना आवश्यक माना।[168] नारी को साधना का अंग बना सिद्धों ने उसे भक्ति में स्थान प्रदान किया।

नाथपंथ में वैराग्य पर विशेष बल दिया गया। नाथों ने भी नारी को भक्ति की अधिकारिणी माना है।

नाथ–सम्प्रदाय की एक शाखा आई पंथ है जिसकी प्रवर्तिका भगवती विमला देवी को माना जाता है।[169] श्री करणी कथामृत में उल्लेखित है कि आदि शक्ति हिंगुलाज माई अवतार लेकर आवड़ा महमाई के नाम से विख्यात हुई और उन्होंने नाथ–पंथ में दीक्षा ग्रहण कर, कानों में मुद्रा धारण की, इससे वे मुद्राली कहलायी। आईनाथ के नाम से उनका मन्दिर जैसलमेर में आज भी प्रसिद्ध है।[170]

उपर्युक्त उदाहरणों द्वारा नाथों पर लगाये जाने वाले नारी तिरस्कार के आरोप स्वतः खारिज होते हैं। तथा साथ ही स्पष्ट होता है कि नाथ–पंथ में नारी ने न केवल दीक्षा पाई, वरन नाथ पंथ (आई पंथ) की शाखा की प्रवृर्तिका भी बनी।

7.1.2 नारी के श्रेष्ठ रूप की प्रतिष्ठा – सिद्ध–नाथों ने नारी के श्रेष्ठ रूपों से समाज को अवगत कराके नारी को गौरव एवं गरिमा प्रदान की।

सिद्धों ने नारी को शक्ति स्वरूप घोषित किया। वज्र तन्त्र के दोहे में पाँच तत्त्वों की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए (नारी) डाइणि देवी को सम्बोधित किया।[171] सिद्ध कण्हपा कहते हैं – 'नारी शक्ति दिढ धरिआ खाटे। अनहा डमरू बाजइ विरनाटे। उनकी नारी–शक्ति केवल शरीर और व्यापक रूप से विश्व व्याप्त केवल भावनात्मक नारी शक्ति थी, जिसे वे नैरात्म करते थे और जिसको उदबुद्ध कर सहस्रार में या शून्य में पहुँचा देने को ही वे सिद्धि की सफलता मानते थे। इस प्रकार सिद्धों ने नारी भावना का उदात्तीकरण किया। उन्होंने नारी को शक्ति रूपा आदरणीय स्वरूप प्रदान किया।[172]

सिद्धों ने नारी के स्वकीया स्वरूप के प्रति विशेष अनुग्रह प्रकट किया है। तभी तो सिद्ध चित्त को स्वकीया (गृहिणी) के साथ रहकर निश्चित बनाते हुए, समरस एवं

---

168. उपरिवत् – पृ. 220–21
169. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य – पृ. 28
170. श्री करणी कथामृत – पृ. 133
171. खितिजल पवन हुतासन सुण डाइण देवि।
 सुणहु पचमु तत्तु कहु जो णा जाणइ केवि– सिद्ध साहित्य – पृ. 424
172. निर्गुण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि – पृ. 49

सहज बना मुक्ति की कामना करते हैं। यथा –

समता कामिणी अणुहणिवास

समरस भोअण अश्वर वास। [173]

नाथ नारी के कल्याणकारी एवं मंगलमयी स्वरूप के उपासक हैं। नाथ नारी को शक्ति रूपा भगवती (पार्वती) का स्वरूप मानते हैं। नाथ–साहित्य में नारी के मातृ–स्वरूप के प्रति अगाध श्रद्धा एवं अपार आदर की भावना के दर्शन सहज ही किये जा सकते हैं। यथा – नाथ गोपीचन्द स्त्री के लिए माता का सम्बोधन कर भिक्षा–याचना करते हैं।[174]

4.7.2 हिन्दी-संतः धर्म-साधना और नारी – हिन्दी–संतों ने सिद्ध–नाथों की परिपाटी का अनुसरण करते हुए, तद्युगीन समाज में नारी के गौरवपूर्ण पद एवं नैसर्गिक धार्मिक अधिकारों की वकालत की। नारी विषयक प्रचलित असंगत, अविवेकपूर्ण विचारों के कुहरे को संतों ने अपनी उदात्त एवं गरिमामयी वाणी द्वारा दूर करके नारी के लिए नवीन सम्भावनाओं के बुलन्द दरवाजा रूपी पटों को खोला। धर्म–साधना में नारी को उचित स्थान दिलाने हेतु संतों ने निम्न सराहनीय कदम उठाये।

4.7.2.1 भक्ति में स्थान – संतकालीन समाज में नारी को भक्ति का अधिकार नहीं था, उस पर कई तरह के प्रतिबंध लगाये गये थे। संतों ने इन संकीर्ण, थोथे धार्मिक प्रतिबंधों को दरकिनार करते हुए नारी को भक्ति का अधिकार प्रदान किया। संतों द्वारा कई स्थानों पर स्वयं नारी बन ब्रह्म में लीन होने की अभिलाषा उनकी उपर्युक्त मनोवृत्ति को प्रकाशित करती है। संत– प्रवर दादू दयाल आत्मा रूप में नारी के ह्रदय में परमात्मा के मिलन की उत्कण्ठा एवं उसके दर्शन की अभिलाषा, लालसा का सजीव चित्रण प्रस्तुत करके उसकी (नारी) अनन्य भक्ति भावना का खुलासा करते हैं –

दादू पिव जी देखे मुझकों, हूँ भी देखूँ पीव।

हूँ देखू देखतमिले, तो सुख पावे जीव। [175]

इस प्रकार संत स्वयं (आत्मा) को नारी व परमात्मा को पुरूष (पीव) रूप में निरूपित करके जहाँ एक ओर नारी बनने की अभिलाषा रखते हैं, वहीं दूसरी ओर वे नारी के प्रति ह्रदय में उदार–उदात्त भावनाओं को भी मुखरित करते हैं।इससे एक बात यह भी स्पष्ट होती है कि संत नारी की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हैं। तभी तो कबीर राम की बहुरिया[176] बनके मधुरा भक्ति में तल्लीन हो गये हैं।

---

173. दोहाकोश – राहुल जी पृ. 30 / 137
174. हम जोगी परदेशी माई, भिन्छया होई त दीज – नाथ सिद्धोंकी बानिया – पृ. 18
175. श्री दादू वाणी – पृ. 64 / 38
176. हरि मेरा पीव मै राम की बहुरिया– क. ग्र. – पृ. 5

संत रैदास ने बहुरिया रूप को भक्ति का आदर्श मानते हुए, नारी को भक्त का दर्जा प्रदान किया है।

इस प्रकार संतों ने आत्मा रूप में स्वयं नारी बन कर तद्युगीन नारी को भक्ति–मार्ग में साधिका बना, श्रेष्ठ भक्त का दर्जा प्रदान किया है।

4.7.2.2 **नारी के श्रेष्ठ रूप की प्रतिष्ठा** – संतों ने नारी के श्रेष्ठ स्वरूप को अपनी वाणी द्वारा अभिव्यक्त करके दिशाभ्रांत समाज की नारी विषयक संकीर्ण सोच को बदलने का हरसंभव प्रयास किया है। उन्होंने नारी के पतिव्रता, सती–साध्वी, मातृ–स्वरूप के प्रति अगाध श्रद्धा व्यक्त करके लोगो को उसके उदात्त एवं गरिमामयी स्वरूप से साक्षात्कार कराया है।

2.2.1 **मातृ-रूप की वन्दना** – नाथों के समान हिन्दी–संत भी नारी के जननी स्वरूप की स्तुति करते हैं। संतों ने मातृत्व को नारी के लिए वरदान माना है। संतों ने उसके वात्सल्य के प्रति असीम कृतज्ञता का भाव अभिव्यक्त किया है। सहजो बाई ने ब्रह्म को माता रूप में चित्रित करके स्वयं की देखभाल करने की प्रार्थना की है।[177] उन्होंने माता (नारी) को ब्रह्म की उपमा प्रदान कर सम्पूर्ण नारीजाति को गौरवान्वित किया है।

हरि जननी मै बालक तोरा, काहे न अवगुण बकसहु मोरा[178] द्वारा संत कबीर ने नारी को हरि (ब्रह्म) की उपमा प्रदान करके वात्सल्यमयी माँ की क्षमाशील प्रवृत्ति को चित्रित किया है।

2.2.2 **पतिव्रता स्वरूप** – 'पतिवरता के रूप पर वारौ कोटि सरूप[179] की घोषणा द्वारा संतों ने नारी के पतिव्रता स्वरूप की प्रशंसा करके उसे समाज का आदर्श स्वरूप सिद्ध किया है। संत कबीर तन, मन से अपने पति को समर्पित नारी को पतिव्रता मानते हुए।[180] उसके समर्पण भाव की भूरी–भूरी प्रशंसा कर नारी महिमा का गुणगान करते हुए युग की आँखों के सामने छाये नारी तिरस्कार के तिमिर को हटाते हैं।

संत चरणदास ने पतिव्रता नारी के गुणों को उजागर करते हुए कहा है –

रंग होय तो पीव को, आन पुरूष विषरूप।

छाँह बुरी पर धरन की, अपनी भली जु धूप। (स.बा.स (प्रथम) – पृ. 138)

---

177. हम बालक तुम माय हमारी, पल पल माहि करो रखवारी – संत साहित्य और साधना डॉ. भुवनेश्वर मिश्र पृ 145

178 कबीर – सरनाम सिंह – पृ. 793 से लिया गया

179 स. वा. स प्रथम – पृ. 37

180. जो पै पतिव्रता ह्वै नारी कैसे ही रहै सो पियहि पियारी
तन मन जोवन सौंपि सरीरा, ताहि सुहागिनि कहै कबीरा – कबीर वाङ्मय खण्ड 2 पृ. 162

2.2.3 सती-साध्वी स्वरूप – संतों ने पतिव्रता का चरम विकास उसके सती रूप में देखा है। सती की महिमा निरूपित करते हुए कबीर उसे दो कुलों की तारणहार की उपमा देते है –

कहे कबीर सुनो रे भाई साधो बेउ कुल तारि चली। [181]

नारी को दो कुलों का केवट बता करके कबीर समाज को उसकी (नारी) अद्वितीय शक्ति से परिचित करवाते हैं।

निष्कर्षतः हमारे आलोच्य संतों ने तद्युगीन नैसर्गिक अधिकारों से वंचित नारी को श्रेष्ठ भक्त की पदवी प्रदान की तथा उसके मातृत्व, सतीत्व, पातिव्रत्य स्वरूपों को समाज के सम्मुख आलोकित करके उसके गरिमामयी व गौरवयुक्त व्यक्तित्व की सौम्य झाँकी प्रस्तुत की।

4.8 सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी-संत : धार्मिक व्यावसायिकता

4.8.0 धर्म–मानव का आत्म–परिष्कार करके स्वस्थ समाज की अधिरचना में सहायक रहा है। इस प्रकार धर्म सर्व–कल्याणकारी एवं पथ–प्रदर्शक है; किन्तु जब धर्म स्वार्थ–पूर्ति का साधक बन जाये तो वह अपना पावन स्वरूप खो बैठता है। प्राचीन समय में धर्म–नियंताओं ने धर्म के क्षेत्र में वणिक–वृत्ति को अपनाते हुए अपने हित संवर्धन हेतु धर्म को संकीर्णता के दायरे में कसते हुए उसे व्यावसायिक स्वरूप प्रदान किया। धार्मिक आडम्बरों, बाह्याचारों, कर्मकाण्डों के जरिये उन्होंने अपने आर्थिक हितों की पूर्ति के साथ लोगों को गुमराह किया।

धर्म के व्यावसायिक स्वरूप को देखकर हमारे आलोच्य संतों–साधकों ने निरन्तर फैलती धार्मिक व्यावसायिकता का कड़ा विरोध किया।

4.8.1 सिद्ध-नाथः धार्मिक व्यावसायिकता – सिद्ध–नाथों के समय धार्मिक व्यावसायिकता प्रवृत्ति बनी हुई थी। मठों के वैभव के समक्ष राजसी ठाठ–बाट फीका था। धर्म–नियंताओं की वणिक–वृत्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होते देख कर सिद्ध–नाथों ने खण्डनात्मक शैली में धार्मिक व्यावसायिकता पर प्रहार किया। उन्होंने सामान्य जन को धर्म के ठेकेदारों की बढ़ती धन–लोलुपता से परिचित करवाया। धर्म–नियंताओं में बढती व्यावसायिक वृत्ति का विरोध करने के लिए सिद्ध–नाथों ने निम्नांकित सराहनीय कदम उठाये–

4.8.1.1 बढ़ते धार्मिक कर्मकाण्डों का विरोध – धर्म–नियंताओं ने अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने के लिए धर्म में कर्म–काण्ड, यज्ञ–हवन, तीर्थ–व्रत आदि कृत्रिम साधनों को महिमा–मण्डित करके उन्हें धर्म का पर्याय बना दिया। सामान्य जनता आडम्बरों की भूल–भुलैया में फँसती चली गई।

---

181. कबीर वाणी – द्विवेदी जी पृ. 188

ऐसी विषम स्थिति में सिद्ध–नाथों ने वास्तविक सत्य का उद्‌घाटन करते हुए कर्म काण्डों की आलोचना की।

8.1.1.1 **तीर्थ-यात्रा का विरोध** – धर्म–नियंताओं के भ्रामक विचारों के कारण तीर्थ–स्थल मुक्ति–केन्द्र बन गये थे। धर्म के ठेकेदारों ने उन्हें धन वसूलने का अड्डा बना लिया था, जहाँ लोगों को मुक्ति का लालच देकर मन चाहा धन वसूला जाता था। तब सिद्धों ने देह में ही तीर्थ की अवधारणा को प्रचारित करके तीर्थ–यात्रा को अनुपयोगी बताया। यथा–

एथु से सरसइ सोवणाह, एथु से गड़गासाअरु।

वाराणसि पआग एथु, से चान्द दिवाअरु। (दोहाकोश – पृ. 22)

नाथ–साधकों ने मुक्ति की लालसा में बाहर भटकते लोगों को समझाया कि सारे तीर्थ घट के भीतर ही है

घट ही भीतरि अठसठि तीरथ

कहां भ्रमै रे भाई। [182]

सिद्ध–नाथों ने देह में तीर्थ की धारणा को प्रचारित करके धर्म के ठेकेदारों के लाभ एवं लोभ प्रवृत्ति पर विराम लगाया।

8.1.1.2 **प्रतिमा-पूजन का विरोध** – सिद्ध–नाथों ने प्रतिमा–पूजन की प्रवृत्ति का कड़ा विरोध किया। उन्होंने 'देव पूजाहि ण मोक्ख पावा'[183] की घोषणा करके लोगों को बताया कि देव पूजन मुक्तिदायी नहीं है।

8.1.1.3 **हिंसा-वृत्ति का विरोध**– धर्म के नाम पर चढ़ाई जाने वाली बलि भी धर्म–नियंताओं के लिए लाभदायक थी। नाथों ने समाज को सब घटव्यापक एक ब्रह्म' की शिक्षा प्रदान करके युगीन हिंसा वृत्ति को अनैतिक ठहराया।

मुस्लिम धर्म में बढ़ती हिंसा–वृत्ति पर विराम लगाने के लिए नाथों ने तार्किक शैली द्वारा लोगों को बताया कि मुहम्मद साहब के हाथ में जो छुरी है, वह सर्व कल्याणकारी है। वह प्रेम–कटार है, जो परमात्मा व जीव के मध्य आये अवरोध को काटती है न कि किसी निरीह पशु को।[184]

4.8.1.2 **धर्म के ठेकेदारों का चरित्र-उद्‌घाटन** – धर्म–नियंताओं के परजीवी स्वभाव से सिद्ध–नाथ अवगत थे। जो उत्पादन में सहयोग के बिना ही, बिना परिश्रम किये राजसी वैभव का सुख भोगा करते थे। अतः जागरूक सिद्ध–नाथों ने धर्म

182. सबदी – शार्दूल सिंह जी पृ. 43 / 163

183. संत सुधा सार – पृ. 10 / 6

184. महंमद महंमद न करि काजी महंमद का विषअ विचारं।
महंमद हाथि करद जे होती लोहै घडी न सारं। – सबदी पृ. 4 / 9

नियंताओं की चारित्रिक दुर्बलताओं को जनता के समक्ष उजागर कर सामान्य जन को उनके करिश्माई व्यक्तित्व से बाहर निकालने का प्रयास किया।

सिद्धों ने पुरजोर स्वर में कहा कि ये ब्राह्मण वर्ग शरीर में स्थित ब्रह्म से अनजान है, व्यर्थ ही शास्त्र पढ़ता है –

पंडिअ सअल सत्य वक्खाणअ

देहहि बुद्ध वसन्त ण जाणअ। [185]

खाई हींग कपूर बषाणै[186] द्वारा नाथों ने धर्म–नियंता को मिथ्याचारी घोषित किया। पंडित ज्ञान मरौ क्या झूझि[187] का शंखनाद करके धर्म–नियंता के ज्ञान एवं साधना को व्यर्थ सिद्ध किया।

4.8.2 हिन्दी-संत : धार्मिक व्यावसायिकता – संतों के समय में धर्म व्यवसाय का रूप धारण कर चुका था। जिसे ब्राह्मण, महंत, पुरोहित, मुल्लाह, काजी आदि संचालित करते थे। धर्म के नाम पर कर्म–काण्ड तीर्थ, हवन, पूजा, जप–तप आदि धन वसूलने का एक माध्यम थे। जिन्हें निजी स्वार्थों की लालसा में धर्म–नियंताओं ने समाज के कण–कण में रचा–बसा दिया था।

मानवतावादी संतों के तेज दिमाग ने धर्म–नियंताओं के इस षड्यंत्र को भाँप लिया। उन्होंने सिद्धों–नाथों की परिपाटी का अनुसरण करके धार्मिक व्यावसायिकता का कड़ा विरोध किया।

4.8.2.1 बढ़ते धार्मिक कर्म-काण्डों का विरोध – संत धार्मिक कर्म–काण्डों को धर्म के ठेकेदारों की रची साजिश मानते थे। जो उन्हें अर्थ लाभ के साथ सम्मान भी दिलाती थी। अतः संतों ने इस साजिश का पर्दाफाश करते हुए लोगों के समक्ष कर्म–काण्डों की कटु आलोचना करके उनके परित्याग का संदेश तद्युगीन समाज को दिया।

8.2.1.1 तीर्थ-यात्रा का विरोध – संतों ने 'तीरथ व्रत विष बेलड़ी'[188] कह करके तीर्थ–व्रत को विष की बेल बता अमंगलकारी सिद्ध किया। संतो ने सिद्ध–नाथों के मत में सहमति व्यक्त करते हुए कहा कि ब्रह्म तो घट में ही बसते हैं, अतः उसे बाहर खोजना व्यर्थ है। यथा –

राम राम घट में बसै, ढूँढत फिरैं उजाड़।

कोई कासी कोई प्राग में बहुत फिरै झरव मार। [189]

---

185. दोहा कोश – राहुल जी पृ. 18
186. सबदी – पृ. 32 / 120
187. उपरिवत् – पृ. 35 / 134
188. क. ग्र. – पृ. 44 / 9
189. स.बा. स. प्रथम भाग – पृ. 99

8.2.1.2 प्रतिमा-पूजन का विरोध – प्रतिमा–पूजन का विरोध करते हुए संतों ने स्पष्ट किया कि ब्रह्म भौतिक बन्धनों से परे है, फिर उसे मूर्ति में कैसे बाँधा जा सकता है। उन्होंने लोगों को बताया कि मूर्तिपूजा तो धर्म नियंताओं द्वारा अर्थ–लाभ प्राप्ति हेतु चलाया गया एक कृत्रिम कृत्य है। 'किरतिम देव न पूजिये ठेस लगे फटि जाय'[190] द्वारा संतों ने मूर्ति–पूजा का विरोध किया। संतों ने 'अलख देव अन्तर बसे'[191] की घोषणा करके हृदय निवासी ब्रह्म की उपासना की शिक्षा समाज को दी।

8.2.1.3 रोजा-हज का विरोध – संतो ने मन को मक्का, देह को काबा[192] मानने का संदेश लोगों को देकर हज यात्रा को अनुपयोगी बताया है।

'दिन में रोजा धरत हो रात हनत हो गाय' द्वारा संत कबीर ने रोजा का मखौल उड़ाया है।

8.2.1.4 हिंसा-विरोध – संतों ने जीव की आत्मा पर घाव करने वाले को नरक गामी बताते हुए तद्युगीन समाज को अहिंसा की शिक्षा दी है। यथा –

दादू कोइ काहू जीव की करे आत्मा घाव।

साँच कहूँ संशय नहीं, सो प्राणी दोजख जात। (श्री दादू वाणी – पृ. 261)

4.8.2.2 धर्म के ठेकेदारों का चरित्र उद्घाटन – 'नीर क्षीर न्याय' करते हुए संतो ने धर्म नियंताओं की चारित्रिक दुर्बलताओं को प्रकाशित किया। ऐसा करने के पीछे उनका लक्ष्य सामान्य जन को धर्म–नियंताओं द्वारा किये जाने वाले प्रत्यक्ष–परोक्ष आर्थिक शोषण से मुक्त कराना भी था। संतो ने स्पष्ट किया कि ये धर्म के ठेकेदार भाव–भक्ति से शून्य हैं तथा इनमें अहंकार भरा पड़ा है, ये तो बगुले भगत हैं, जो संसार में हर कही आसानी से देखे जा सकते हैं, अतः सभी को ऐसे मिथ्याचारी भक्तों से सचेत रहना चाहिए। यथा–

थोरी भगति बहुत अहंकारा।

ऐसे भगता मिलै अपारा। (क. ग्र.पृ. 132)

इतना ही नहीं ये पापी हैं, जो अमृतरूपी भक्ति को छोड़ आडम्बर रूपी विष का सेवन करते हुए लोगों को भरमाते हैं –

पापी परलै जांहि अभागे।

अमृत छाड़ि विषै रसि लागे। (क. ग्र. पृ. 132)

संत धर्म–नियंताओं की चारित्रिक दुर्बलता की परत दर परत खोलते हुए कहते हैं कि इन्हें राम–भक्ति में रूचि नहीं; वरन् स्वयं की भक्ति में मन लीन रहता है तभी

---

190. उपरिवत् – पृ.99

191. श्री दादू वाणी – पृ. 281/122

192. मन करि मका कबिला करि देही – क. ग्र. – पृ. 107

तो मुँह से राम नाम कहके अपने हितों की पूर्ति हेतु ये अपनी बाजी खेलते हैं –

राम भक्ति भावै नहीं, अपनी भक्ति का भाव।

राम भक्ति मुखसौ कहै, खेले अपना दाव। (श्री दादू वाणी–पृ. 273)

'कथनी मीठी खाँड सी, करनी विष की लोय'[193] द्वारा संत धर्म –नियंताओं के चरित्र में कथनी–करनी में भेद की प्रवृत्ति को उजागर करके लोगों को उनसे सचेत करते हैं।

साराशंतः हमारे आलोच्य साधकों–संतों ने धर्म–नियंताओं को उनकी धार्मिक व्यावसायिकता की वृत्ति के कारण खरी खोटी सुनाई। धर्म के नाम पर फैलते आडम्बरों का विरोध करने के साथ–साथ धर्म के ठेकेदारों की चारित्रिक दुर्बलताओं को अपनी वाणी द्वारा आलोकित कर समाज को सचेत किया।

4.9 सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी संत : धर्म का निर्मल स्वरूप

4.9.0 धर्म की पावन ज्योति सदैव मानवता के कल्याणकारी सौम्य मार्ग को आलोकित करती रही है। धर्म समाज को जोड़ने का कार्य करता है। वह उसे मर्यादित बनाये रखने में सहयोग देता है,किन्तु जब धर्म ही अमर्यादित हो, तो भला समाज का दिशा निर्देशन कैसे सम्भव होगा? समाज में बढ़ती धार्मिक रूढ़िवादिता ने विभिन्न मत–मतान्तरों, शाखाओं–प्रशाखाओं को पनपने का अवसर दिया। जिससे धर्म के ठेकेदारों ने अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु बड़ी कुशलता के साथ धर्म के पावन स्वरूप से लोगों को अनभिज्ञ बनाकर, धर्म की मनचाही व्याख्या करके जनता को दिग्भ्रमित बनाये रखा। अब धर्म शोषण का हथियार बन गया।

धर्म का यह दूषित स्वरूप समाज के लिए भी अहितकारी साबित हुआ। समाज में विद्वेष, कट्टरता की भावना बलवती होती गई। ऐसे विषम समय में हमारे आलोच्य संतो ने धर्म के इस कृत्रिम जंजाल को हटाने का बीड़ा उठाया। उन्होंने धर्म के निर्मल स्वरूप पर पड़े मिथ्या आवरण को हटा करके धर्म की कल्याणकारी आभा को समाज में फैलाया, जिससे धर्म पर छाया मिथ्या धारणाओं का कालुष्य दूर हुआ।

4.9.1 सिद्ध-नाथ : धर्म का निर्मल स्वरूप – सिद्ध–नाथों ने अपने साहित्य में मानवीय जीवन–मूल्यों की कल्याणकारी झाँकी प्रस्तुत करके धर्म के निर्मल स्वरूप की प्रतिष्ठा में अविस्मरणीय योगदान दिया।

9.1.1 प्रेम – सिद्धों ने स्नेह–शून्य समाज को प्रेम का पाठ पढ़ा करके समाज में फैलते विद्वेष, घृणा पर विराम लगाया। नाथों ने भक्ति को प्रेम से सम्बद्ध करके प्रेमयुक्त वन्दन में अनन्त ज्योति के दर्शन समाज को करवाये। यथा –

193. स.बा. स. प्रथम भाग – पृ. 44

सिध साधने वन्दना, निति प्रति करे जो संत,

प्रेम कहे सहजरी, दरसे जोति अनन्त। (ना. सि. बा.पृ. 5)

9.1.2 सत्य – सुमरिणं सत सुमरण'[194] द्वारा नाथों ने सत्य सुमिरण का उपदेश समाज को दिया। सत बोले सोई सतवादी झूँठ बोले ते महापापी[195] की घोषणा करके उन्होंने सत्य के पक्ष को मजबूत किया।

सिद्ध–नाथों ने असत्य भाषी धर्मनियंताओं को सत्य–मार्ग की ओर प्रेरित किया।

9.1.3 **अहिंसा** – अवधू मांस मर्षत दया धर्म का नास[196] का आह्वान करके नैतिकता के उपासक नाथों ने हिंसा–वृत्ति का विरोध किया।

9.1.4 **शील-संतोष** – आर्थिक दृष्टि से पिछड़े जनों को सिद्ध–नाथों ने शील, संतोष का पाठ पढ़ाया। नाथों ने सत शील सन्तोष धारण की शिक्षा लोगों को दी।[197]

9.1.5 **दया-दान** – सिद्ध–नाथों ने परोपकार की भावना को समाज में फैलाने हेतु परोकार–दान की शिक्षा दी। यथा –

पर ऊआर ण की अऊ आत्थिणा दी अउ दाण

एहु संसारे कवण फलु वरूच्छडुहु अप्पाण। [198]

'जोग का मूल दया–दान'[199] का शंखनाद करके नाथ साधकों ने दया–दान से शून्य लोगों के सामने दयादान को योग का मूल सिद्ध करके उसके महत्त्व से अवगत कराया।

9.1.6 **अन्तःकरण की शुद्धि** – तीर्थ, व्रत, उपवास इत्यादि को धर्म मान करके इन्हीं में जीवन बर्बाद करती जनता को सिद्ध–नाथों ने अन्तःकरण की शुद्धि का मार्ग दिखाया। देह में ही तीर्थ की विचारधारा को प्रचारित करते हुए सिद्धों ने कहा –

एथु से सरसइ सोवणाह, एथु से गड़.गासउनरू।

वाराणसि पआग एथु, ये चान्द दिवाअरू। [200]

नाथों ने बाह्याडम्बरों का विरोध कर अन्तःकरण की शुद्धि पर बल दिया–

---

194. नाथ सिद्धों की बानिया – पृ. 6
195. गोरखबानी पृ. 178
196. उपरिवत् – पृ. 56
197. नाथ–सिद्धों की बानिया पृ. 6
198. संत सुधा सार – पृ. 6/12
199. गोरख बानी – पृ. 126
200. दोहाकोश – पृ. 22/96

उत्तर खण्ड जाइबा सुबिफल खाइबा, ब्रह्म अगनि पहरिबा चीर।

नीझर झरणै अमृत पीया, यू मन हूवा थीर।[201]

9.1.7 विश्व-बंधुत्व – समाज में असमानता की बढ़ती खाई को पाटने के लिए नाथों ने वसुधैव कुटुम्बकम् का नारा लगाया। उन्होंने लोगों को समझाया कि सभी प्राणियों में एकब्रह्म का निवास है। अतः सभी समान हैं। ये विद्वेष, छुआछूत, ऊँच–नीच सभी कृत्रिम हथकंड़े हैं जो कि धर्म–नियंताओं ने अपने हित संवर्धन हेतु रचे हैं। अतः नाथों ने लोगों को समानता–बंधुत्व–भाव अपनाने की सीख दी।[202]

4.9.2 हिन्दी-संतः धर्म का निर्मल स्वरूप – समाज में बढ़ते आडम्बरों, कुरीतियों एवं बाह्याचारों ने भोली–भाली जनता को आहत किया, जिसे देख हिन्दी–संतों का हृदय कराह उठा। युग–प्रवर्तक संतों ने कृत्रिम धार्मिक व्यवस्था के प्रतिकार हेतु युगीन जनता को धर्म के निर्मल स्वरूप के दर्शन करायें।

4.9.2.1 प्रेम – तद्युगीन समाज दो खेमों में विभक्त था। आपसी विद्वेष सर्वत्र व्याप्त था। लोग प्रेम शब्द को तो जानते थे; किन्तु उसके मर्म से बेखबर थे। ऐसे में हिन्दी–संतों ने 'जा मारग साहबमिलै, प्रेम कहावै सोय'[203] की उद्घोषणा करके प्रेम मार्ग को ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग बता, प्रेम को महिमा–मण्डित किया।

संत–प्रवर दादू दयाल ने प्रेम को ईश्वर की जाति, अंग, वजूद, रंग सिद्ध करके ईश्वर एवं प्रेम के घनिष्ट सम्बन्ध को उजागर किया।[204]

'प्रेम बराबर जोग ना, प्रेम बराबर ज्ञान'[205] द्वारा संतों ने प्रेम को जोग एवं ज्ञान से श्रेष्ठ सिद्ध किया। संतों ने प्रेम को व्यापक अर्थ प्रदान करके उसे दूसरों से जुड़ने का माध्यम घोषित किया। इस औजार से धर्म–नियंताओं द्वारा बनायी गयी स्वार्थो–घृणा की प्राचीर को ढहा कर संतों ने मनुष्य को कल्याणकारी मार्ग दिखाया।

4.9.2.2 सत्य – 'साई से साचा राहो, साई साच सुहाय'[206] की अपील संतों ने समाज से की। ऐसा करके उन्होंने सत्य को ईश्वर का प्रिय सिद्ध किया। संतों ने सत्य को तपस्या से भी श्रेष्ठ एवं असत्य को पाप तुल्य[207] मानते हुए तद्युगीन जनता को सत्य का महत्त्व बताया हैं। संतों ने लोगों से सत्य के मार्ग पर चलने की अपील की और उन्हें बताया कि सत्य मार्ग के पथिक के लिए जन्नत के द्वार खुल जाते हैं।[208]

201. सबदी – पृ. 19
202. एही राजा राम आछै सर्वेअगबासा – गोरखबानी – पृ. 100
203. कबीर बाणी ज्ञानामृत, स. प्रियदर्शी, राजीव मधुसूदन पृ. 118/15
204. सतवाणी संग्रह – प्रथम भाग – पृ. 79
205. संतवाणी संग्रह – प्रथम भाग– पृ. 136
206. उपरिवत् – पृ. 46/2
207. सॉच बराबर तप नही झूठ बराबरपाप – उपरिवत् पृ. 46
208. चाले सॉच सवारे बाट,तिनका खुले बहिश्त के बाट – श्री दादू वाणी– पृ. 265

4.9.2.3 अहिंसा – 'पाती–पाती जीव' की उदार विचारधारा के पोषक संतों ने धर्म की जड़ में बढ़ती हिंसा–वृत्ति को कुकृत्य घोषित किया। संतों ने लोगों को समझाते हुए कहा है –

पीर सभन की एक सी मूरख जानत नाहिं।

काँटा चुभै पीर हैं गला काट कोउ खाय। [209]

धर्म के नाम पर बलि चढ़ाने वाले ब्राह्मण को संतों ने कसाई की संज्ञा प्रदान की है।

धरम कथै जहँ जीव बधै तहँ, अकरम करे मोरे भाई।

जो तोहरा को ब्राह्मण कहिए, तो काको कहिए कसाई। [210]

'सांच कहूँ संशय नहीं, सो प्राणी दोजख जात'[211] का शंखनाद कर संत जीव हत्या करने वाले को नरक–गामी सिद्ध करके लोगों को अहिंसा का पाठ पढ़ाते हैं। 'सबै जीव साँई के प्यारे' का नारा लगा संतों ने हिंसक समाज को जिओ और जीने दो की शिक्षा प्रदान की है।

4.9.2.4 शील-संतोष – संतों ने सत्त, संतोष अरू सदाचार, जीवन को आधार[212] की घोषणा करके,लोगों को बताया कि सत, संतोष एवं सदाचार को जीवन का आधार बनाकर ही मानव श्रेष्ठ बनता है।

संतों ने शीलवंत मनुष्य को संसार में सबसे बड़ा तथा सब रत्नों की खान घोषित किया है।[213] संतों ने लोगों के कल्याण के लिए 'साई सत सन्तोष दे, भव भगति बेसास'[214] की याचना ब्रह्म से की है जिससे लोगों का मंगल हो सके।

4.9.2.5 दान-दया – 'जहाँ दया तहाँ धर्म है'[215] की घोषणा द्वारा संतों ने दया को धर्म का मूल बता करके इसके अनुसरण का उपदेश दिया है। तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन'[216] कहते हुए संत मलूकदास ने दयावान को समाज में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है। ऐसा करके संतों ने दान–दया शून्य समाज को दान व दया की सीख दी है।

---

209. संत बाणी संग्रह – प्रथम भाग – पृ. 98
210. कबीर वाड़्मयखण्ड – 2 पृ. 206
211. श्री दादू वाणी – पृ. 261
212. रविदास दर्शन – (स. पृथ्वी सिह आजाद) पृ. 161
213. सीलवंत सब ते बड़ा, सर्व रतन की खानि।
    तीन लोक की सम्पदा, रही सील में आनि। – संत बानी संग्रह – पृ. 47
214 संत बानी संग्रह – प्रथम भाग – पृ 81
215. सत बानी सग्रह – पृ. 47
216 उपरिवत् – पृ 98

4.9.2.6 बंधुत्व – 'एक ही जननीजन्यां संसारा, कौन ज्ञान थैं[217] भये नियारा' द्वारा संत युग को बंधुत्व का पाठ पढ़ा असमानता को खुली चुनौती देते हैं। संत रैदास 'सब में हरि हरि मै सब है'[218] द्वारा युगीन समाज को समता की सीख देते नजर आते हैं।

तद्युगीन समाज में हिन्दू–मुस्लिम विद्वेष को फैलते देख इसके शमन हेतु संत दादू सब भेदों को नकारते हुए भाई–चारे की भावना का पोषण करते हैं। यथा –

सब हम देखा शोध कर दूजा नाहीं आन।

सब घट एकै आत्मा क्या हिन्दू मुसलमान।[219]

4.9.2.7 अन्तःकरण की शुद्धि – संतों ने धार्मिक कर्मकाण्डों, कुरीतियों को निन्दनीय घोषित करके अभ्यान्तर की शुद्धि पर बल दिया। संत –प्रवर दादू ने स्पष्ट किया कि परमात्मा तो हृदय में निवास करता है अतः उसे बाहर खोजना व्यर्थ है।[220]

निष्कर्षतः सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी संतों ने तद्युगीन पंकिल हो चुके धर्म में दया, प्रेम, सत्य, अहिंसा, शौच एवं बंधुत्व की प्रतिष्ठा करके धर्म को पावन स्वरूप प्रदान किया।

———

217. क. ग्र. – पृ. 185 रमैणी
218. संतरविदास – इन्द्रराज पृ. 151
219. श्री दादू वाणी – प्राक्कथन से
220. दादू जिन कंकर पत्थर सेविया सो अपना मूल गँवाई।
अलख देव अन्तर बसे, क्या दूजी जगह जाई। – उपरिवत् – पृ. 281/122

पंचम–अध्याय

सिद्ध-नाथ और हिन्दी सन्तों का सामाजिक चिन्तन

5.1 सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी-संत कालीन सामाजिक परिवेश

5.1.0 साहित्य मानव–हृदय का आकर्षक चित्र फलक है, जिस पर मानवीय हृदय की विभिन्न भावनाओं के मनोरम चित्र अंकित होते हैं। मानवीय भावनाएँ परिवेशगत परिस्थितियों द्वारा निर्मित होती है। इन प्रेरक परिस्थितियों का अवलोकन करने के उपरांत ही युग विशेष का सही स्वरूप ज्ञात किया जा सकता है। अतः सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी–संतों के सामाजिक चिन्तन की पृष्ठभूमि के रूप में तद्‌युगीन समाज–व्यवस्था, सामाजिक–परिस्थितियों, परम्पराओं, मान्यताओं आदि को उजागर करना आवश्यक है, जो कि इन युग–प्रवर्तकों के समग्र चिन्तन का ठोस आधार है।

5.1.1 सिद्ध-नाथ कालीन सामाजिक-परिवेश

सिद्धों का समय आठवीं शताब्दी के लगभग माना जाता है। इस समय सामन्तवाद का बोलबाला था। इसकी पुष्टि राहुल जी द्वारा इस युग को सिद्ध–सामन्त–युग नाम दिये जाने से भी होती है। तद्‌युगीन भारतीय समृद्धि स्वर्ग तुल्य थी। समाज दो वर्गो के अन्तर्गत विभक्त था। प्रथमवर्ग में राजा, महन्त, सेठ आते थे, जो राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से श्रेष्ठ थे। दूसरे वर्ग में श्रमजीवी वर्ग था, जो उच्च–वर्ग के शोषण से आक्रांत था। मोटे तौर पर समाज शोषक एवं शोषित दो वर्गो में विभक्त था।

1.1.1 **शोषक-वर्ग** – इसमें राजा, सामंत, महन्त–पुरोहित एवं सेठ साहूकार आते थे। शोषक वर्ग का जीवन वैभव–विलास से लबरेज था। राजा–सामन्तों का सारे राज कोष पर ही अधिकार नहीं था; वरन् सेठ–साहूकारों के खजानों में भी जो कुछ था, उसे खर्च कर डालने में उनका हाथ पकडने वाला कोई नहीं था।[1]

धर्म के ठेकेदार बन चुके महंत हाथ में धर्म का अंकुश लिए सामान्य जनता को आतंकित किए हुए थे। देश की सम्पत्ति का एक बड़ा भाग ब्राह्मण, जैन–बौद्ध मठों एवं मन्दिरों में संग्रहित था। महंत–पुरोहितों ने अपनी सुविधा की खेती के लिए धर्म को अफीम बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

---

1. हिन्दी काव्यधारा : राहुल जी पृ. 14 अवतरणिका

शोषक–वर्ग के प्रतिनिधियों में तद्युगीन सेठ–साहूकारों को कदापि विस्मृत नहीं किया जा सकता।

1.1.2 **शोषित-वर्ग** – शोषित–वर्ग के अन्तर्गत दास–दासी, किसान–कम्मी कारीगर थे। दासों की संख्या बीस प्रतिशत एवं श्रमजीवी वर्ग का प्रतिशत सत्तर था।[2] संख्या में ज्यादा होने पर भी यह वर्ग शोषित–पीड़ित रहा। दासों का जीवन पशुओं से भी गया गुजरा था। वही दूसरी ओर श्रमजीवी वर्ग के खून–पसीने से अर्जित सम्पत्ति का उपभोग शासक–सामन्तों द्वारा किया जाता था। यह इस युग की बड़ी विडम्बना थी। शोषित–वर्ग निम्न माना जाता था। निम्न–वर्ग में इस शक्ति सम्पन्न उच्च–वर्ग के प्रति घृणा एवं आक्रोश के शोले दहकने लगे।

नाथकालीन नवीं शताब्दी तक आमूल चूल परिवर्तन हुए; किन्तु शोषित वर्ग (निम्न वर्ग) की स्थिति बद से बदतर होती चली गई। समाज में कर्मो की अवहेलना होने लगी। समाज अनेक वर्णों, जातियों तथा उपजातियों में निरन्तर विभाजित होता गया।

1.1.3 **सामाजिक कुरीतियाँ** – सिद्धों के समय अंधविश्वासों, जादू–टोने, भूत–प्रेत रहस्यमयी परम्पराओं, बलिप्रथा का बाहुल्य था। इनकी जड़े निम्न–वर्गीय जनता की विचारधारा में गहरी पैठ चुकी थी। नाथ–युगीन समाज में इन कुरीतियों ने विकराल रूप धारण कर लिया। जन्म से मृत्यु तक अनेक रूढ़ियों का पालन परमावश्यक हो गया।

1.1.4 **नारी-दशा** – सिद्ध–नाथों के समय में नारी की दशा किसी प्रकार उत्तम कहलाने योग्य न थी। शासक–सामन्तों के आदर्श कृष्ण एवं दशरथ एवं उनकी सोलह हजार रानियाँ थी। अतः स्त्रियों की अधिकतम संख्या भी प्रतिस्पर्धा का कारण था। समाज में गणिकाओं एवं देवदासियों का प्रचलन था। विदेशी आक्रांताओं की विलासी भावनाओं ने नारी स्वतंत्रता पर ही अंकुश नहीं लगाया; वरन् नारी की सुरक्षा हेतु सामाजिक नियमों को और भी अधिक कठोर बनाया।

1.1.5 **सामाजिक-मूल्य** – सिद्ध–नाथों के समय में चतुर्दिक अत्याचार, शोषण,मिथ्याडम्बरों से आवर्त समाज में मानव–मूल्यों की बात बेमानी सी लगती है। जीवन–मूल्यों की बेशकीमती निधि लुप्त प्रायः हो गई एवं हिंसा, घृणा, अत्याचार, लोभ–लालच आदि का शिकंजा कसता चला गया।

5.1.2 **हिन्दी संतकालीन सामाजिक-परिवेश** – सिद्ध–नाथ कवियों ने समाज–व्यवस्था की विकृतियों में सुधार हेतु अनेक प्रयास किए; किन्तु सामाजिक असंतोष का स्वर तीव्र से तीव्रतर होता गया। चिरकाल से संचित आक्रोश मध्यकाल तक आते–आते विकराल स्वरूप धारण कर चुका था तथा मुस्लिम आक्रमणों एवं उनके पाशविक अत्याचारों ने इस असंतोष की अग्नि को और अधिक प्रज्वलित किया।

2 सिद्ध–साहित्य–भारती पृ. 82

1.2.1 **वर्ण-व्यवस्था** – परम्परागत वर्ण–व्यवस्था मध्यकाल तक आते–आते रूग्ण हो गई। समाज में चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र) का आधार कर्म न होकर जन्म को माना जाने लगा। अब यह धारणा स्थिर हो चली थी कि उच्च–जाति में उत्पन्न व्यक्ति उच्च–वर्ण एवं निम्न जाति में उत्पन्न व्यक्ति निम्न वर्ण है। इस संकीर्ण विचारधारा ने समाज में विषम परिस्थितियों को पैदा कर उसके स्वरूप को विकृत बना डाला। कर्म के श्रेष्ठता जैसी उदात्त भावनाएँ हवा होने लगी। उच्च वर्ण वाले शोषण करने में प्रवीण थे। मध्यकाल तक आते–आते शोषण हेतु उन्होंने नवीन हथियारों का संधान कर लिया।

निम्न वर्ग पर अमानुषिक अत्याचारों की मात्रा बढ़ती गई, उन्हें हीन एवं पतित मानकर पद–दलित किया जाने लगा। उच्च वर्ग में अहम् भाव इतना प्रबल हुआ कि निम्न वर्ग को घृणा का पात्र घोषित करके उसे मानवीय अधिकारों तक से वंचित कर दिया गया।

सवर्णों के अत्याचारों ने सुप्त असंतोष को जाग्रत किया, वहीं मुसलमानों के जाति–व्यवहार में भाई–चारे एवं बराबरी को देख दलितों में चेतना व्याप्त होती चली गई। शासक वर्ग मुसलमान था, अतः उनका संरक्षण पाकर भारतीय निम्न जातियाँ हिन्दू उच्च वर्ण के अत्याचारों से त्राण पा सकी। धर्म परिवर्तन के बाद भी शोषण के विकराल दानव ने उनका पीछा नहीं छोड़ा।

हिन्दुओं में ब्राह्मण उच्चता के प्रतीक थे, वे समाज, धर्म के नियंता बन बैठे। ब्राह्मणों की इसी भूमिका का निर्वाह मुस्लिम धर्म में मुल्ला–मौलवियों तथा काजियों द्वारा पूरी ईमानदारी से किया गया। ब्राह्मण एवं मुल्ला में नाम का अन्तर भर था। दोनों ही अपने हित संवर्धन हेतु धर्म–दण्ड से भोली–भाली जनता को प्रताड़ित करते थे। इनकी इसी भेदपरक नीतियों, छद्म विचारों ने इनके प्रति अनादर एवं अनास्था को जन्म दिया।

1.2.2 **आश्रम-व्यवस्था** – वर्ण–व्यवस्था की भाँति आश्रम–व्यवस्था भी दूषित हो चुकी थी।

1.2.3 **सामाजिक-कुरीतियाँ एवं आडम्बर** – तद्युगीन समाज में कुरीतियों एवं आडम्बरों का बड़ा बोलबाला था। हिन्दू–मुस्लिम दोनों ही अपने धर्म की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करने में लगे हुए थे। हिन्दुओं में अवतारवाद, तीर्थ, व्रत, उपवास, छापा–तिलक, हिंसा, मूर्ति–पूजा आदि का धर्म में महत्वपूर्ण स्थान था, तो मुसलमानों में बलि–प्रथा, रोजा, नमाज, हज इत्यादि आडम्बरों का प्रचलन था।

1.2.4 **नारी-दशा** – मध्यकाल में नारी भौतिक सम्पदा मात्र रह गई थी। जिस पर पुरुष का पूर्ण अधिकार था। मुसलमानों ने समाज में घोर व्यभिचार को फैलाया। नारी–सम्मान की रक्षा हेतु समाज में बाल–विवाह, सती–प्रथा, पर्दा–प्रथा, बहु–विवाह जैसी कुरीतियों को बढ़ावा मिलने लगा। स्त्रियों को अत्याचारों से बचाने के लिए उन्हें घर की चारदीवारी में बंद कर रखा जाने लगा।[3]

शक्ति की प्रतीक नारी मध्य–युगीन समाज में स्वयं शक्तिहीन हो, याचक बन गई। वह भी निम्न वर्ग की भाँति शोषित थी, उसके लिए अपने आत्म–सम्मान की रक्षा कर पाना भी कठिन हो गया था।

1.2.5 हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष – तद्युगीन समाज हिन्दू–मुसलमान नामक दो खेमों मे विभक्त था। मुस्लिम वर्ग शासक था। अतः शक्तियों का खुलकर दुरूपयोग भी किया करते थे। हिन्दू जनता के साथ उनका व्यवहार पशुतुल्य था। हिन्दुओं के घरों में सोने–चांदी की तो क्या बात, ताँबे–पीतल के थाली–लोटों तक का रहना सुलतान को खटकता था। उनका घोड़े पर सवारी करना, अच्छे कपड़े पहनना, महान् अपराधों में गिना जाता था, नाम मात्र के अपराध के लिए किसी की भी खाल खिंचवा देना साधारण बात थी।[4]

हिन्दू वर्ग भी मुसलमानों के प्रति घृणा–भाव को संजोए हुआ था; क्योंकि उन्हें अस्पृश्य माना जाता था। दोनों के संघर्ष के कारण 'दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय' वाली कहावत निम्न–वर्गीय जनता चाहे वह मुस्लिम हो या हिन्दू, दोनों पर सटीक बैठती थी।

1.2.6 सामाजिक-मूल्य – हमारे शाश्वत जीवन–मूल्यों का विघटन तो बहुत पहले से ही प्रारम्भ हो चुका था। मध्यकालीन समाज में भी इनका लोप होता गया। समाज में झूँठ, लोभ–लालच, घृणा, अन्याय, असमानता का बोलबाला था। हिन्दू समाज का नैतिक स्तर मुस्लिम सभाज की तुलना में ऊँचा था जिसका प्रमुख कारण भारतीय संस्कृति की उदात्त विचारधारा थी; किन्तु हिन्दू समाज आडम्बरों, रूढ़ियों, पाखंडों के जाल में निरंतर फँसता जा रहा था, जिससे सामाजिक मूल्य पीछे छूटते गये।

इस घोर नैराश्य एवं तिमिराच्छन्न समाज में चिन्तनशील संतों की कोमल आत्मा उपर्युक्त सामाजिक विकारों को सहन न कर सकी। उन्होंने विकृत एवं दूषित समाज–व्यवस्था को खंडित करके नवीन समरसतावादी व्यवस्था के निर्माण का साहस भरा कदम उठाया तथा सामाजिक उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त किया।

5.2 सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी-संत और जाति-व्यवस्था

5.2.0 – जाति–व्यवस्था भारतीय समाज का मेरूदण्ड है। हमारे आलोच्य संतों के जातीय दृष्टिकोण पर विचार करने से पूर्व जाति का अर्थ एवं ऐतिहासिक विकास–क्रम को जान लेना आवश्यक है।

---

3. भारत की संस्कृति और कला – राधा कमल मुखर्जी पृ. 25
4. कबीर ग्रंथावली – श्याम सुन्दर दास पृ. 11

5.2.0.1 जाति का अर्थ/आशय – जाति शब्द आंग्ल भाषा के Casta का हिन्दी रूपान्तरण है। इसकी व्युत्पत्ति पुर्तगाली भाषा के शब्द कास्टा से मानी जाती है जिसका अर्थ प्रजाति, नस्ल या जन्म है।[5]

शब्द कोश के अनुसार हिन्दुओं में मानव–समाज का वह विभाग जो सर्व प्रथम क्रमानुसार निर्धारित होता था; पर अब उसका निर्धारण जन्मानुसार माना जाता है, जाति कहलाता है।

5.2.0.2 ऐतिहासिक विकास – समाज का सर्वप्रथम स्तरीकरण ऋग्वेद के पुरूष सूक्त से अस्तित्व में आया। इसके अनुसार विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य तथा चरणों से शूद्र की उत्पत्ति मानी गई है।[6] वर्णाश्रम की यह संकल्पना मनुष्य की प्रकृति तथा उसके प्रशिक्षण से सम्बन्धित थी। कर्माधारित यह वर्ण–व्यवस्था पूर्ण रूपेण स्वस्थ एवं उदात्त थी।

प्राचीन कर्माधारित वर्ण–व्यवस्था स्तरीकरण के क़ारण जटिल बनने लगी। समाज में वर्णों के मध्य मतभेद दिखाई देने लगे। अनुलोप–प्रतिलोप के कारण पुनः संकरण के कारण अनंत जातियाँ–उपजातियाँ निर्मित होती गई। अब वर्ण–व्यवस्था का आधार जन्म को माना जाने लगा। शूद्र कर्मा ब्राह्मण भी ब्राह्मण एवं ब्राह्मण कर्मा शूद्र ही माना जाता था जिससे समाज पंकिल होता गया।

जाति–प्रथा की संकीर्णता को जैन–बौद्ध आन्दोलनों ने नकारते हुए इस देश में महान् आन्दोलन का श्री गणेश किया।

मध्यकाल में यही जातिवाद रामाज का कलंक बन चुका था। यह इतनी विकृत हो चुकी थी कि जिसकी कल्पना सम्भवतः इसके प्रसव–काल में नही की गई होगी।

सिद्धनाथ एवं हिन्दी–संतों ने युगीन विकृत जाति–व्यवस्था रूपी कलंक को समाज के मस्तक से अपनी वाणी की वृष्टि कर धो डालने का हर संभव प्रयास किया।

5.2.1 सिद्ध-नाथ एवं जाति-व्यवस्था – सिद्ध–नाथ युगीन जाति व्यवस्था, चार वर्णो के स्तम्भों पर टिकी हुई थी। इन चारों वर्णो के प्रति सिद्ध–नाथों के दृष्टिकोण को जानने हेतु इनके साहित्य का अवलोकन अपेक्षित होगा।

2.1.1 ब्राह्मण – तद्‌युगीन पण्डित अथवा महंत ब्राह्मण–वर्ग के प्रतिनिधि थे। राजा–सामन्तों के वरदहस्त इन पर थे। जिससे कर्महीन ब्राह्मण भी समाज में श्रेष्ठ एवं उच्च स्थान के अधिकारी बने। धर्म–नियंता ब्राह्मणों ने सामान्य जन को भ्रमित करने के लिए धर्म की नवीन व्याख्याएँ कर डाली। उन्होंने समाज में वर्ण–भेद को निरंतर

5. भारतीय समाज व्यवस्था – डॉ. एम. एम. लवानिया, शशि. के. जैन पृ. 78

6. ब्राह्मणोडस्य मुखमासीद बाहू राजन्य : कृतः।
अरूतदस्य यद्वैश्य : पदभ्या शूद्रो अजायत। – ऋग्वेद (10–90–12)

बढ़ावा दिया। ये अपने अधिकारों के प्रति सावचेत थे; किन्तु कर्त्तव्यों की इन्होंने कभी सुध नहीं ली।

सिद्ध–साधकों ने कर्महीन जन्मना ब्राह्मण को आड़े हाथों लिया तथा उसके द्वारा फैलाये जा रहे मिथ्या प्रचारों को व्यर्थ सिद्ध किया। सिद्ध सरहपाद ने उग्रता के साथ ब्राह्मण के वास्तविक स्वरूप को उजागर करते हुए लोगों का भ्रमित करने वाले मिथ्या विचारों को उद्घाटित किया। यथा –

ब्रम्हणेहि म जानन्तहि येउ। एवइ पढ़िअ एच्चउवेउ।

मट्टि पाणि कुस लई पढ़न्त। धरहि बइसी अग्गि हुणन्त।

कज्जे विरहिअ हुअवत होमें। अक्खि डहाविअे कड्डुअे धूमें।

एक दण्डि त्रिदण्डी भ अवँ बसे। विणुआ होइअइ हंस उएसे।

मिच्छेहिजग वाहिअभुल्ले। धम्माधम्मण जाणिअ तुल्ले।[7]

युगीन ब्राह्मण अपने थोथे ज्ञान एवं पोथियों द्वारा सामान्य जनता को आतंकित किए हुए थे। ऐसे में सिद्ध–नाथों ने इनके ज्ञान एवं पोथियों को व्यर्थ सिद्ध करके ब्राह्मणों के शोषण के हथियार को भोटा बना दिया। सिद्ध सरहपाद ने इसी का अनुमोदन करते हुए कहा है कि ये ब्राह्मण शास्त्रों की रटी–रटाई बातों को बोलता है, किन्तु स्वयं शरीर में स्थित बुद्ध (परम तत्त्व) से अनभिज्ञ हैं। यथा –

पंडिअ सअल सत्य वक्खाणअ

देहहि बुद्ध वसन्तग जाणअ।[8]

गुरु गोरखनाथ ने भी ब्राह्मण वर्ग को परम तत्त्व से अनभिज्ञ मान उसे महाअधर्मी घोषित किया है। यथा –

परम तत का होय न मरमी,

गोरष कहै ते महा अधरमी।[9]

सिद्धों के समान नाथों ने भी ब्राह्मणों के ज्ञान को सारहीन, थोथा, अनुपयोगी कहते हुए उसे वाणी का धर्म कहा है, जिसको आचरण में ब्राह्मण ने कभी नहीं उतारा।[10]

2.1.2 अन्य वर्ण – अन्य वर्णो में क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र थे। जिनमें से क्षत्रिय एवं वैश्य शोषक वर्ग के प्रतिनिधि थे। जिनके बारे में व्यापक वर्णन सिद्ध–नाथ साहित्य में नहीं हुआ है। इसका कारण इनका साधना पथ के पथिक होना था।

---

7. दोहाकोश – राहुल जी पृ. 2
8. दोहाकोश, राहुल जी– पृ. 18
9. सबदी – शार्दूल सिंह कविया पृ. 59/223
10. कहणि सुहेली रहणि दुहेली, कहणि रहणि बिन थोथी।
    पढ़या गुण्या सूवा बिलाइ षाया, पंडित के हाथ रह गई पोथी। – उपरिवत् पृ. 32/119

वर्ण–व्यवस्था का चतुर्थ वर्ण शूद्र था, जिसकी पशुतुल्य स्थिति ने सिद्ध–नाथों को व्यथित किया। इन साधकों ने शूद्रों पर होने वाले अत्याचारों, अन्यायों के घावों को स्वयं सहा था। अतः इन्होंने अपनी फटी बिवाइयों के पैरों से शूद्रों के लिए सामाजिक समता प्राप्ति के सफर को तय किया। सरहपाद का शूद्र–कन्या को साथ रखना उच्च जातियों के प्रति विद्रोह एवं निम्न जातियों के प्रति समानता के भाव को ही उद्घाटित करता है।

नाथ–सिद्धों ने भेद–भाव, छुआछूत की कड़े शब्दों में निन्दा की। इन्होंने श्रम की महिमा बताकर निम्न वर्ण (शूद्र) को आत्म–विश्वास एवं आत्म–गौरव का मजबूत सम्बल थमाया।

सिद्धों की रचनाओं में कार्य करते लोगों का चित्रण किया जाना उपर्युक्त बात की पुष्टि करता है। वे सभी को कर्म की प्रेरणा देते हैं –

तुला धुणि धुणि आँसु रे आँसु।

आँसू धुणि धुणि णिर सेसु।

तुला धुणि धुणि सुणे अहरिउ।

शूर लइया अपणा चटारिउ। [11]

नाथ सभी वर्णों को सावचेत करते हुए कहते हैं कि सभी मन को उन्मनावस्था में लीन रखे, आत्मा की उपेक्षा न करे तथा पंचेन्द्रियों द्वारा प्राप्त सुखों के पीछे नहीं भागें। यथा –

चेता रे चेतिबा आपा न रेबिता, पंच की मेटिबा आस।

बदंत गोरष सति ते सूरिवां, उनमनि मन मैं बास। [12]

साराशंतः सिद्ध–नाथों ने तद्युगीन समाज में दूषित जाति–व्यवस्था का विरोध किया। उन्होंने युगीन समाज को समानता एवं समता का पाठ पढ़ाया।

5.2.2 हिन्दी-संत और जाति-व्यवस्था – मध्यकालीन जाति–व्यवस्था विकृत स्वरूप धारण कर समाज में अपनी जड़े जमा चुकी थी। जातिवाद का रोग समाज के रक्त में पूरी तरह मिल, उसे दूषित कर चुका था। जिससे शूद्र–निम्न जातियों में हीनता की ग्रंथि बंधती चली गई।

निर्गुण हिन्दी–संत मूलतः साधक थे; किन्तु इनकी साधना आकाशीय नहीं; वरन् अपने आस–पास की भूमि को छूकर चलती थी। जातीय भेदभाव जनित पीड़ा उनके लिए पराई नहीं थी, क्योंकि अधिकांश संत निम्न जातियों में उत्पन्न हुए। थोथे जातिवाद के

---

11. साहित्येतिहास – सुमन राजे पृ. 163
12. सबदी – पृ. 30 / 114

दंश से उनकी भी आत्मा आहत हुई। उन्होंने जातिवाद को समाज एवं मनुष्य की प्रगति का रोड़ा मानते हुए अर्थहीन जातीयता को निन्दनीय घोषित किया। संतों ने सिद्ध–नाथों के स्वर में स्वर मिलाते हुए जातिवाद का विरोध किया।

हिन्दी–संतों ने तद्युगीन जाति–व्यवस्था की बुराइयों के खात्मे के लिए अद्वैत ब्रह्म की संकल्पना प्रस्तुत की। ब्रह्म को अनेक मानने में खतरा था; क्योंकि ऐसा करने से प्रत्येक जाति, वर्ण या सम्प्रदाय के लोग अपने–अपने ढंग से ईश्वर का स्वरूप गढ़ सकते थे और तब ईश्वर परक भेद के आधार पर सामाजिक भेद को न्यायोचित ठहराया जा सकता था। अतः संतों ने आध्यात्मिक संसार में ऐक्य स्थापित करके सामाजिक समानता की परिस्थितियाँ तैयार की।

युग–प्रवर्तक संतों ने समाज में चारों वर्णों को उनके कर्त्तव्यों का बोध करा, उनकी विकृतियों की घोर निन्दा की।

2.2.1 ब्राह्मण – मध्यकालीन ब्राह्मण पर 'नाम बड़े और दर्शन छोटे' वाली कहावत पूरी तरह उपयुक्त थी। वह समाज में श्रेष्ठ वर्ग का प्रतिनिधि बना बैठा था। लोभ और लाभ के वशीभूत हो युगीन ब्राह्मण ने धर्म– अंकुश से सामान्य जन को आतंकित कर रखा था। निम्न बिंदुओं द्वारा युगीन ब्राह्मण एवं संतों के ब्राह्मण विषयक विचारों को समझा जा सकता है।

2.2.1.1 ब्राह्मण चरित्र – 'विद्या ददाति विनयम' से शून्य ब्राह्मण लोभ–लाभ की संकीर्ण मनोवृत्ति के शिकार हो चारित्रिक पतन के कगार पर जा बैठा था। अपनी सामाजिक श्रेष्ठता का मिथ्या लाभ उठाते हुए उसने जात–पाँत, छुआछूत, तीर्थव्रत, ऊँच–नीच इत्यादि की मिथ्या भावनाओं को फैलाया तथा जातीयता की खाई को निरन्तर चौड़ा करने में अपना अविस्मरणीय योगदान दिया।

हिन्दी–संतों ने अधकचरे, थोथे ज्ञानी ब्राह्मण वर्ग की वास्तविक छवि का उद्घाटन सामान्य जन के समक्ष किया, साथ ही मिथ्याचारी ब्राह्मण को भी उसके स्वरूप से साक्षात्कार करने के लिए दर्पण थमाया।

2.2.1.2 सामाजिक-भूमिका – युगीन ब्राह्मण वर्ग ने सामाजिक कर्त्तव्यों का अपने स्वार्थों की अग्नि में आहूत कर दिया था। सामाजिक मंच पर वह शोषक के रूप में प्रतिष्ठित था। ब्राह्मणों ने दूषित मिथ्या विचारों को प्रसारित कर दीन–हीन जनता को छला एवं छीला। ब्राह्मणों की इस स्वार्थी नीति का सर्वाधिक परिणाम शूद्र – निम्न वर्ग को झेलना पड़ा। शूद्र वर्ण को घृणास्पद, तुच्छ घोषित करके उसे सामाजिक रूप से बहिष्कृत माना जाने लगा।

मानवतावादी संतों ने ब्राह्मण जनित कृत्रिम समाज–व्यवस्था की नींव को हिला कर रख दिया। इसके लिए इन संतों ने ब्राह्मण एवं शूद्र की समानता सिद्ध करते हुए तर्कों की झड़ी लगा दी। जिससे समाज के ठेकेदार ब्राह्मण की बोलती बंद हो गई। यथा–

काहे का कीजे पांडे छोति विचारा।

छोतिही तै उपना सब संसारा।

हमरै कैसे लोहू, तुम्होर कैसे दूध।

तुम कैसे ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद।

छोति छोति करता तुम्ही जाए।

तौ ग्रभवास काहे कौ आए।

जनमत छोत मरत भी छोत।

कहै कबीर हरि की निरमल जोत। [13]

'ऊँच–कुल के कारन ब्राह्मण कोय न होय'[14] द्वारा संत रविदास कर्महीन जन्मना ब्राह्मण का विरोध दर्ज कराते हैं।

संत–प्रवर दादू दयाल ने ब्राह्मणों के खिलाफ लोगों को जाग्रत करते हुए कहा है कि ये ब्राह्मण अपने स्वार्थों हेतु मानव रूपी जल को विविध वर्ण, जाति एवं नामों द्वारा बॉटते आये हैं।[15]

2.2.1.3 धार्मिक भूमिका – तदयुगीन ब्राह्मण ने धर्म नियंता के अधिकारों का दुरूपयोग करके धर्म के पावन अर्थ को मलिन बना दिया। जिससे सामान्य जन ब्राह्मणों जनित कृत्रिम धार्मिक मत–मतान्तरों एवं मिथ्या आडम्बरों के बीच घुटन भरी जिन्दगी बिताने को विवश थे।

मध्ययुगीन संतों ने अध्यात्म–मार्ग की राह भूल नैमित्तिक आचरण को ही धर्म मान बैठी जनता को समझाया। इसके लिए उन्होंने धार्मिक बाह्याचारों का सार्वजनिक रूप से उदघाटन किया। मिथ्या बाह्याचारों के पीछे पागल हुए संसार को सावचेत करते हुए, कबीर कहते हैं –

संतो देखत जग बौराना।

सांच कहौ तो मारन धावै, झूठहि जग पतियाना।

नेमी देखा धरमी देखा, प्रात करैअसनाना।

साखी सबदै गावत भूले, आतम खबरि न जाना। [16]

---

13. क. ग्र. पृ. 101 पद 42
14. संत रविदास – इन्द्रराज सिंह पृ. 127 से उद्धृत।
15. दादू पाणी के बहु नाम धर, नाना विधि की जात।
    बोलन हारा कौन है, कहौ धौ कहाँ समात। – श्री दादू वाणी पृ. 280 पद – 16
16. संत काव्य में विद्रोह का स्वर – किरण कुमारी नंदा – पृ. 47–48.

इस प्रकार कबीर धार्मिक बाह्याडम्बरों में बौराये जग को आत्मा की आवाज सुनने का संदेश देते हैं।

एक स्थल पर रविदास जी तीर्थ यात्रा, व्रत इत्यादि को आडम्बर मानते हुए सर्वत्र व्याप्त ब्रह्म की अन्तर्बाह्य शुद्धि की साधना पर बल देते हैं।[17]

संत–प्रवर दादू दयाल ने चोर एवं अंधकार के रूपक द्वारा ब्राह्मण की धार्मिक भूमिका पर कुठाराघात किया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि जैसे चोर को अंधेरा प्रिय है, क्योंकि अंधेरे में वह अपने कुकृत्यों को सरलता से कर लेता है और उसके कुकृत्य का कोई साक्षी नहीं होता ठीक वैसी ही स्थिति ब्राह्मणों की है वे भी समाज को धार्मिक (अज्ञान एवं मिथ्या) आडम्बरों को यथावत रख अपने स्वार्थों को पूरा करना चाहते हैं। यथा –

चोर न भावे चांदणा, जाति उजियारा होइ।

सूते का सब धन हरू, मुझे न देखे कोई। [18]

संतों ने धर्म के सत्य स्वरूप की प्रतिष्ठा की तथा सामान्य जन को धर्म का पावन स्वरूप दिखाया।

2.2.1.4 शास्त्र ज्ञान की व्यर्थता – संतों ने मिथ्याचारी ब्राह्मण वर्ग की सामाजिक, धार्मिक भूमिका पर प्रहार करने के साथ ही उनके झूठे ज्ञान को आवरणहीन करके ब्राह्मणों की नींद उड़ा दी।

पण्डित वाद वदन्ते झूठा[19] का नारा लगाकर ढ़ाई आखर प्रेम के पाठक कबीर ने ब्राह्मण के शास्त्राधारित ज्ञान को चुनौती दे डाली। उसके बाद साहस भरा कदम उठाते हुए कबीर ने ब्राह्मण के मिथ्या ज्ञान एवं पोथियों को मनुष्य के सामाजिक व आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्ति में बाधक तत्त्व घोषित कर सामान्य जन को 'झाड़ चले हम कछु नहीं लिया'[20] कह कर ऐसे मिथ्या ज्ञान को छोड़ने का मुक्ति मंत्र सिखाया।

कागज काले कर मुये, केते वेद पुरान[21] द्वारा संत दादू दयाल ने ब्राह्मणों के ज्ञान को व्यर्थ एवं काले कागज के समान अनुपयोगी सिद्ध किया।

संत रैदास ने शास्त्र–ज्ञान की दुहाई देकर धार्मिक व्यावसायिकता को बढ़ावा देने वाले मिथ्याचारी ब्राह्मण वर्ग पर कटाक्ष किया। संत रैदास ने पण्डितों एवं उनके ज्ञान को थोथा ठहराते हुए हरि सेवा को प्रामाणिक सिद्ध किया –

---

17. तीरथ बरत न करौ अन्दैसा, तुम्हरे चंदन कमल के भरोसा।
    जहँ जहँ जाओ तुम्हरी पूजा, तुम–सा देव और नहीं दूजा। – संत रैदास स– योगेन्द्र सिंह पृ. 181
18. श्री दादू वाणी – पृ. 289 / 168
19. संत काव्य मे विद्रोह का स्वरूप – पृ. 48
20. क. ग्र. – पृ. 272
21. श्री दादू वाणी – पृ. 276

थोथा पण्डित थोथी बानी, थोथी हारे बिन सबै कहानी।[22]

पंडित पाठ पढ़ै अहंकारी, सुशब्दु नचीनै हउ मनिहारि,[23] द्वारा गुरु नानक ब्राह्मण को अहंकारी कहते हैं, जो पोथियों के जाल में फँसा रहकर वास्तविक सत्य से अनभिज्ञ रहता है। संत धरणी दास जी ने ब्राह्मणों के कथनी ज्ञान को गीदड़ का ज्ञान[24] कहते हुए उपहास किया है।

वस्तुतः संत ब्राह्मण के विरोधी नहीं, वरन् तद्युगीन विद्या, विनय से शून्य, अहंकारी, शोषक, अत्याचारी जन्मना ब्राह्मण की दूषित वृत्तियों का विरोध करते हैं। वे सच्चे मनुष्य को ब्राह्मण की नूतन परिभाषा देते हैं।

2.2.2 **क्षत्रिय** – वीरता एवं शौर्य का प्रतीक तद्युगीन क्षत्रिय वर्ग भी युगीन विकृतियों से अछूता नहीं रह सका। तद्युगीन क्षत्रिय बे हिसाब सम्पत्ति की गर्मी में अय्याशी को अपना जन्म–सिद्ध अधिकार एवं जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि मान बैठे थे।

इस धरती को वैकुण्ठ बना राम–राज्य का स्वप्न संजोने वाले हिन्दी–संतों ने जब अपने आस–पास रावण–राज्य को पैर पसारते देखा। ऐसी विषम स्थिति में उनका निर्मल स्वप्न झुलसने लगा। अतः संतों ने कर्त्तव्य से विमुख होते क्षत्रिय–वर्ग को प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से उनके कर्त्तव्यों की याद दिलाई। संत रैदास ने सच्चे सूरमा के लक्षणों को निरूपित करके तद्युगीन क्षत्रिय वर्ग को उन्हें अपनाने की सीख दे डाली। यथा –

दीन दुखी के हेत जो बारे अपने प्राण।

रविदास उह नर सूर को सच्चा छत्री जान।[25]

जीव प्रतिपालक क्षत्रिय वर्ग द्वारा जीव–हत्या कर हिंसावृत्ति धारण किए क्षत्रिय–वर्ग के जीवन को ही कबीर ने व्यर्थ घोषित किया[26] तथा उसे रक्षक के दायित्व का भान कराया।

गुरू नानक देव ने शासक वर्ग के राजनीतिक प्रभुत्व की चिंता छोड अत्याचारी शासक का प्रतिरोध करते हुए निरपराध सामान्य जनता का पक्ष लिया, ऐसा कर उन्होंने नैतिकता का साथ दिया –

22. संत रैदास (सं. योगेन्द्र सिंह) पृ. 167 / 50
23. प्राण संगली, प्रथम भाग पृ. 94.
24. धरनी कथनी लोक की, ज्यो गीदर को ज्ञान' स.बा.स – प्रथम पृ. 110
25. संत रैदास– इन्द्रराज पृ 127.
26. जीवहि मारि जीव प्रतिपारै,देखत जनम अपना हारौ – क. ग्र. पृ. 240 रमैणी – 5

खुरासान खसमाना कीआ हिन्दुसतानु डराइआ।

आपै दोस न देई करता जमु करि मुगल–चड़ाइआ।

एती मार पई कुरलाणै,तै की दरदु न आइआ। [27]

क्षत्रिय–वर्ण के स्पष्ट संकेत संत दादू के साहित्य में नहीं मिलते; किन्तु राजमद के पीछे भागने वालों के प्रति हल्की सी व्यंग्यात्मक टिप्पणी उनकी वाणी में कहीं–कहीं देखने को मिलती है।[28] संत कबीर भी क्षत्रिय वर्ग के अत्याचार, अन्याय का विरोध कुछ इसी प्रकार करते हैं।[29]

2.2.3 **वैश्य** – मध्ययुगीन जनता का शोषण शासक–पुरोहित ही नहीं; वरन् परजीवी वैश्य–वर्ग द्वारा भी भरपूर किया जाता था। संत कबीर धन–वैभव को दस दिन बजने वाले बाजे के समान क्षणिक मानते हुए कहते हैं कि मृत्यु के बाद कोई सुखों का उपभोग नहीं करता। अतः ऐश्वर्य के मोह से निवृत्ति का उपदेश वैश्य वर्ग को देते हुए उनको अपरिग्रह का संदेश देते हैं –

कबीर नौबति आपणी दिन दस लेहु बजाइ।

ए पुर पाटन ए गली, बहुरिन देखौ आइ। [30]

संत श्रम के पुजारी थे। श्रम ही उनका जीवन–मूल्य है जो श्रमजीवी नहीं परोपजीवी है, वह शोषक है। अतः वे परोपजीवी को घृणा का पात्र मानते हैं। इस परोपजीवी प्रवृत्ति के निराकरण हेतु ही संतों ने जीवन की क्षणभंगुरता से युग का साक्षात्कार कराया। जिसका एक लक्ष्य वणिक–वृत्ति पर प्रतिबंध लगाना भी रहा होगा।

2.2.4 **शूद्र** – मध्यकालीन समाज में शूद्र वर्ग सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक अधिकारों से सर्वथा हीन एवं कर्त्तव्यों के भार तले दबा हुआ था।

हमारे आलोच्य संत मूलतः समाज के इसी दबे–कुचले हिस्से के प्रतिनिधि थे। इन संतों ने शूद्र वर्ण एवं उसमें समाहित जातियों के उद्धार का झंडा ऊँचा करके कल्याण कारी अभियान का शंखनाद किया।

समानता के इस आन्दोलन को तेज करने के लिए संतों ने समाज की श्रेष्ठ जातियों एवं शूद्रों में साम्य–भाव हेतु ऐसे ऐसे तर्क प्रस्तुत किए कि श्रेष्ठता के दावे करने वाली ऊँची जातियाँ निरूत्तर हो बगलें झाँकने लगी।

---

27. मध्ययुगीन निर्गुण चेतना – डॉ. धर्मपाल सैनी पृ. 112
28. दादू दयाल – रामबक्ष पृ. 28
29. कागद का माणसकिया छत्रपति सिरमौर
    राज पाट साधै नहीं, दादू परहरि और – दादू दयाल ग्रंथावली पृ. 144
30. कबीर साखी सार – पृ. 64 / 1

'एक ज्योति थै सब उतपना, कौन ब्राह्मण कौन सूदा'[31] का बिगुल बजा कर युग द्रष्टा कबीर ने सभी में एक तत्त्व के दर्शन करते हुए जन्मगत भेद को अस्वीकृत किया।

तुम कैसे ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद?[32] जैसे प्रश्न करके कबीर ने ब्राह्मण वर्ग को निरूत्तर कर दिया। 'सब घट एकै आत्मा' के अनुयायी दादूदयाल ने मानव को उत्तम एवं अधम दो कोटियों में विभक्त किया। इसके भी आगे बढ़कर उन्होंने 'सबै सयाने एक मत तिनकी एकै जाति'[33] का आह्वान करते हुए सभी विवेकशील प्राणियों को एक जाति का बता जाति की नवीन परिभाषा प्रस्तुत की।

जाति–पाँति का विरोध करते हुए रविदास कहते हैं कि जन्म से कोई श्रेष्ठ नहीं होता व्यक्ति तो अपने कर्मो से नीच बनता है –

रविदास जनम के कारने होत न कोई नीच।

नर कूं नीच कर डारी है औछै कर्म की कींच। [34]

श्रम के पुजारी संत जन दीन–हीन शूद्र जाति को कर्मठता की शिक्षा देते हैं। वे उनके कार्य की सामाजिक उपयोगिता सिद्ध कर श्रमजीवी (शूद्र) वर्ग में सुप्त आत्म–गौरव, आत्मविश्वास की मशाल जाग्रत कर उनके हृदय में व्याप्त अंधकार को मिटा देते हैं। संत श्रम–जीवी को ब्रह्म व उनके व्यवसाय को ब्रह्म के कार्य के समान बता कर, उन्हें आदरणीय बना देते हैं। श्रम को ईश्वर की संज्ञा प्रदान करते हुए रैदास ने कहा है –

स्रम कउ ईसर जानि कै, जउ पूजहि दिन रैन

रविदास तिन्हहि संसार मँह, सदा मिलहि सुख चैन। [35]

सारांशतः सिद्ध–नाथ एवं मध्ययुगीन हिन्दी–संतों ने जातिवाद का गरलपान किया था। वे उसके स्वाद से बेखबर नहीं थे, तभी तो उन्होंने जातिवाद से विषाक्त हुए वातावरण में साम्य–भावना की पीयूष–वृष्टि कर सम्पूर्ण मानवता को कृतज्ञ किया। सिद्ध–नाथों की परिपाटी का अनुसरण करके उसमें अपनी निजी सोच को आत्मसात कर इन संतों ने जन्माधारित वर्ण–व्यवस्था की अवहेलना की, जो आज भी प्रासंगिक है।

5.3 सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी-संत और ब्राह्मणवाद

5.3.0 – सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी–संतों के ब्राह्मणवादी विचारों से अवगत होने से पूर्व ब्राह्मण एवं ब्राह्मणवाद का परिचय प्राप्त करना अपेक्षित है।

---

31. क. ग्र. – पृ. 106 / 57
32. उपरिवत् – पृ. 79
33. श्री दादू बाणी – पृ. 289 / 164
34. सत रविदास – इन्द्र राज पृ. 125
35. रविदास – दर्शन – (स. पृथ्वीसिंह आजाद) पृ. 119

5.3.0.1 ब्राह्मण का अर्थ – ब्रह्म – वेदमधीते जानातिवा ब्राह्मण अर्थात् वेदों को पढ़ने वाला या वेद प्रतिपाद्य अक्षर तत्त्व को जानने वाला ब्राह्मण है।[36]

पतंजलि ने दो प्रकार के ब्राह्मणों का उल्लेख किया हे –

जो चान्द्रायण आदि तप, वेद, वेदांग का ज्ञाता तथा ब्राह्मणी से उत्पन्न हो वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है और जो तप, शास्त्र ज्ञान से हीन है, वह केवल जाति ब्राह्मण है। इस प्रकार जो आत्मज्ञान को जानता है, वेदों के मर्म को जानता है, सर्वत्र व्याप्त सत्य को अनुभव कर सकता है वही सच्चा ब्राह्मण है एवं समाज के लिए कल्याणकारी है।[37]

5.3.0.2 ब्राह्मणवाद – ब्राह्मणवाद दो शब्दों के मेल से निर्मित हुआ है ब्राह्मण और वाद। जिसका अर्थ है ब्राह्मण सम्बंधित विचारधारा; किन्तु यह परम्परागत अर्थ है। ब्राह्मणवाद का वृहत् रूप से अर्थ है ब्राह्मणों द्वारा समाज में नैतिक, भौतिक, आध्यात्मिक मूल्यों के विकास करने के लिए एवं मानव की आध्यात्मिक एवं नैतिक–भौतिक उन्नति का सम्मिश्रित रूप निरूपित करने के लिए प्रतिपादित एवं क्रियान्वित विचारधारा।

5.3.0.3 ऐतिहास विकास-यात्र – कर्माधारित वर्ण–व्यवस्था जब जन्माधारित हो गई तब जन्मना ब्राह्मणों की फौज सी तैयार होती चली गई तथा उनकी संकीर्ण विचारधाराओं में निरंतर वृद्धि होती गई। ब्राह्मण अपने पावन कर्त्तव्यों को विस्मृत कर श्रेष्ठता के दंभ के अंधगर्त में निरंतर गिरता गया, जिससे समाज भी विकृतियों का शिकार हुआ।

हमारे आलोच्य संत–साधकों ने तद्युगीन ब्राह्मणवाद में निहित संकीर्णताओं का कड़ा विरोध किया।

5.3.1 सिद्ध-नाथ और ब्राह्मणवाद – सिद्ध–नाथ कालीन समाज ब्राह्मणों जनित मिथ्याडम्बरों, भेदपरक नीतियों, कर्मकाण्डों इत्यादि से आक्रांत था। ऐसे में सिद्ध–नाथों ने ब्राह्मणों द्वारा फैलाये जाने वाली भ्रांत धारणाओं एवं जन्मना ब्राह्मणों का घोर विरोध किया।

5.3.1.1 ब्राह्मण-चरित्र – सिद्ध–नाथों ने तद्युगीन ब्राह्मणों की चारित्रिक दुर्बलता का साक्षात्कार सामान्य जन से कराया। सिद्ध सरहपाद ने स्पष्ट घोषणा की कि ये ब्राह्मण व्यर्थ ही वेद–पाठ करते हैं, जल, मिट्टी, कुश लेकर मंत्र पढते हैं, हवन करते हैं एवं हवन के धुएँ में स्वयं की आँखों को पीड़ित करते हैं। वास्तविकता तो यह है कि ये असत् धर्म के पोषक हैं और उसी को फैलाने के लिए मिथ्या धारणाओं को फैलाते हैं।[38]

36. कल्याण पत्रिका – पृ. 327, मई 2000 ई; संख्या – 5
37. उपरिवत् ।
38. दोहा कोश –राहुल साकृत्यायन पृ. 2

नाथों के समय मुस्लिम धर्म में काजी–मुल्लाओं ने ब्राह्मण की भूमिका को बखूबी निभाया। गोरखनाथ ने ब्राह्मण के चरित्र को हींग खाकर कपूर का स्वाद बताने वालों के समान मिथ्याचारी कहा है –

खाई हींग कपूर वषाणै, गोरष कहै सब झूठा। [39]

5.3.1.2 ब्राह्मण की धार्मिक भूमिका पर हार – सिद्ध–नाथों ने सशक्त तर्कों के माध्यम से ब्राह्मणों एवं उसके भ्रामक विधानों का कड़ा विरोध दर्ज कराया। धर्मासन पर आरूढ़ ब्राह्मण को फटकारते हुए सिद्ध सरहपाद ने कड़ी आलोचनात्मक शैली में कहा है –

जइ राग्गा विअ होइ मुवित्त ता सुणाह सिआलह,

लोभ पाडणों अत्थि सिद्धि तो जुबई णिअम्ह,

पिच्छी ग्रहण दिट्ठ भोक्ख ता मोरह चमरह,

उच्छे भोक्षणे हो जाणता करिह तुरंगह। [40]

धर्म के पावन स्वरूप के उपासक नाथों ने तद्युगीन ब्राह्मणों द्वारा नैमित्तिक आचरण को धर्म माने जाने का विरोध किया। मंदिर, तीर्थ–यात्रा, पवित्र जल से स्नानादि को आत्मानुभूति प्राप्ति का साधन नहीं मानते हुए किसी तत्त्वदर्शी महापुरूष के दर्शनार्थ की गई यात्रा एवं उसकी अमृत तुल्य वाणी को सार्थक सिद्ध किया –

देवल जात्रा सुनी जात्रा, तीरथ जात्रा पांणी।

अतीत जात्रा सुफल जात्रा,बोलै अमृतवाणी। [41]

नाथों ने मुस्लिम धर्म को आडम्बरों में आबद्ध करने वाले मुल्लाजी को मुहम्मदसाहब की पावन वाणी के मर्म को समझने का संदेश दिया हैं –

महमंद–महमंद न करि काजी, महमदं का बौहोत विचारं।

महमदं साथि पैकंबर सीधा ये लक्ष अती हजार। [42]

5.3.1.3 थोथे ज्ञान और पोथियों की व्यर्थता – सिद्धों ने ब्राह्मण के थोथे ज्ञान एवं पोथियों को व्यर्थ बताते हुए, उन्हें निर्लज्ज कहा जो शास्त्र की चर्चा तो करते हैं; किन्तु शरीर में विद्यमान बुद्ध को नहीं पहचानते।

---

39. सबदी – पृ. 32 / 120
40. दोहा कोश – बागची पृ. 7
41. सबदी – पृ. 26
42. उपरिवत् – पृ. 60

पंडिउ सअल सत्थ वक्खाणअ।

देहहि बुद्ध वसन्त ण जाणअ। [43]

सिद्धों की परिपाटी का अनुसरण करते हुए नाथों ने भी ब्राह्मणों के थोथे ज्ञान का व्यर्थ सिद्ध किया। उन्होंने कहा कि ये विद्वान परमात्मा को नहीं जान पाये जैसे आये वैसे ही चले गये। यथा –

पढ़ि पढ़ि पढ़ि केता मुवा, कथि कथि कथि कहा कीन्हा।

बढ़ि बढ़ि बढ़ि बहु घटि गया,पार ब्रह्म नहीं चीन्हा। [44]

गुरू गोरख नाथ ने ब्राह्मणों के थोथे ज्ञान को स्वप्न में पाए गए धन के समान अनुपयोगी बता उसे सच्ची साधना में बाधा के रूप में निरूपित कया –

सीषि सीषि बिसाह्या बुरा, सुपनै मै धन पाया पड़ा।

परषि परषि ले आगै धरा, नाथ कहै पूता षोटा न षरा। [45]

'अवधू ऐसा ज्ञान विचारी तामै झिलिमिलि ज्योति उजाली' का संदेश प्रेषित कर नाथों ने धर्म–नियंताओं के ज्ञान को थोथा व पोथियों को व्यर्थ सिद्ध किया।

5.3.1.4 सच्चा ब्राह्मण – सिद्ध–नाथ साधकों ने जन्मना ब्राह्मण के स्थान पर कर्मणा ब्राह्मण को सच्चा ब्राह्मण सिद्ध किया। 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' जैसी उदात्त भावनाओं के धनी नाथों ने उसे ब्राह्मण माना जो अहंकार, विषय–भोग, लाभ एवं लोभ तथा सांसारिक आसक्तियों से सर्वथा निर्लिप्त रहते हुए ईश्वर में लय हो गया हो। यथा –

जोगी सो जो राषै जोग,जिभ्या यंद्री न करै भोग।

अंजन छोड़ि निरंजन रहै, ताकू गोरष जोगी कहै। [46]

नाथों ने सच्चे दरवेश की परिभाषा भी इस प्रकार दी हे –

दरवेश सोई जो दर की जाणै। पंचे पवन अपूठां आणै।

सदा सुचेत रहै दिन राति। सो दरवेस अलह की जाति। [47]

इस प्रकार ब्राह्मणवाद का जो जहर समाज में फैल रहा था, सिद्ध–नाथों की वाणी उसकी निवृत्ति हेतु अमृत–ओषधि बनी।

---

43. दोहा कोश – राहुल जी पृ. 18
44. सबदी – पृ. 65
45. उपरिवत् – पृ. 41 / 154
46. उपरिवत् – पृ. 61 / 230
47. सबदी – पृ. 48 / 182

5.3.2 हिन्दी-संत और ब्राह्मणवाद – मध्यकालीन ब्राह्मण वर्ग अपने मर्यादित मार्ग से भटक चुके थे। वे अपने अधकचरे ज्ञान, थोथे अहंकार और स्वार्थवृत्ति द्वारा समाज में मानवता का अंत कर चारों और अमानवीय अत्याचारों को बढ़ावा दे रहे थे। मुस्लिम समाज में ब्राह्मणों की भूमिका का निर्वाह मुल्ला–काजियों द्वारा किया जाता था। तद्युगीन धर्म–नियंताओं ने अधार्मिक नियमों को शरीयत का जामा पहनाकर धार्मिक स्वरूप प्रदान किया एवं भ्रमित जनता का धर्म के नाम पर भरपूर शोषण किया। मध्यकालीन हिन्दी–संतों ने मिथ्याचारी धर्म–नियंताओं को आड़े हाथों लिया।

5.3.2.1 ब्राह्मण-मुल्ला चरित्र – संत कबीर ब्राह्मण को पांडे, पंडित, महन्त इत्यादि अभिधान द्वारा सम्बोधित करते हुए उस पर करारे व्यंग्य बाणों की बौछार करते हैं। कबीर दास का पण्डित वह अधकचरा ब्राह्मण है, जो ब्राह्मण मत के अत्यंत निचले स्तर का नेता है, वह कबीर के समक्ष बहुत अदना आदमी है। स्वर्ग नरक के सिवाय और कुछ जानता ही नहीं, जात–पाँत और छुआछूत का अंध उपासक है, तीर्थ–स्नान और व्रत–उपवास का ठूँठ समर्थक है– तत्त्व–ज्ञानहीन, आत्म–विचार–विवर्जित, विवेक–बुद्धिहीन अटट गँवार।[48]

संत कबीर पंडित को फटकारे हुए कहते हैं –

पंडिआ कवन कुमति तुम लागे।

बूडहुगे परिवार सकल सिऊराम न जपहु अभागे। [49]

संत रैदास भी कबीर के समान जातीय पण्डितों को उनकी चारित्रिक मलिनता के कारण तुच्छ मानते हैं –

जोगीसर पावहि नहीं, तुम गुण कथनु अपार।

प्रेम भगति कै कारणै, कहु रविदास चमार। [50]

'धरनी भरती बाम्हने, बसहिं भरत के देस'[51] द्वारा संत धरनीदास ब्राह्मण को भ्रम देश का निवासी कहते हुए भ्रम का प्रचारक सिद्ध करते हैं।

राम भक्ति भावे नहीं, अपनी भक्ति का भाव।

राम भक्ति मुख सौ कहै, खेले अपना डाव। [52]

द्वारा संत–प्रवर दादू दयाल तद्युगीन धर्म के ठेकेदारों के चरित्र में निहित दुर्बलता को आलोकित करते हैं।

48. कबीर – द्विवेदी पृ. 131–132।
49. कबीर वाड्मय खण्ड – 2 पृ. 205 / 164
50. संत रैदास – साहित्य भाग – 2 – संगम लाल पाण्डेय पृ. 104।
51. स.बा. स. प्रथम – पृ. 110
52. श्री दादू वाणी – पृ. 272 / 78

'जा का गर तुम काटि हौ, सो फिर काटि तुम्हार' हिन्दू के दया नहीं मिहर तुरक के नहिं[53] की घोषणा कर कबीर हिन्दू–मुस्लिम धर्म–नियंताओं के व्यक्तित्व को खोल कर रख देते हैं।

5.3.2.2 ब्राह्मण-मुल्ला एवं अन्य वर्ण – ब्राह्मण–मुल्ला ने स्वयं को श्रेष्ठ घोषित कर सामान्य जन को घृणास्पद व तुच्छ सिद्ध किया। मानवता के पुजारी संतों ने जातीय दंभ से इठलाते ब्राह्मण के ब्राह्मणत्व पर ही सवालिया निशान लगा उसके अहम को चूर–चूर कर दिया। यथा –

जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणी जाया तो आन बाट ते काहे नहीं आया। [54]

'जब पूरण ब्रह्म विचारिये तब सकल आत्मा एक'[55] कहकर संत–प्रवर ने नाम, वर्ण व जाति को काया के गुण सिद्ध करते हुए सभी में बंधुत्व भाव को स्वीकार किया।

इसी परिपाटी में संत रैदास ने वर्ण–भेद को निन्दनीय घोषित करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, डोम, चमार, म्लेच्छ आदि के हृदय में एक ईश्वर का निवास सिद्ध किया। ऐसा करके उन्होंने सर्वात्मवादी दर्शन के आधार पर मानव को समानता का पाठ पढ़ाया।[56]

इस प्रकार इन संतों ने समाज में प्रचलित जाति–विधान को नष्ट–भ्रष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

5.3.2.3 ब्राह्मण-मुल्ला की धार्मिक भूमिका पर प्रहार – मध्ययुगीन संतों ने जागरूका का परिचय देते हुए तद्युगीन ब्राह्मण–मुल्ला के आतंक से आतंकित सामान्य जन को उनके द्वारा धर्म में फैलाये जाने वाली मिथ्या– भ्रांत धारणाओं से अवगत कराया। ऐसा करके उन्होंने धर्म नियंताओं की धार्मिक भूमिका पर प्रहार करके उनके प्रभुत्व के सिंहासन को झकझोर दिया।

पंडित भूले पढ़ि गुन्य वेदा, आप न पावै नाना भेदा[57] द्वारा पंडितों की पोल खोली।

संत–धर्म के नाम पर फैलाये जा रहे बाह्याचारों से दुःखी थे। वे जानते थे कि रूढ़िग्रस्त मानसिकता समझाने बुझाने से नहीं बदलेगी तभी तिलमिलाने वाली बात करते

53. सत बाणी संग्रह –पृ. 57
54. क.ग्र. पृ. 282.
55. श्री दादू वाणी – पृ. 117
56. ब्रह्मन वैस सूदअरूखत्री, डोमचंडार मलेच्छमनसोइ।
 होइपुनीत भगवंत भजन ते, आयु तारि तोर कुल दोइ।'
 आदि गुरू ग्रंथ साहिब, बिलाबलुवाणी रविदास भगत की पृ. 858
57. क ग्र. पृ. 240 रमैणी – 5

हैं जो सीधे ह्रदय पर चोट करती है। तभी तो पंडित को कसाई कहने में भी कोई सोच विचार नहीं करते।

संत–प्रवर दादू पण्डित व मुल्ला द्वारा फैलाये जा रहे मिथ्याचारों का खण्डन करते हैं। वे कहते हैं कि ये गला काट कर कलमा पढ़ने वाले हैं। पाँच वक्त नमाज पढ़ते है; किन्तु वास्तव में परमेश्वर को छिटकाएं हुए हैं –

दादू गल काटे कलमा भरै, आया विचारा दीन।
पाँचों वक्त नमाज गुजारें, साबित नहीं यकीन। [58]

तथा

दादू जिन पैदा किया, ता साहिब का छिटकाइ। [59]

5.3.2.4 **थोथे ज्ञान और पोथियों की व्यर्थता** – मध्ययुगीन धर्म–नियंताओं ने पुस्तकों को कंठस्थ कर लिया; किन्तु उसके मूल तत्व से अनजान ही रहे। मर्म हीन ज्ञान प्राप्त व्यक्ति विद्वान बन बैठे तथा अपने मिथ्या ज्ञान के दंभ में धर्म नियंता मदमस्त हो इसका बेजा फायदा उठाने में लगें।

ऐसे में संतों ने पुस्तक ब्रह्म, राम नाम के ज्ञान का महत्त्व बता कर[60] सामान्य जन को पुस्तकीय ज्ञान की अनुपयोगिता बताई। सिद्ध सरहपाद के समान संत कबीर ने पुस्तकीय ज्ञानी पंडित को वास्तविक तत्त्व से अनजान बताया।[61]

गुरू नानक देव ने धर्मशास्त्रों के प्रति अनास्था का भाव रखते हुए कहा है कि धर्म–नियंता इसी थोथे–ज्ञान द्वारा जनता को भटका कर नानक बाहरी लिखाई के स्थान पर उस आत्म–ज्ञान की लिखाई पर बल देते हैं, जिसके लिए मोह को जलाकर बनाई हुई स्याही हो, सुमति कागज हो, सद्भाव की लेखनी हो, चित्त लेखक हो तथा गुरू द्वारा बताए सुविचार लिखे जाए।[62]

पण्डित मुल्ला जो कह दिया,

झाड़ चले' हम कछु नहीं लिया[63] का एलान करके संतों ने थोथे पुस्तकीय ज्ञान का स्वयं परित्याग कर एक जन आन्दोलन को प्रेरित किया।

---

58. श्री दादू वाणी – पृ. 262 / 14
59. उपरिवत् – पद – 15
60. क. ग्र. – पृ 38 / 2
61. पढ़ि–पढ़ि पडित वेद बखाणै, भीतरि हूति वसत न जाणै – क. ग्र. पृ. 102 / 42
    जालि मरेहु धमि मसु करि, मति कागदु करि सारु।
62. भाइ कलम करि चितु लेखरी गुरू पुछि लिखु बीचारू। व्यास बुद्ध और हिन्दी संत, पृ 132
63. कबीर ग्रथावली, – पृ. 272

सो उपजी किस काम की जे नर करे कलेश[64] की घोषणा कर दादू ने विवाद एवं क्लेश को जन्म देने वाले ज्ञानको निन्दनीय ठहराया।

संत रैदास ने हरि–सेवा से विमुख थोथे पंडितों–मुल्लाओं के ज्ञान को अनुपयोगी माना।[65]

मध्ययुगीन संतों ने ब्रह्मज्ञान से शून्य तद्युगीन पंडित मुल्लाओं के थोथे ज्ञान को अविश्वसनीय माना। उन्होंने लोगों को इस मिथ्या ज्ञान की भूल–भुलैया से निकाल कर ढाई आखर प्रेम की शिक्षा प्रदान की।

5.3.2.5 सच्चा ब्राह्मण-मुल्ला – मध्ययुगीन संतों ने तद्युगीन जन्मना ब्राह्मणों के छद्‌म स्वरूप से सामान्य जन का साक्षात्कार करवाया, वहीं सच्चे ब्राह्मण–मुल्ला के पावन स्वरूप का उद्‌घाटन किया।

संत कबीर प्रेम के ढाई अक्षर के ज्ञाता को पण्डित घोषित करते हैं। 'सो मुल्ला जो मन सो लरै'[66] तथा 'काजी सो जो काया विचारै' की घोषणा करते हुए कबीर ने मुल्ला–काजी के वास्तविक स्वरूप को आलोकित किया।

'सब सुख पावै जासुते, सो हरि जू के दास[67] कहते हुए रैदास ने धर्म–नियंता (संत) के सर्वसुखदायी स्वरूपको मान्यता प्रदान की है। सच्चे ब्राह्मण का गुण महात्म्य प्रकट करते हुए संत–प्रवर दादू घोषणा करते हैं –

सोई जन साँचे जो सती, साधक सोई सुजान।

सोई ज्ञानी, सोई पण्डिता, जे राते राम। [68]

वे सच्चे मुल्ला के गुणों को उजागर करते हुए कहते हैं –

सोइ काजी, साईं मुल्ला, सोई मोमिन मुसलमान।

सोइ सयाने, सब भले, जे राते रहमान। [69]

गुरू नानक देव ब्रह्म को विचारने वाले तथा स्वयं के साथ सारे कुल के तारणहार को ब्राह्मण की संज्ञा प्रदान करते हैं।[70] संत रविदास काम, क्रोध, मद, लोभ का परित्याग करके धर्म कार्य करने वाले को ब्राह्मण कहते हैं।[71]

64. श्री दादू वाणी– पृ. 270
65. थोथा पण्डित थोथी बानी, थोथी हरि बिन सबै कहानी– संत रैदास, पृ 167
66. कबीर साखी सुधा – पृ. 72
67. संत रविदास – पृ. 119
68. श्री दादू वाणी – पृ. 256 / 151
69. श्री दादू वाणी –पृ. 153
69. सो ब्राहाणु जो ब्रहा बीचारै। आपि तरै सगलै कु तारै। मध्ययुगीन निर्गुण चेतना – पृ. 110.
71. काम क्रोध मद लोभ तजि – करत धरम कर कार।
    सोई ब्राहान जानिहि, कहि रविदास विचार।। संतरविदास– इन्द्रराज पृ. 126

मानव–धर्म के उपासक संतों ने तद्युगीन समाज को वास्तविक धर्म नियंता के गुणों से अवगत कराके जन्मना ब्राह्मण के स्थान पर श्रेष्ठ कर्म वाले व्यक्ति को ब्राह्मण घोषित किया इसके साथ ही मिथ्याचारी ब्राह्मणों को भी परिष्कार का एक मौका दिया।

5.4 सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी-संत और निम्न वर्ग

4.0 समाज में वर्ण व्यवस्था हेतु बनाये गये नियम लुप्त हो गये। जिससे समाज में वर्गों का जन्म हुआ तथा ऊँच–नीच की भावना का भयंकर एवं लाइलाज रोग पैर पसारने लगा।

समाज में अशुभ एवं हेय समझे जाने वाले कर्मों के कर्त्ता को निम्न वर्ग के अन्तर्गत स्थान दिया गया। निम्न वर्ग की पशु–तुल्य स्थिति को देख युगीन सजग व्यक्तित्व चुप नहीं रह पाए। इन युग प्रवर्त्तकों ने अपनी वाणी द्वारा समरसता एवं समानता की भावना का आलोक फैला सवर्ण एवं प्रबुद्ध जन को निम्न वर्ग की सामाजिक उपयोगिता का साक्षात्कार कराया।

5.4.1 सिद्ध-नाथ एवं निम्न वर्ग – सिद्ध–नाथों ने निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति को अपनाया। उन्होंने समाज में व्याप्त ऊँच–नीच के विषमता युक्त वातावरण में समानता का संदेश देकर ऊँच–नीच की असमानता की खाई को पाटने का प्रयास किया।

4.1.1 निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूतिपूर्वक उद्‌बोधन – सिद्ध सरहपाद ने दीन–हीन निम्न वर्गीय जनता के प्रति समाज को दान परोपकार की शिक्षा देकर उनके प्रति सहानुभूति दिखाई। यथा –

परऊआर णा की अऊ अत्थि णा दीअउ दण।

यहु संसारे कवण फलु वरूच्छहुहु अप्पाण। [72]

नाथों ने भी 'सब घट व्यापक एक ब्रह्म' की अवधारणा का प्रचार करके ऊँच–नीच को कृत्रिम बंधन सिद्ध कर उसे निन्दनीय बताया।

4.1.2 उद्धार का शंखनाद – सिद्ध–नाथों ने शोषक वर्ग की दुर्बलताओं को उजागर करके शोषित वर्ग को मुक्ति का आलोक दिखाया। इन युग–प्रवर्तकों ने उच्च–वर्ग द्वारा फैलाये जा रहे मिथ्याचारों, बाह्याडम्बरों का खुलासा करके अत्याचारों से आहत निम्न वर्ग के उद्धार का शंखनाद किया।

सभी में एक ब्रह्म की कल्पना करके इन्होंने ऊँच–नीच के कृत्रिम दायरों को व्यर्थ सिद्ध किया।

72. संत सुधा सार – वियोगी हरि पृ. 6 / 12

4.1.3 श्रम की महत्ता – समस्या के निवारण हेतु समस्या के मूल कारणों पर प्रहार करना आवश्यक होता है। सिद्ध–नाथों ने इसी का अनुसरण करते हुए निम्न वर्ग में श्रम की महत्ता की भावना को जाग्रत किया। समाज की यह विडम्बना रही है कि युगों से निम्न कार्यों के करने वाले को नीचा समझा जाता रहा है। नाथ–सिद्धों का युग भी इस विचारधारा से मुक्त नहीं था। अतः हमारे आलोच्य संतों ने कर्त्ता एवं उनके कर्म को ब्रह्म एवं उसके कार्य की उपमा प्रदान कर निम्न वर्ग के मन में आत्मविश्वास एवं आत्मगौरव को जगाया।

सिद्ध शांतिपाद ने अपनी चर्या में रूई धुनने के कार्य को आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान करते हुए कहा –

तुला धुणि धुणि आँसु रे आँसु। [73]

सिद्ध चर्याओं में मेहनतकश मजदूरों की चित्रावलियाँ अंकित हैं, जो खेती करते, नाव खेते, शिकार खेलते, औजार बनाते, टोकरी–चंगेरी बुनते, शराब बेचते, गोपालन करते श्रम–जीवी वर्ग को नायक के रूप में चित्रित करता है।

4.1.4 श्रेष्ठ मानव का आदर्श – निम्न वर्ग को समानता का दर्जा दिलाने हेतु उसे सिद्ध–नाथों ने सत्य, अहिंसा, दया, करूणा एवं अहिंसा आदि मानवीय–मूल्यों का पाठ पढ़ाया।

तभी तो गोरखनाथ ने अपनी काया नगरी में सत्य, संतोष, क्षमा, दान एवं भक्ति को आदरणीय स्थान प्रदान किया। यथा –

तहाँ सत्य बीबी संतोष साहिजादा षिमा भगति द्वै हाई।

आदिनाथ नाती मछिन्द्रनाथ पूता, काया नगरी गोरष बसाई। [74]

सिद्ध–नाथों ने अपनी विलक्षण बुद्धि का परिचय देते हुए समाज में मानवीय–मूल्यों की प्रतिष्ठा की। जिससे जब सभी वर्ग इन मूल्यों को अंगीकृत करेंगे तो समाज में अराजकता, साम्प्रदायिकता तथा भेद–भाव का नाश होकर साम्य–भावना का उदय होगा।

5.4.2 हिन्दी-संत एवं निम्न वर्ग – सिद्ध–नाथों द्वारा निम्न वर्ग हेतु जो समानता तथा समरसता का दीप प्रज्वलित किया था। वह मध्ययुगीन शोषण, अत्याचारों की आँधी से बुझने लगा। ऐसे में युग–प्रवर्तक संतों ने अपनी मानवतावादी कारूणिक वाणी की ओट से सर्वहितकारी दीप की रक्षा करके निम्न वर्ग में आशा के आलोक के साथ आत्म–गौरव की ऊष्मा का संचार किया।

4.2.1 शोषण का चित्रण – मध्ययुगीन संतो ने निम्न वर्ग के अन्तर्गत शूद्र, श्रमजीवी वर्ग, नारी, मुसलमान सभी की पीड़ाओं को वाणी प्रदान की है। इन संतों ने निम्न

---

73. साहित्येतिहास–सुमन राजे, पृ. 163।
74. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य – पृ. 336

वर्गीय जनता पर होने वाले शोषण–अत्याचार को केवल कहा नहीं है; वरन् इसके प्रहार से इनकी आत्मा भी लहुलुहान हुई है।

4.2.2 निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूतिपूर्वक उद्‌बोधन – निम्न वर्ग की पीड़ा मध्ययुगीन संतों के लिए पराई नहीं वरन् निजी थी। अनुभौ देंखी' पर बल देने वाले संतों ने सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक क्षेत्र से बहिष्कृत हर तरफ से पिसते निम्न वर्ग को सहानुभूति–पूर्वक गले लगा कर उन्हें सम्बल प्रदान किया। उनकी दयनीय दशा को देखकर करूण ह्रदय कबीर भी अपने आँसू नहीं रोक पाए और कह उठे –

चलती चाकी देखकर दिया कबीरा रोय,
दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय।

संतों ने निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति का परिचय देते हुए युग को समानता का पाठ पढ़ाया।

4.2.3 उद्धार का शंखनाद – समस्या का हल आँसू बहा, उसे प्रारब्ध मानने से नहीं होता है। हिन्दी–संतों ने इसी तथ्य का अनुसरण करते हुए निम्न वर्ग को शोषण–अत्याचार से मुक्त करने हेतु विद्रोह का मार्ग अपनाते हुए उद्धार का शंखनाद किया।

क्रांति का प्रथम स्तर मानवीय मन होता है। किसी भी विजय के लिए मन को जीतना आवश्यक है। एक कुशल योद्धा के समान संतों ने सर्वप्रथम निम्न वर्ग के मन में हीनता की ग्रंथि को खोलने के लिए गर्व के साथ अपने नाम और जाति का उल्लेख किया।

संतों ने जाति जुलाहा नाम कबीरा[75], कह रैदास खलास चमारा[76] किसकौ पूजै गरीब पिंजारा[77] आदि द्वारा अपनी जाति का उल्लेख करके जातीय आधार पर हीन–भाव से निम्न वर्ग की मुक्ति का आह्वान किया।

संतों ने समाज में निरन्तर फैलते ऊँच–नीच भावों (असमानता) के विष को साम्य भावना के मंत्रोच्चारण द्वारा निष्क्रिय करने का प्रयास किया है। यथा –

माटी एक सकल संसारा बहुविधि भांडे घड़ै कुम्भारा। [78]

गुरू नानक देव सभी को उच्च मानते हैं; क्योंकि सभी को एक ब्रह्य ने बनाया है। यथा –

---

75. क. ग्र. – पृ. 181
76. आदि गुरू ग्रंथ साहिब – – गउडी बाणी रविदास जी शब्द 3, पृ 345
77. दादू दयाल ग्रंथावली – पृ. 455
78. क. ग्र. – पृ. 181 / 13.

सभ को ऊँचा आखिए, नीच ना दीसै कोय।

इकजै भाँडे साजिऐ, इक चानण तेह लोय।[79]

संत–समाज में व्याप्त ऊँच–नीच को ब्राह्मणों द्वारा निर्मित मानते हैं। तभी वे समानता के ऐसे–ऐसे तर्क प्रस्तुत करते हैं, जिन पर अविश्वास का कोई कारण ही नजर नहीं आता और संतों के यही तर्क अशक्त (निम्न वर्ग) जनों की शक्ति बने और उनमें अपार साहस का जन्म हुआ।

'मै कहता सुरजावनहारी, तू कहता अरूझाई रे' का शंखनाद कर संत धर्म–नियंताओं के द्वारा निर्मित कंटक भरे पथ की उपेक्षा करके निम्न वर्ग को सरल–सौम्य मार्ग दिखाते हैं।

संतों ने मध्ययुग में हिन्दू–मुस्लिम एकता हेतु भाई–भाई का नारा लगाया।

दोनों भाई हाथ पग, दोनो भाई कान

दोनो भाई नैन है, हिन्दू मुसलमान।[80]

संतों ने पराधीनता को पाप सिद्ध करके निम्न वर्ण को उच्च वर्ग की पराधीनता से आजाद होने की प्रेरणा दी।[81]

4.2.4 श्रम की महत्ता – मध्ययुगीन हिन्दी संत अधिकांशतः निर्धन व उपेक्षित जाति में उत्पन्न हुए; किन्तु स्वावलम्बी, श्रमजीवी संस्कारों की शुचिता के कारण वे भरपूर आत्म–विश्वास एवं आत्म–बल से परिपूर्ण थे।

इन संतों ने इसी आत्म–विश्वास को निम्न वर्ग में जगाने का प्रयास किया। उन्होंने निम्न श्रम जीवी वर्ग एवं उनके व्यवसाय की सामाजिक एवं आर्थिक उपयोगिता से समाज का साक्षात्कार कराया। उन्होंने स्पष्ट किया कि ये छोटे–छोटे व्यवसाय तो व्यवस्था को गति प्रदान करने वाले हैं।

सिद्ध–नाथों की परिपाटी का अनुसरण करते हुए संतों ने आध्यात्मिक विचारों का व्यावसायिक क्रियाओं से नाता जोड़ कर कर्मठ व्यवसाय की श्रम क्रियाओं द्वारा साधना–पद्धत्ति को समझाया। जुलाहे के सूत कातते वक्त एकाग्रता की तुलना साधना की एकाग्रता से करते हुए कबीर कहते हैं –

नान्हाँ काती, चित्त दे महंगे मोलि बिकाय।

गाहक राजा राम है और न नेड़ा आए।[82]

---

79. व्यास, बुद्ध और हिन्दी संत – पृ. 129
80. श्री दादू वाणी – सम्पादकीय निवेदन से।
81. पराधीनता पाप है, जान लेहु रे मीत।
    रविदास प्राधीन सो, कौन करै है पीत। – रविदास दर्शन – पृ. 190
82. क. ग्र. – पृ. 27, चितावणी कौ अंग – 12/58

'स्रम कउ ईसर जानि कै, जउ पूजहिदिन रैन'[83] द्वारा रैदास श्रम को ईश्वर मान उसी की आराधना का उपदेश देते हैं। संत–प्रवर दादू भी इसी का अनुसरण करते हुए 'दादूरोजी राम है, राजिक रिजक हमार[84] द्वारा श्रम का महत्त्व बताते हैं।

सतों ने श्रम की प्रतिष्ठा करके ईमानदारी पूर्वक कमाई करने का उपदेश सारे समाज को दिया है। संतों ने 'कर्म एवं भजन का संदेश दिया –

जिव्हा से औकार भज हत्यन सौं कर कार।

राम मिलहि घर आइकर, कहि रविदास चमार। [85]

संतों ने श्रम शील मानव को श्रेष्ठ घोषित करते हुए उसके कार्यो को पूज्य बना दिया है।

4.2.5 श्रेष्ठ मानव का आदर्श – हिन्दी–संतों ने विषमता, शोषण–अन्याय के युग में निम्न वर्ग को मानवीय–मूल्यों को अपनाने का संदेश दिया। उन्होंने अपनी वाणी द्वारा प्रेम, सत्य, क्षमा, दया, अहिंसा, संतोष, बंधुत्व, आदि जीवन–मूल्यों द्वारा समाज की उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया।

सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप'[86] के नारे संतों ने लगाये।

संत इस सत्य से बेखबर नहीं थे कि समाज में व्याप्त असमानता का कारण उच्च वर्ग की असीमित महत्त्वाकांक्षा थी अतः वे समाज के सभी लोगों को असीमित मनोरथों के परित्याग[87] के साथ संतोष धन को अंगीकृत करने का सुझाव देते हैं।

सारांशतः हिन्दी संतों ने निम्न वर्गीय दुःखी जनों को अपना कंठाहार बनाया। समानता के तर्क प्रस्तुत कर समाज में समानता का शंखनाद किया। उन्होंने श्रम का महत्व बताकर निम्न वर्ग में सुप्त आत्मगौरव एवं आत्मविश्वास को अपनी वाणी की झंकार से जाग्रत किया।

5.5 सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी-संत और नारी के प्रति दृष्टिकोण

5.5.0 'यत्र नार्यस्तुपूज्यन्ते रमन्ते तत्रदेवता' का उद्घोष करते हुए जहाँ एक ओर नारी को सम्मान का स्वर्णिम कगार दिया गया, वहीं उसे पाप का कुंड तथा नरक का द्वार बता पतन की मझधार में धकेला गया। नारी की यह सुदीर्घ यात्रा उसके उत्थान–पतन की साक्षी रही है। सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी संतों के नारी विषयक विचारों को जानने से पूर्व नारी–नारीत्व का आशय एवं उनकी विकास यात्रा पर थोड़ा विचार कर लेना जरूरी है।

---

83. रविदास दर्शन – पृ. 119
84. दादू दयाल ग्रंथावली – पृ. 214.
85. संत रविदास – इन्द्र राज पृ. 122.
86. संत बाणी सग्रह – प्रथम भाग – पृ. 46।
87. श्री दादू वाणी – पृ. 204/8 मन का अंग – 10

5.0.1 नारी और नारीत्व – नारी शब्द नृ धातु से निष्पन्न हुआ है –

'नृणाति नयति संसृतिम् इति नारी' अर्थात् जो संस्कृति का नयन करती है वह नारी हैं।[88]

5.0.2 ऐतिहासिक विकास यात्रा – वैदिक कालीन समाज में नारी को सम्मान का स्थान प्राप्त था। उसे शिक्षा, स्वतंत्रता, पुनर्विवाह का हक था साथही पर्दा–प्रथा व सती–प्रथा का चलन समाज में था। यह नारी का स्वर्णिम पड़ाव था। उस समय उन्हें सम्पत्ति व शासन के योग्य नहीं माना जाता था।[89]

उत्तर वैदिक काल में नारी के अधिकारों में शिथिलता आने लगी। सूत्र–महाकाव्य में नारी पूर्व की प्राचीन गरिमा से वंचित होने लगी। बौद्ध–जैन कालीन नारी के उद्धार हेतु प्रयास किए गये; किन्तु वे स्थायी नहीं रह पाये। मध्यकाल तक आते–आते वह वासना–पंक में आकण्ठ निमग्न हो गई।

इस प्रकार प्रत्येक युग में नारी–जीवन की कहानी में आँखों के आँसुओं का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा। इन आँसुओं की मात्रा में गुणात्मक वृद्धि हुई जो नारी की निरन्तर पतित होती स्थिति का प्रमाण है। हमारे आलोच्य साधकों –संतों ने नारी को माननीय सहृदयता के साथ समाज में समानता एवं सम्मान दिलाने की पुरजोर कोशिश की।

5.5.1 सिद्ध-नाथ और नारी के प्रति दृष्टिकोण

5.5.1.1 सिद्धों का नारी विषयक दृष्टिकोण – युगों से तिरस्कृत एवं अवहेलनीया नारी को सिद्धों ने अपनी साधना का आवश्यक अंग बना करके उसके अस्तित्व की रक्षा की। मण्डल चक्र और मुद्रा मैथुन में स्त्रियों का उपभोग उनके यहाँ आवश्यक अनुष्ठान माना गया था; किन्तु वे इन साधनाओं को केवल भौतिक अर्थ में ग्रहण नहीं करते थे। वे प्रज्ञा को परमार्थ रूप में नैरात्म ज्ञान मानते थे और सम्वृत्ति रूप में देह धारी नारी रूप। अतः प्रज्ञा का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए पहले नारी रूपिणी सम्वृत प्रज्ञा, देह धारिणी प्रज्ञा का उपभोग करना आवश्यक माना।[90]

वज्रतन्त्र के एक दोहे में पाँचतत्त्वों की व्याख्या करते हुए डाइणि देवी को सम्बोधित किया गया है –

खिति जल पवन हुतासन सुष्ण डाइणि देवि

सुणहु पंचमु तत्तु कहु जोण जाणइ केवि। [91]

उपर्युक्त दोहे में डाइणि (नारी) के साथ देवी शब्द संयुक्त करके सिद्धों ने नारी को आदरणीय स्वरूप प्रदान किया है।

88. कबीर वाङ्मय: खण्ड–1 रमैणी – डॉ. जयदेव सिंह, वासुदेव सिंह पृ. 1.
89. प्राचीन भारत का इतिहास और संस्कृति – श्रीवास्तव पृ. 194
90. सिद्ध–साहित्य–धर्मवीर भारती पृ. 220–21.
91. उपरिवत् – पृ. 424.

सिद्धों के चर्यापदों एवं गीतियों में नारी को विविध रूपों में चित्रित किया है। स्त्री को नायिका मानते हुए उसे स्वकीया, परकीया,सामान्या, मुग्धा, प्रौढ़ा, अभिसारिका, दूती तथा नायिका रब्ध रूपों में सिद्ध रचनाओं में चित्रित किया है।[92]

सजहयान ने नारी–शक्ति तथा पुरूष या शिव के मिलन के सिद्धांत को तो स्वीकार किया, किन्तु वह केवल साधना एवं सिद्धांत के क्षेत्र में। सभी सहजिया सिद्धोंने बराबर संयम और आचरण की शुद्धि पर जोर दिया। सिद्ध कण्हपा कहते हैं, 'नारी शक्ति दिठ धरिआ खाटे। अनहा डमरू बाजइविरनाटे।' उनकी नारी–शक्ति केवल शरीर और व्यापक रूप से विश्वव्याप्त केवल भावनात्मक नारी शक्ति थी, जिसे वे नैरात्म कहते थे और जिसको उद्‌बद्ध कर सहस्रार में या शून्य में पहुँचा देने को ही वे सिद्धि की सफलता मानते थे। इस प्रकार सिद्धों ने नारी भावना का उदात्तीकरण किया।[93]

सिद्धों ने नारी को महामुद्रा में परिकल्पित कर उनको डोम्बी, चाण्डाली, कपाली, शबरी आदि कई नाम दिये हैं।[94]

युगीन परिवेश में संकीर्णता एवं विवशता के दायरे में बंधक बनी नारी को सिद्धों ने अपनी शक्ति रूपा सहसाधिका का पद प्रदान करके उसे गौरवान्वित किया।

5.5.1.2 नाथों का नारी विषयक दृष्टिकोण – नाथों ने शक्ति को प्रबुद्ध रूप एवं अप्रबुद्ध रूपों में स्वीकार किया। उसी के अनुरूप वे नारी को भी दो रूपों में वर्णित करते हैं। प्रथम कामिनी, मायिक स्वरूप जो नाथ साधकों का मान्य नहीं तथा दूसरा उसका मातृरूप जिसके प्रति नाथ साधक अनन्य श्रद्धा भाव रखते हैं। नाथों के नारी विषयक विचारों के उदघाटन हेतु उपर्युक्त दोनों रूपों के प्रति नाथ साधकों की विचारधारा को जानलेना परमावश्यक है।

5.1.2.1 नारी का निन्दनीय स्वरूप – नाथ साधक ब्रह्मचर्य पर बल देते हैं। वे नारी को साधना–मार्ग की सबसे बड़ी बाधा मानते हैं। तभी तो नारी के भोग्य एवं मायिक दोनों स्वरूपों के परित्याग का उपदेश नाथ साधकों द्वारा प्रेषित किया गया है।

नाथों द्वारा 'चरपट कहे सुणो रे अवधू कामणि संग न कीजे[95] तथा कनक–कामिनी त्यागै दोई, सो जोगेस्वर निरभै होई[96] का उद्‌घोष नारी के भोग्य स्वरूप के प्रति उनके अनास्था भाव को ही उजागर करता है।

नाथों ने नारी को माया स्वरूप बताया है। उसे भग राकसि, कामिनी साँपिनी, अग्नि–कुंड आदि की उपमा देकर साधकों को उससे सचेत रहने की शिक्षा दी है।

92. हिन्दी काव्य में नारी – वल्लभ दास तिवारी पृ. 170–171
93. निर्गुण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि – मोतीसिंह पृ. 49.
94. सिद्ध–साहित्य –पृ. 220
95. नाथ सिद्धो की बानिया – पृ. 28.
96. गोरखबानी –बड्थ्वाल पृ. 102.

5.1.2.2 **नारी-स्तुति** – नाथ नारी के मंगलकारी स्वरूप के समक्ष नतमस्तक भी हुए हैं। नाथों के हृदय में नारी के जननी स्वरूप के प्रति अगाध श्रद्धा एवं अपार आदर की भावना निहित रही है।

पार्वती ने जब नव नाथों की परीक्षा लेने के उपदेश से गोरखनाथ को कामिनी रूप दिखाया था। उसे गोरखनाथ ने मातृरूप में स्वीकार किया था।[97] उपर्युक्त प्रसंग द्वारा नाथों ने नारी विषयक विचारों को सहज ही समझा जा सकता है।

जिन जननी संसार दिषायाता को ले सूते पोले।[98] द्वारा गुरुगोरखनाथ उन लोगों को धिक्कारते हैं जो जनी रूपा नारी को भोग्य तुल्य मानते हैं।

नाथ सम्प्रदाय की एक शाखा आई पंथ की प्रवर्तिका भगवती विमला देवी मानी गई है।[99] श्री करणी कथामृत में उल्लेख किया है कि आदि शक्ति हिंगलाज माई अवतार लेकर आवड़ा महमाई के नाम से विख्यात हुई और उन्होंने नाथ पंथ में दीक्षा ग्रहण कर कानों में मुद्रा धारण कर ली इससे वे मुद्राली कहलाती है, आई नाथ के नाम से विख्यात है जैसलमेर में आई नाथ का देवल है।[100]

इस प्रकार नाथ पंथ मे महिलाएँ साधिकाएँ बनी जिससे इस पंथ की स्त्रियों के प्रति सम्मान भावना स्पष्ट होती है। नाथों पर लगाये जाने वाले नारी तिरस्कार के आरोप उपर्युक्त उदाहरण द्वारा निरूत्तर होते हैं।

सिद्ध नाथों के नारी विषयक विचारों का विकास हमें परवर्ती संतों के काव्य में स्पष्ट दिखाई देता है।

5.5.2 हिन्दी संत और नारी विषयक दृष्टिकोण

5.2.0 सिद्ध–नाथों के नारी विषयक विचारों का पुष्पित–पल्लवित स्वरूप संत साहित्य में कुछ मौलिकता के रंग में रंगा दिखाई देता है। संत जन–ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर' वाली विचारधारा का साथ लेकर चलने वाले हैं। उन्होंने 'नीरक्षीर न्याय' के अनुसार नारी के वासनात्मक, मायिक, कामुक स्वरूप को घृणास्पद एवं त्याज्य माना हैं। साथ ही नारी के पतिव्रता, गृहिणी, अराधिका, सती एवं मातृरूप को वन्दनीय मानते हुए उसे श्रेष्ठ घोषित किया है। संतों के नारी–विषयक विचारों को निम्नांकित बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है। यथा–

97. नाथ–सम्प्रदाय – डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ. 45–46।
98. गोरखबाणी – पृ. 144.
99. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य – पृ. 28.
100. श्री करणी कथा मृत – शार्दुल सिह कविया, पृ. 133

5.5.2.1 नारी का निन्दनीय स्वरूप – हिन्दी–संतों ने जीवन का अर्थ भक्ति को माना है अतः भक्ति–मार्ग में बाधक बनने वाली सभी वस्तुएँ उनके लिए सर्वथा उपेक्षित हैं। इन बाधक तत्त्वों में एक तत्त्व नारी आकर्षण भी रहा है, क्योंकि मानव नारी आकर्षण में आबद्ध हो ईश्वर से दूर हो जाता है। अतः संत–जन नारी के वासनात्मक, मायिक स्वरूप को निन्दनीय मान नारी को संसार को डुबाने वाला नरक कुंड[101] कहते हुए लोगों को सावचेत करते हैं।

संत कबीर नारी के परित्याग का उपदेश देते हैं, क्योंकि जिसके पास वह रहती है, वह भक्ति, मुक्ति एवं ज्ञान तीनों गुणों से वंचित हो जाता है।[102] संत प्रवर दादू दयाल व्यभिचारिणी नारी के पाखण्ड पूर्ण व्यवहार को निर्देशित करते हुए कहते हैं –

दादू जग दिखलावे बावरी षोडश करे श्रृंगार।

तहँ न संवारे आपको, जहँ भीतर भरतार। [103]

'जनम बिगाडे आपना, दादू निष्फल सोई[104] द्वारा संत व्यभिचारी नारी के जीवन को ही व्यर्थ सिद्ध करते हुए उसकी निंदा करते हैं। 'नारी नाहि निहारिये करै नैन की चोट'[105] द्वारा संत बाबा मलूक दास नारी के भोग्य स्वरूप से सावधान करते हैं।

माया जीव को अपने आकर्षण में आबद्ध करके ईश्वर से विमुख करती हैं। संत जन माया को नारी रूप में चित्रित करते हुए उसे निन्दनीय घोषित करते हैं। डॉ. मुंशी राम उपर्युक्त मत की अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार करते हैं – 'कामिनी माया का मोहक रूप है। वह रूप–जाल है, जिसमें मानव मन उलझता है तथा ज्ञान, भक्ति एवं मुक्ति का विनाश होता है।[106]

संत कबीर माया का नारी रूप में सुन्दर शब्द चित्र अंकित करते हैं। जिसमें उसके वास्तविक स्वरूप का आकलन किया जा सकता है। यथा –

जग सुहागिन जगत पियारी।

सगले जीअ जंत की नारी।

खसम मरै तो नारि न रौवे, उस रखवारा अउरा होवै।

रखवारै का होइ विनास, आगै नरक इहां भोग विलास।

---

101. क. ग्र. परसनाथ तिवारी पृ. 233.
102 नारी नसावै तीनि गुन ज्यौ न पासै होइ।
भगति मुक्ति निज ग्यान मै पैसि न सकई कोई। – उपरिवत् पृ. 232.
103. श्री दादू वाणी – ना. दा. पृ. 295 भेष को अंग 14/31.
104. उपरिवत् –पृ 190, पद 49.
105. सत बानी संगह – प्रथम भाग – पृ. 98.
106. कबीर वचनामृत– डॉ. मुंशीरामशर्मा – पृ. 39.

सुहागिन गलि सैहि हार, संत कौ बिख बिगरै संसार।

करि सिंगार बहै पखिआरी, सत कौ ठिठकी फिरै बिचारी

संत भागै वा पाछै परै, गुरू कै सबदनि मारहु डरै

साकत कै यहु पिंड पराइनि, हमारी दृष्टि परै त्रिखि डाइनि।

अब हम इसका पाया भेउ, हुए क्रिपाल मिले गुरू देउ।

कहै कबीर अब बाहरि टरी, संसारी के अंचलि परी। [107]

संतों ने माया को डाकिनी[108], पापिनी[109], मोहिनी[110], विश्वासघातिनी[111], नागणी[112], कनक कामिनी[113], जहरसम[114],दामिनी, दाम फासी[115], अमल की घाटी[116], ठगिनी[117] इत्यादि सम्बोधनों द्वारा सम्बोधित करके उसे ईश्वर–भक्ति में बाधक माना है। संतों का माया से आशय नारी से है। अतः संत साहित्य में माया की निन्दा प्रतीक रूप में नारी निंदा ही है।

5.5.2.2 **नारी-स्तुति** – संत नारी के पतिव्रता, गृहिणी, आराधिका, सती एवं मातृरूप के समक्ष श्रद्धावनत रहे हैं। संत कबीर का मानना है कि पतिव्रता नारी की जो पति के प्रति निष्ठा, एकाधिकार एवं आत्म समर्पण की भावना होती है, वही भावना आत्मा की परमात्मा के प्रति होनी चाहिए। कबीर पतिव्रता के स्वरूप को निरूपित करते हुए कहते हैं –

कबीर प्रीतड़ी सौ तुझसौ, बहुगुणियाते कंत।

जो हंसि बोलौ और सौ तौ नील रंगाऊ दंत।। [118]

संत चरण दास जी ने नारी के पतिव्रता स्वरूप को वन्दनीय मानते हुए, पतिव्रता का वास्तविक अर्थ बताया है –

107. कबीर ग्रंथावली – परसनाथ तिवारी – पृ. 95.
108. क. ग्र. – श्याम सुन्दर दास पृ. 3.
109. उपरिवत् – पृ. 32
110. उपरिवत् – पृ. 33.
111. क. ग्र. – परसनाथ तिवारी पृ. 235.
112. उपरिवत् – पृ. 39.
113. भक्ति कालीन काव्य में नारी – पृ. 44–45.
114. उपरिवत्।
115. उपरिवत्।
116. सत–बानी संग्रह – प्रथम पृ. 98.
117. उपरिवत् – पृ. 206
118. कबीर साखी सार – पृ. 60.

पतिव्रता वही जानिये, आज्ञा करै न भंग

पिय अपने के रंग रतै, और न सोहै ढंग। [119]

पतिव्रता नारी प्रियतम की आज्ञाकारिणी होती है। वह अपने प्रिय के रंग में रंगी रहती है पर पुरूष उसके लिए विष का रूप है।[120] इस प्रकार संतों ने 'पतिव्रता के रूप पर वारो कोटि सरूप' की घोषणा करके नारी के पतिव्रता स्वरूप की मुक्त कंठ से प्रशंसा की हैं।

संतों ने मातृत्व को नारी के लिए वरदान माना है। संतों के हृदय में माता के सहज–निश्छल स्नेह वात्सल्य के प्रति असीम कृतज्ञता का भाव उमड़ता रहा है। संतों ने नाथों के स्वर में स्वर मिलाकर नारी के इस (मातास्वरूप) महिमामंडित स्वरूप के प्रति अगाधश्रद्धा एवं अपार आदर का भाव निरूपित किया है। संत कबीर वात्सल्य मयी माता की क्षमाशील प्रवृत्ति को चित्रित करते हुए कहते हैं –

हरि जननी मै बालक तोरा, काहे न अवगुण बकसहु मोरा[121]

उपर्युक्त पद में नारी के मातृरूप को हरिकी उपमा प्रदान करके संत कबीर ने नारी स्तुति की है।

संत दादू दयाल माता–पुत्र के सम्बंध को परमात्मा–जीव से सम्बद्ध करते हुए सुन्दर शब्द चित्र निर्मित करते हैं –

माता क्यूं वारिक तजै, सुत अपराधी होइ।

कबहु न छाँड़े जीव थे, जिनि दुख पावे सोइ।

समस्त प्राणियों की जन्मदात्री नारी का महत्त्व निरूपण करते हुए नानक देव ने स्पष्ट किया है –

भंडि जमीऐभंडि निमीऐ भण्ड मंगणवीआहु।

भंडहु होवै दोसती भंडहु चलै राहु।

भंडमुआ भंड भालीऐ भंड होवै बंधानु।

सो किउ मन्दा आरवीअहि जित जंमै राजान्। [122]

सारांशतः संत नारी जाति के विरोधी नहीं है, वरन् वे नारी के कामुक, मायिक स्वरूप को त्याज्य मानते हैं। यदि वे नारी विरोधी होते तो स्वयं को (आत्मा) नारी व ब्रह्म को (परमात्मा) पुरूष रूप में कभी निरूपित नहीं करते।

---

119. स.बा. स. प्रथम भाग – पृ. 104.
120. उपरिवत् पृ. 138.
121. कबीर– सरनाम सिंह – पृ. 793 से लिया गया।
122. आदि ग्रथ– आस दी वार म 1. श्लोक 41

अतः नारी के पतिव्रता, सती, आत्मा, माता आदि स्वरूपों को संतों ने श्रेष्ठ घोषित करके उसे अद्र्धांगिनी, मोक्षद्वार गुरूमुख, सुख फल[123], सिद्ध करते हुए नारी को महिमा–मंडित किया है।

5.6 सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी-संत और सामाजिक जीवन-मूल्य

5.6.0 सामाजिक जीवन–मूल्य भारतीय संस्कृति की निजी धरोहर हैं, जिसने भारतीय संस्कृति को विश्व के सम्मुख अनूठा एवं विशिष्ट बनाया है। भारतीय धर्म, दर्शन, समाज एवं संस्कृति सभी का आधार हमारे प्राचीन काल से चले आ रहे जीवन–मूल्य ही हैं।

0.1 जीवन-मूल्य का आशय – एक ऐसा जीवन जिसमें सिद्धांत, मर्यादा, संयम और शास्त्रीय विधान को प्रधानता दी जाए। सरल शब्दों में माता–पिता की सेवा करना, उनकी आज्ञा का पालन करना,सत्य बोलना, अपनी बात पर अटल रहना, ईमानदारी – ये सब जीवन मूल्य हैं।[124]

इस प्रकार सामाजिक जीवन–मूल्य वे नैतिक नियम हैं, जो पशुत्व के धरातल पर नीचे उतर कर पतन के गर्त में गिरी मानवता को ऊर्ध्वमुखी देवत्व के स्तर पर प्रतिष्ठित करते हैं। जिससे मानव–जीवन दिव्य एवं अलौकिक आभा से दैदीप्यमान हो उठता है। जीवन–मूल्य मानव–जीवन में सौन्दर्य प्रदान करने वाले कारक हैं।

हमारे आलोच्य संतो–साधकों ने दिग्भ्रांत तद्‌युगीन समाज को सही मार्ग दिखाने हेतु प्राचीन सांस्कृतिक विरासत रूपी जीवन–मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा कर कल्याण का सौम्य–मार्ग प्रशस्त किया।

5.6.1 सिद्ध-नाथ और सामाजिक जीवन-मूल्य – सिद्ध–नाथ साहित्य में साधना के साथ सामाजिक जीवन–मूल्यों के रूप में नैतिक स्वर भी सुनाई देते हैं। इन्होंने अपनी सर्वहितकारी वाणी द्वारा समाज में लुप्त प्राय होते जीवन–मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा करके मानव को सत्य, दया, प्रेम, बन्धुत्व इत्यादि की नैतिक राह का राही बनाया।

6.1.1 प्रेम – सिद्ध–नाथ स्नेह–शून्य समाज को अपनी वाणी द्वारा स्नेह सिक्त करते हैं। वे विद्वेष एवं कटुता से युक्त समाज को आध्यात्मिक प्रेम का पाठ पढ़ाते हैं। नाथ भक्ति को प्रेम से जोडते हैं तथा प्रेम–युक्त वन्दना से अनंत ज्योति के दर्शन करते हैं। यथा –

---

123. लोक वेद गुण गिआनविच, अरा सरीरी मोख दुआरी।
गुरू मुख, सुखफल निहचउ नारी। – आदि–ग्रंथ – आसा. म. 1 पृ. 417.

124. कल्याण पत्रिका – पृ. 742 वर्ष 1995 संख्या –8.

सिध साधने वंदना, निति प्रति करेजो संत।

प्रेम कहे सहजरी, दरसे जोति अनंत। [125]

6.1.2 **सत्य** – 'सुमरिणं सत सुमरण'[126], द्वारा नाथ असत्य का त्याग कर सत्य को ग्रहण करने का उपदेश देते हैं।

6.1.3 **अहिंसा** – सब घट व्यापक एक ब्रह्म, काहू को जिन मारी[127] की घोषणा करके नाथ भरथरी हिंसा को निन्दनीय सिद्ध करके समाज को अहिंसा का मार्ग दिखाते हैं।

6.1.4 **दान-परोपकार** – सिद्ध दान–परोपकार का उपदेश देते हैं। यथा – परऊआर णा की अऊ अत्थि णा दीअउ दाणा।[128] 'जोग का मूल है दया दान'[129] द्वारा गोरखनाथ दया, दान को ब्रह्म ज्ञान के समान अनमोल मान, दया विहीन, लोभवृत्ति की शिकार जनता को दया दान का संदेश देकर धर्म का मार्ग दिखाते हैं।

6.1.5 **शील, संतोष एवं सादगी** – सतशील संतोषधारण[130] का आह्वान करके नाथ त्रिरत्नों का आलोक फैला समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं विषमता के तिमिर का नाश करते हैं।

6.1.6 **शौच** – अन्तः करण की शुद्धि को शौच की संज्ञा दी गई है। सिद्धनाथ अभ्यान्तर की स्वच्छता के प्रबल समर्थक थे। तभी तो देह को तीर्थ घोषित करते हुए सिद्धों ने कहा है –

हउं सुण्ण जगु सुण्ण तिहुअण सुण्ण।

णिम्मल सहजेशा पाप णा पुण्ण। [131]

नाथ भी मन, वचन, कर्म की पवित्रता में आस्था रखते हैं, तभी तो बाह्याचारों के प्रति खण्डनात्मक दृष्टिकोण को अपनाते हुए कहते हैं –

उत्तरखंड जाइबा सुबिफल खाइबा, ब्रह्म अगनि पहरिबा चीर,

नीझर झरणै अमृत पीया, यूं मन हूवा थीर। [132]

---

125. सिद्ध–नाथों की बानियाँ – पृ. 5.
126. उपरिवत् – पृ. 6.
127. उपरिवत् – पृ. 112.
128. संत सुधा सार – पृ. 6/12
129. गोरखबानी – पृ. 126.
130. सिद्ध–नाथों की बानिया – पृ. 6.
131. सिद्ध–साहित्य – पृ. 266.
132. सबदी – पृ. 19

6.1.7 समता एवं बंधुत्त्व – सिद्ध–नाथ समाज में व्याप्त वैमनस्य को पूरी तरह खारिज करते हैं। सिद्ध कहते हैं कि समरस्त सहज अवस्था में ब्राह्मण, शूद्र में कोई भेद नहीं रहता।[133] ऐसा कहकर वे समाज में समता एवं बंधुत्व की नींव रखते हैं।

'एही राजा राम आछैसर्वे अंग बासा' द्वारा नाथ जीव एवं ब्रह्म में अद्वैत दर्शन करते हुए जीव को ब्रह्म का अंश घोषित करते हैं।

सिद्ध–नाथों ने समता एवं बंधुत्व का शंखनाद करके 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की पावन परम्परा की श्री वृद्धि की।

5.6.2 हिन्दी संत और सामाजिक जीवन-मूल्य – समाज के अभ्युत्थान एवं चतुर्दिक विकास हेतु हिन्दी–संतों ने अपनी कल्याणकारी वाणी से सामाजिक जीवन–मूल्यों का उपदेश देते हुए व्यक्ति एवं समाज के जीवन को उन्नत एवं परिष्कृत बनाया।

6.2.1 सत्य – हिन्दी संतों ने आध्यात्मिक परिधि में सत्य को ब्रह्म स्वरूप बना दिया है। यथा–

एक ओंकार सतिनाम। (आदि ग्रंथ, मूल मंत्र, जपुश्री)

संत कबीर सत्य को अजर–अमर मान 'साँचे स्राप न लागई, साँचे काल न खाय[134] का उद्‌घोष करके युगीन जनता को सत्य के मार्ग पर अडिग रहने का उपदेश देते हैं। सत्य को महिमा–मण्डित कर 'चाले साँच संवारे बाट,तिनको खुले बहिश्त के पाट[135] की घोषणा करके संत–प्रवर दादू दयाल सत्य मार्ग के पथिक के लिए स्वर्ग का द्वार खोल देते हैं।

6.2.2 अहिंसा – हिन्दी–संतों ने हिंसा–वृत्ति के रक्त रंजित कदमों को धार्मिक सामाजिक क्षेत्र में बढ़ते देख अहिंसा को परमधर्म स्वीकार कर हिंसा पर प्रतिबंध लगाया।

तद्युगीन समाज में धर्म के नाम पर बलि की प्रथा (कुरीति) विकराल रूप धारण करने लगी थी ऐसे में सर्वत्र एक आत्मतत्त्व के दर्शन करने वाले संत जब भला बलि के नाम से जीव–हत्या कैसे सहते। अतः संतों ने इस कुकृत्य को अधार्मिक घोषित कर घोर निन्दनीय ठहराया। संत मलूकदास सभी प्राणियों में एक ब्रह्म का ऐलान करके तद्युगीन हिंसा–वृत्ति का प्रतिकार करते हैं।[136]

---

133. तत्वे समरस सहजे वज्जइणउ सुदशा ब्रम्हणा। – संत सुधा सार – पृ 5/9.

134. संत बानी संग्रह – पृ. 46.

135. श्री दादू वाणी – पृ. 265.

136. कुंजर चींटी पसू नर, सबमें साहिब एक।
 काटै गला खुदाय का, करै सूरमा लेख। – सतबानी संगह – प्रथम भाग – पृ 98

धर्म के नाम पर हिंसा को बढ़ावा देने वाले को कबीरं ने कसाई की उपमा प्रदान की –

धरम कथै जहँ, जीव बधै तहं अकरम करै मोरे भाई।

जो तोहरा को ब्राह्मण कहिए, तो काको कहिए कसाई। [137]

संत कबीर की दृष्टि में दुर्बल–गरीब को व्यर्थ सताना भी हिंसा का ही एक रूप है। उस दुर्बल की आह से सर्व सक्षम सर्व शक्तिशाली अत्याचारी भी भस्म हो जाता है।[138] ऐसा कहकर संत कबीर युगीन हिंसा वृत्ति को अपनाने वाले शोषकों को झकझोरते हैं।

संत प्रवर दादू दयाल जीव–हत्या करने वाले को नरकगामी[139] सिद्ध करते हैं। हिन्दी–संत पाती–पाती जीव में विश्वास करने वाले थे। अतः पेड़–पौधो का व्यर्थ तोड़ा जाना भी उन्हें स्वीकार नहीं था।

बकरी पाती खाती, ताकी काढी खाल

जे नर बकरी को खात है तिनकौ कौन हवाल [140]

द्वारा कबीर हिंसक वृत्ति वालों को सचेत करते हैं। संत जन 'सब जीव साई के प्यारे' कहकर युगीन दिग्भ्रमित मानव को 'जिओं और जीने दो' का पाठ पढ़ाते हैं।

6.2.3 क्षमा – हिन्दी–संत हिंसा का उत्तर हिंसा से दिय जाने के दुष्परिणामों से अवगत थे अतः वे सामान्य जन को क्षमा की मरहम प्रदान करते हैं। वे जानते हैं कि क्षमा से होकर ही वह मार्ग निकलता है जो प्रति–हिंसा से दग्ध मानवीय घावों को शीतलता दिला सकता हैं।

संत जन पौराणिक उदाहरणों द्वारा क्षमाशील को सर्वश्रेष्ठ घोषित करते हैं। यथा –

छिमा बड़न को चाहिए, छोटन को उतपात।

कहा विस्नु को घटि गयों, जो भृगुभारी लात। [141]

संतों ने जहाँ छिमातहँ आप' द्वारा ईश्वर एवं क्षमा में घनिष्ठता सिद्ध की हैं।

6.2.4 **दया-दान** – 'जहाँ दया तहाँ धर्म है' का नारा लगाकर संतों ने दया को धर्म का मूल घोषित किया है। ऐसा करके संतों ने दया को अपनाने की सीख दी है।

---

137. कबीर बाड्.मयः खण्ड 2 सबद पृ. 205.
138. दुर्बल को न सताइये जा की मोटी हाय।
    बिन जीवकी स्वाँस से लोह भस्म है जाय। – संत बानी संगह – पृ. 42
139. श्री दादू वाणी – 261.
140. क. ग्र. – परि. सा. अंग – 146 / 18.
141. संत बाणी सग्रह – प्रथम भाग पृ. 47.

समाज में आर्थिक असमानता को देख संतों ने तद्युगीन जनता को दान देने की प्रेरणा दी है। उन्होंने लोगों को बताया कि सागर में से चिड़िया द्वारा चोंचभर पानी लेने से सागर का कुछ नहीं बिगड़ता चिड़िया की प्यास जरूर बुझ जाती है[142] अतः लोगों को सागर के समान उदार ह्रदय बनना चाहिए।

6.2.5 शील, संतोष एवं सादगी – हिन्दी–संतों ने शील, संतोष एवं सादगी की त्रिवेणी प्रवाहित कर तद्युगीन समाज में व्याप्त कालुष्य के प्रक्षालन का सार्थक प्रयास किया।

'सीलवंत सबते बड़ा, सर्वरतन की खानी'[143] द्वारा शीलवान को महिमामण्डित किया हैं। संत रैदास ने भी सत्य, संतोष एवं सदाचार को जीवन का आधार[144] घोषित किया है। संत चरणदास क्षमा, शील, संतोष के सुमिरन को मुक्ति दायी घोषित करते हैं।[145]

जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान[146] का ऐलान करते हुए समाज में फैलती वैभव–विलास की लालसा पर लगाम कस के, संत मनुष्य को रूखा सूखा खाइ कै ठंडा पानी पीव, देखी विरानी चूपड़ी मत ललचावै जीव[147] द्वारा सादगी की शिक्षा देते हैं।

6.2.6 प्रेम – जा मारग साँई मिलै प्रेम कहावै सोय'[148] की विचारधारा वाले हिन्दी–संत प्रेम को ईश्वर तक पहुँचने वाला मार्ग बताते हैं।

मध्यकालीन हिन्दीसंत समाज से चोटखाए हुए हैं, लेकिन ये समाज को चोट पहुँचाने के बजाय चोट खाए हुए दिलों पर प्रेम का मरहम लगाने में विश्वास करते हैं। जिस जाति व्यवस्था ने इन्हें छला–छीला, कुरीतियों ने आहत किया, सवर्णो की घृणा उन्हें जमाने से तिलमिला रही थी; परन्तु ये घृणा का उत्तर घृणा से नहीं देते; वरन् घृणा से बटे समाज व मानव–ह्रदयों को प्रेम का आसरा देते हैं। तभी तो कबीर प्रेम–विहीन ह्रदय को श्मशान कहने में भी तनिक संकोच नहीं करते –

....

142. चिड़ी चुंच भर ले गई – नीर निघटनहि जाइ।
ऐसा बासण ना किया, सब दरिया मांहि समाई। – श्री दादू वाणी – पृ. 154.

143. संत बानी संग्रह – पृ. 47.

144. रविदास दर्शन – पृ. 161.

145. दया नम्रता दीनता, छिमा, शील, संतोष।
इन कूँ लै सुमिरन करै, निस्चै पावै मोक्ष। – स. बा. सं. प्रथम भाग – पृ. 140.

146. संत बानी संग्रह – पृ. 48।

147. उपरिवत् – पृ. 57।

148. कबीर बाणी ज्ञानामृत – सं. प्रियदर्शी राजीव, मधु सूदन पृ. 118/15।

जा घट प्रेम न संचरै सौ घट जानु मसान। [149]

सत–प्रवर दादूदयाल प्रेम को सभी मिथ्या आवरणों को जला देने वाला कारक मानते हैं ।

दादू इसक अलाह का जे कबहूँ प्रकटै आइ।

(तौ) तन मन दिल अरवाह का, सब परिदा जल जाय। [150]

'बरसा बादल प्रेम का भीग गया सब अंग' का आह्वान कर संत प्रेम की वर्षा में सम्पूर्ण मानवता को पावन बना देते हैं। संतों का प्रेम संकीर्ण दायरों में आबद्ध लोगों को बाहर निकाल दूसरो से जुड़ने का माध्यम है। यह गैर बराबरी के विरूद्ध बराबरी लाने का उपक्रम है।

6.2.7 **शौच** – हिन्दी–संत बाहरी दिखावे की अवहेलना करते हुए आन्तरिक स्वच्छता एवं पावनता को महत्वपूर्ण मानते हैं। संत रैदास अभ्यान्तर की पावनता के बिना सारे धर्माडम्बर को व्यर्थ मानते हुए धर्माडम्बर करने वाले को नरकवास की सजा सुनाते हैं –

अन्तरगति राँचे नहिं, बाहर करै उजास।

ते नर जमपुर जाहिंगे, भाषै संत रैदास। [151]

6.2.8 **श्रमशीलता** – 'बलिहारी इस जाति कौ'[152] की घोषणा करके संत जन श्रमजीवी वर्ग पर न्यौछावर हुए हैं। उदिम में आनन्द[153] की अनुभूति करने वाले संत जन श्रमनिष्ठ कहार के चरणों को छूना चाहते हैं।[154] इस प्रकार श्रम का महत्त्व निरूपित करके हिन्दी–संत हमारे प्राचीन सांस्कृतिक जीवन–मूल्य की पुनः प्रतिष्ठा करते हैं।

6.2.9 **समता और विश्वबंधुत्त्व** – 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के समर्थक हिन्दी–संतों ने समाज में अनेकत्व को विराम देने के लिए समदृष्टि का उपदेश दिया। यथा –

एक जननी जन्याँ संसारा, कौन ज्ञान थै भये नियारा। [155]

---

149. कबीर बाणी ज्ञानामृत– पृ. 122/40।
150. संतबानी संग्रह – पृ. 79।
151. सत रैदास – (स. योगेन्द्र सिंह) पृ. 181/74.
152. क. ग्र. – पृ. 258.
153. श्री दादू चतु: शताब्दी : निबंध माला।
154. पइयाँ तौरी लागौ कहरवा – कबीर पृ. 274 (द्विवेदी जी)
155. क.ग्र. – पृ. 185 रमैणी।

तद्युगीन समाज में व्याप्त हिन्दु–मुसलमान के भेद को नकारते हुए संत दादू ने 'सब घट एकै आत्मा, क्या हिन्दू मुसलमान' का उदघोष किया। ऐसा करके संतों ने साम्प्रदायिक कटुता का विरोध करते हुए अपनी अमृत–वाणी द्वारा विश्व–बंधुत्व की संजीवनी–धारा प्रवाहित की।

निष्कर्षतः हिन्दी–संतों ने अपने पूर्ववर्ती प्रभावों को आत्मसात किया। उन्होंने प्राचीन जीवन–मूल्यों पर छायी विषमता की गर्द को अपनी वाणी की बूंदों द्वारा बहा, उनके कल्याणकारी स्वरूप को समाज में प्रतिष्ठित करते हुए दिग्भ्रांत समाज को सौम्यमार्ग दिखाया।

षष्ठ-अध्याय

सिद्ध-नाथ और सन्तों का शिल्प-विधान

6.0 मानव–शरीर के बाह्यान्तर दो पक्षों के अनुरूप ही काव्य के भी दो पक्ष होते हैं –

1. प्रथम हृदय–पक्ष, जिसे भाव–पक्ष अथवा अनुभूतिपक्ष कहते हैं।
2. द्वितीय सौन्दर्य पक्ष, जिसे कलापक्ष, शिल्पपक्ष अथवा अभिव्यक्ति पक्ष कहते हैं।

चिन्तन, भावना, अभिव्यक्ति एवं कल्पना ये चारों तत्त्व काव्य निर्माण में सहायक हैं और इन्हीं के आधार पर काव्य–सौष्ठव का अध्ययन दो पक्षों के अन्तर्गत किया जा सकता है। यथा–

1. अनुभूति–पक्ष (भाव–पक्ष)
2. अभिव्यक्ति–पक्ष (शिल्प–विधान)

अनुभूति काव्य की जननी है तथा अभिव्यक्ति उसे सुसम्बद्ध एवं सुसज्जित करने वाली शक्ति है। प्रस्तुत अध्याय में सिद्धनाथ एवं संत साहित्य के अभिव्यवित्त–पक्ष (शिल्प–विधान) को प्रकाशित करना हमारा उद्देश्य है।

6.0.1 शिल्प-विधान

शिल्प काव्य के कथ्य को आकार देने वाली प्रविधि है। कोई भी रचना पहले कवि के मानस में आकार लेती है। वह कवि की अनुभूति है। इसे भाषा, छंद, प्रतीक, तुक, लय इत्यादि के द्वारा बाहर लाने की प्रक्रिया ही अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ति–पक्ष भावों के सौन्दर्य को निखार देता है। भाषा, काव्य–रूप, अलंकार, छन्द, प्रतीक इत्यादि काव्य के बाह्य सौन्दर्य के प्रमुख उपादान हैं।

सिद्ध–नाथ एवं संतों के काव्य में अनुभूति की प्रधानता है; परन्तु अभिव्यक्ति का सौन्दर्य भी कहीं कमजोर नहीं हुआ है। भाषा, काव्यरूप, प्रतीक, अलंकार, छंद आदि तत्वों के आधार पर हम सिद्ध–नाथ एवं संतों के शिल्प विधान का विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

6.1 सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी-संतों का भाषिक दृष्टिकोण

आलोच्य साधकों एवं संतों के काव्य में उनके भाषिक दृष्टिकोण को समझने से पूर्व भाषा का सामान्य परिचय प्राप्त कर लेना अपेक्षित होगा।

6.1.1 भाषा – भाषा काव्य का शरीर है। भाषा में ही काव्य–सौन्दर्य निहित होता है। यह कहावत भी प्रसिद्ध है कि – 'सुन्दर शरीर में स्वस्थ और सुन्दर मन निवास करता है।' शरीर जिस प्रकार प्रथम प्रभावी होता है उसी प्रकार भाषा भी काव्याकर्षण की प्रथम सीढ़ी है। इसलिए भाषा अभिव्यक्ति का महत्त्वपूर्ण साधन है। भाषा के माध्यम से ही हम परस्पर विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। जिन ध्वनियों के द्वारा मनुष्य परस्पर विचार–विनिमय करता है, उनको समष्टि रूप में भाषा कहते हैं।[1]

काव्य वैभव को अक्षुण्ण रखने हेतु काव्य–भाषा में कुछ विशिष्ट बातों का समावेश होना जरूरी है। वे हैं– प्रांजलता, सजीवता, प्रौढ़ता, रोचकता, मार्मिकता, गम्भीरता, सरलता, संक्षिप्तता, प्रेरणादायकता, चमत्कारिता और प्रभावोत्पादकता। एक सजग कलाकार सशक्त शब्दों का उपयोग करके भाषा को पूर्ण सुगठित, आकर्षक, सरल व सुन्दर बना देता है।

भाषा के सामान्य परिचय के उपरांत हम सिद्ध–नाथ एवं संतों के भाषिक दृष्टिकोण पर विस्तार से विचार करेंगे।

6.1.2 सिद्ध-नाथ : भाषिक दृष्टिकोण – सिद्ध–नाथों की भाषा का निर्धारण एक विवादितविषय रहा है। सिद्धों की भाषा को महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री एवं विनय तोष भट्टाचार्य पुरानी बंगला, आर्तवल्लभ महन्ती ने पुरानी उडिया, डॉ वाणी कान्त ककाती ने असमी, डॉ. काशी प्रसाद व राहुल जी ने पुरानी हिन्दी माना है।[2]

उपर्युक्त मतों की विविधता से स्पष्ट हो जाता है कि सिद्ध साहित्य की भाषा सदैव एक सी नहीं रही है। सिद्ध साहित्य का निर्धारण 9 से 13वी शती तक किया गया है। अतः लम्बी समय सीमा के कारण इनमें भाषागत विषमता दिखाई देती है। उस समय की शौरसेनी अपभ्रंश तथा स्थानीय बोलियों की पृष्ठभूमि को ध्यान में रख कर सिद्धों की भाषा का निर्धारण किया जा सकता है।

नाथों की भाषा में प्राकृत अथवा अपभ्रंश के शब्दों के साथ–साथ अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का समिश्रण भी हुआ। हमारे आलोच्य साधकों ने लोकरूचि के अनुकूल लोक प्रचलित भाषा को काव्य हेतु अपनाया। सिद्ध–नाथों के भाषिक दृष्टिकोण को समझने के लिए इनके काव्य में निहित भाषा रूप शब्द–भण्डार, काव्य–गुण, कहावते–मुहावरे इत्यादि को उजागर करना अपेक्षित होगा।

---

1 सामान्य भाषा विज्ञान– डॉ. बाबूराम सक्सेना पृ. 5

2 सिद्ध साहित्य– पृ 286–87

6.1.2.1 भाषा-रूप – 'रमते राम सकल जग माही' के सिद्धांत को लेकर चलने वाले सिद्धनाथों के काव्य में विविध भाषाओं का प्रयोग हुआ है। इनकी भाषा में तद्युगीन प्रचलित भाषाओं, विभाषाओं एवं बोलियों का मधुर मिश्रण दिखाई देता है। यथा –

2.1.1 पंजाबी

लाडइ[3]

गगन सिषर में बालक बोले तांका नाँव धरहुंगे कैसा।[4]

हिन्दू आषे राम कौं, मुसलमान षुदाइ।[5]

2.1.2 उड़िया

नगर बाहिर रे डोम्बि तोहोरि कुडिया।[6]

2.1.3 मराठी

गुर कीजे गहिला निगुरा न रहिला।

गुर बिन ग्यांन न पायला रे भाईला। (गोरखबानी पृ. 128)

2.1.4 राजस्थानी

मांहरा रे वैरागी जोगी।

मूलम हारो म्हारा भाई।[7]

2.1.5 ब्रज-अवधी

निहरे नखे भए निरदंद, परच जोगी परमानन्द

धन जोबन की करे न आस, चित्त न राख कामनि पास।[8]

फुर (अवधि) (दोहाकोश पृ. 62)

2.1.6 अरबी-फारसी

हिन्दू ध्यावै देहुरा, मुसलमान मसीत। (अरबी शब्द)

जोगी ध्यावै परमपद, जहाँ देहुरा न मसीत।[9]

3. दोहा कोश– राहुल जी पृ 62
4. गोरखबानी– सबदी – शार्दूल सिंहकविया पृ. 1/1
5. उपरिवत् –पृ. 20/69
6. सिद्ध साहित्य– पृ. 291
7. नाथ सम्प्रदाय और साहित्य– पृ. 281 से लिया गया।
8. उपरिवत्
9. गोरखबानी सबदी – शार्दूल सिह जी पृ.19

तथा

काजी मुल्ला कुराण लगाया ब्रह्म लगाया बेद।[10]

साराशंतः सिद्ध–नाथों की भाषा में पंजाबी, मराठी, उड़िया, उर्दू, फारसी, बंगाली, राजस्थानी आदि भाषाओं का प्रभाव पड़ा है। सार रूप से इनकी भाषा को पुरानी हिन्दी, संधा भाषा अथवा सधुक्कड़ी भाषा की संज्ञा दी जा सकती है। जिसका विकसित रूप परवर्ती संतों की रचनाओं में हुआ है।

6.1.2.2 **काव्य-गुण** – सिद्ध–नाथ साहित्य में ओज, प्रसाद, माधुर्य गुणों की सुन्दर छटा दृष्टिगोचर हुई है। यथा –

2.2.1 **माधुर्य गुण** –

तिअड़डा चापी जोइणि दे अंकवाली।

कमल कुलिश घाण्ट करहुँ विआली।

जोइनि तंइ बिनु खणहि न जीवमि।

तो मुह चुम्बी कमल रत पीबमि। [11]

नाथों की रचनाओं में योगी द्वारा साधना में लीन होकर परमपद में समा जाने की दशा में प्रिय और प्रियतमा के मिलन की अवस्था उपस्थित हो जाती है दोनों एकाकार हो गए हैं। इसमें माधुर्य गुण की झलक दिखाई देती है। यथा–

एक में अनंत में एकै, एकैअनंत उपाया।

अंतरि एक सों परचा हुआ, तब अनंत एक में समाया। (गोरखबानी– पृ.103)

2.2.2 **ओजगुण** –

कहणि सुहेली रहणि दुहेली, कहणि रहणिबिन थोथी।

पढ़या गुण्या बिलाई षाया, पंडित के हाथि रह गई पोथी। [12]

2.2.3 **प्रसाद गुण** –

तुझ परि वारी हो अणघड़िया देवा।

घड़ी मूरति कूँ सब कोई सेवे, ताहि न जाणे भैवा।(गोरखबानी–पृ. 154)

6.1.2.3 **शब्द-शक्ति** – सिद्ध–नाथों के साहित्य में शब्द शक्तियें का सुन्दर निरूपण हुआ है। यथा –

---

10. उपरिवत् – पृ. 26
11. साहित्य और समीक्षा पृ. 160
12. गोरखबानी सबदी – शार्दूल सिंह जी पृ.32/119

2.3.1 **अभिधा** –

गोरख नाथ ने सरल भाषा द्वारा विकारों का त्याग कर चित्तवृत्ति को सुदृढ़ रखने का उपदेश दिया है। यथा –

हँसिबा षेलिबा रहिबा रंग, काम क्रोध न करिबा संग।

हँसिबा षेलिबा गाइबा गीत, दिढ़ करि राषि अपनां चीत। [13]

2.3.2 **लक्षणा** –

जहाँ साधारण अर्थ में बाधा पड़े और किसी प्रचलित रूढ़ि अथवा विशेष प्रयोजन के आधार पर अर्थ लगाया जावे वहाँ लक्षणा शब्द शक्ति होती है।[14] यथा –

अवधू मन चंगा तो कठौती में गंगा (सबदी–शार्दूलसिंह पृ. 40)

2.3.3 **व्यंजना** –

जहाँ पर वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ के अतिरिक्त उन्हीं शब्दों से और अर्थ निकलता हो वहाँ व्यंग्यार्थ होता है।[15] यथा –

बद्धो धावइ दस दिसाहि, मुक्को णिच्चल ट्ठअ। (दोहा कोश – पृ. 6)

प्रस्तुत दोहे मे सरह कहना चाहते हैं कि चित्त विशुद्ध होता है, पर सांसारिक बंधनों में वासना के कारण दौड़ता रहता है व वासना आदि से मुक्त होने पर स्थिर हो जाता है।

6.1.2.4 **मुहावरे-लोकोक्तियाँ** – सिद्ध–नाथ साहित्य में यत्र–तत्र मुहावरे–लोकोक्तियों का प्रयोग परिलक्षित होता है। जहाँ भी वे प्रयुक्त हुए हैं, वहाँ शब्द–अर्थ गांभीर्य के साथ ही साथ भाषा में एक विशिष्ट आकर्षण एवं लोच दिखाई देती है। कतिपय उदाहरण अवलोकनीय हैं–

2.4.1 **मुहावरे** –

– उत्पन्न उत्पाद नहिं, लोक न जानै सार (दोहा कोश–राहुल जी पृ. 25)

– *हाथेर कांकण मा लेउ रे दापणा।* (सहज सिद्ध, साधना और सर्जना, पृ. 113)

– पावडिया पग फिसलै अवधू लोहै छीजतं काया। (गो. सबदी– शार्दूलसिंह पृ. 12/39)

– सत नावांवत सत गुर मिलिया। (उपरिवत् पृ 23)

13. उपरिवत्–पृ 3/7
14. साहित्य और समीक्षा–पृ. 116
15. साहित्य और समीक्षा–पृ.117

2.4.2 लोकोक्तियाँ

– घटि घटि गोरष कहै कहांणी, कांचै भांडै रहे न पाणी। (उपरिवत् – पृ. 11)

– अपणी करणी उतरबा पारं। (उपरिवत् – पृ. 17)

– यहु जग है काँटे की बाड़ी, देषि देषि पग धरणां। (उपरिवत् पृ. 20)

– अवधू मन चंगा तो कठौती में गंगा। (उपरिवत् पृ. 40)

– काची अगनी नीर न सीजै। (उपरिवत् पृ. 41)

6.1.2.5 **विशिष्टार्थी शब्द प्रयोग–** सिद्ध–नाथों ने अपने साहित्य में कुछ विशिष्ट शब्दों को अपनाया है। यथा –

2.5.1 **शून्य** – सिद्धों ने शून्य को तथता रूप माना है। इन्होंने अपनी प्रज्ञोपाय योग प्रणाली में इसी शून्य को नैरात्मा बालिका, प्रज्ञा या महामुद्रा रूप में ग्रहण किया है। साथ ही महासुख चक्र में इस शून्यता की स्थिति मानी है। सिद्धों ने शून्य को महाकरूणा के साथ संग्रथित किया है। सरहपाद ने साधकों को चेताया है कि जो करूणा को छोड़ शून्य पथ को अपनाते हैं वे उत्तम मार्ग को प्राप्त नहीं करेंगे –

करूणा रहिअ जो **सुण्णहिं** लग्गा। णउ सो पावइ उत्तम मग्गा।[16]

नाथ–साहित्य में शूंन्य तीन रूपों में प्रयुक्त हुआ है –

1. शिव लोक परमपद।
2. ब्रह्मरन्ध्र, दशम द्वार, गगन मण्डल।
3. ब्रह्म, परमतत्त्व।

शून्य का परमतत्त्व रूप में सत, रज, तम से विवर्जित स्वरूप अवलोकनीय है–

अपरा निरमल पाप न पुंनि, सत रज तम विवरजित सुंनि।[17]

2.5.2 **सहज** – सहजे भावाभाव न पुच्छइ। सुण्ण करूण वहि समरस इच्छह।[18]

ये ही पांचों तत बाबू सहजि समाना।
बदंत गोरष इमि हरि पद जाना।[19]

---

16. दोहा कोश – पृ 4
17. गोरखबानी – पृ. 58 / 170
18. कबीर की विचारधारा – पृ. 404
19. गोरखबानी – बडथ्वाल – पृ. 100

उपर्युक्त सबदी में नाथों ने सहज को परम माना है। जीवन की सादगी, बाह्याडम्बरों के प्रति नाथों के दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति सहज शब्द द्वारा भी हुई है।[20]

सहज शील का धरै सरीर, सो गिरही गंगा नीर।[21]

2.5.3 **खसम** – सिद्धों के अनुसार खसमअमन की अवस्था है जो अपने चंचल चित्त स्वभाव को छोड़कर विपरीत धर्मी हो जाता है। यथा –

सब्बरूप तहिं खसम करिज्जइ, खसम सहावे मणवे धरिज्जइ।

सोबि मणु तहि अमणु करिज्जइ, सहज सहावें सोपरू रज्जइ।[22]

कहीं कही इसे मन का पर्याय माना है –

मण्ह (भऊवा) खसम भअवई। (कबीर की विचारधारा, पृ. 407)

2.5.4 **निरंजन** – निरंजन निर्लिप्तता का बोध कराता है। यथा–

लोअह गब्ब समुब्बहइ हँउ परमत्थ पवीण।

कोटिअ मज्झोएक्कु जइ, होइ णिरंजन लीन। (हि.का.धा.–पृ. 146)

नाथ निरंजन को निर्गुण ब्रह्म का पर्याय मानते हैं।

यथा –

सोई निरंजन डाल न मूल। सब ब्यापीक सुषम न स्थूल।[23]

2.5.5 **अजपा जाप** – अजपा जपै सुनि मन धरै।[24]

2.5.6 **अनहदनाद** – अवधू दंभ कौ गहिबा उनमनि रहिबा ज्यूं बाजबा अनहर तूरं। (सबी–पृ.15/51)

2.5.7 **उन्मनि** – यह साधनावस्था है, जिसमें आनन्द की अनुभूति होती है।

उन्मनि लागा होइ आनन्द। (गोरखबानी–बड़थ्वाल पृ. 45)

5.5.8 **नाद-बिन्दु** –

नाद बिन्दु है फीकी सिला, जिहिं साध्या ते सिधै मिला। (उपरिवत् पृ.61)

5.5.9 **सुरति-निरति**

अवधू सुरत सो साधक सबद सा सिचि। (उपरिवत् पृ. 200)

निरति न सुरति जोगं न भोगं, जुरा मरण नहीं तहां रोगं।

गोरष बोलैं एकंकार। नहि तहँ बाचा ओअंकार। (सबदी–शार्दूल सिंह पृ. 29)

---

20. सबदी–शार्दूल सिंह जी पृ. 9,67
21. उपरिवत् – पृ. 13/45
22. चर्यागीति कोश – सरहपाद दोहा – 77
23. सबदी– शार्दूलसिह जी पृ. 30/111
24. गोरखबानी – बडथ्वाल पृ 7

6.1.3 हिन्दी-संत : भाषिक दृष्टिकोण –

संतों की भाषा 'बहता नीर' है जिसमें तद्युगीन विविध भाषाओं की शब्द लहरियाँ हिलौरें लेती नजर आती हैं। इन्होंने सिद्ध–नाथ साधकों के प्रभाव को तो आत्मसात किया ही साथ ही अपनी अनुभूति को लोक–भाषा में अभिव्यक्त किया। संतों के भाषिक दृष्टिकोण को जानने हेतु उनके साहित्य में समाहित भाषा–रूप, शब्द–शक्तियों, काव्य–गुण, कहावत–मुहावरों, विशिष्ट शब्द प्रयोग इत्यादि को आलोकित करेंगे।

6.1.3.1 भाषा-रूप :– सिद्ध–नाथों के समान हिन्दी–संतों की भाषा में भी विविध भाषाओं, बोलियों का मिश्रण हुआ है। संतों ने दूर–दूर के साधुसंतों का सत्संग किया, जिससे उनकी भाषा विविध बोलियों से प्रभावित हुई। तभी संतों की भाषा को खिचड़ी भाषा भी कहा गया। यथा–

3.1.1 पंजाबी –

पावक पांणी पांणी पावक (दादूवाणी, चन्द्रिका प्रसाद पृ. 540)

साचा साहिबु साचु नाइ भाखिआ भाउ अपारू,

आखहि मंगहि देहि देहि दाति करे दातारू। (संत सुधा सार–नानक पृ. 128)

मित्रॉं दोस्त माल धन, छडि चले अति भाइ। (संतबाणी सगह–प्रथम पृ. 64)

3.1.2 मराठी –

– *कोण देश कहां आइया, कहु क्यूं जाणां जाइ* –(क. ग्र.– पृ. 31)

– *दादू पड़दा भरम का रहा सकल पर छाइ।*

(दादूदयाल की वाणी–पृ.81 भाग–1)

3.1.3 राजस्थानी –

– *आंषड़िया झाई पड़ी पंथ निहारि निहारि।*

जीभड़ियाँ छाला पड़्या, राम पुकारि पुकारि। (क. ग्र.–पृ. 9)

– *तीन्यूं मिलि किर जोइया, (तब) उडि उडि पड़ै पतंग।* (क.ग्र.–पृ. 11)

3.1.4 ब्रज –

दूध त बछरै थनहु बिटारिओ।[25]

3.1.5 अवधी –

– *फलु लागा तो फूल विल्हाइ। (संत सुधा सार–पृ. 89)*

– *तनु मनु देह न सुनैं अन्तर राखैं (उपरिवत्–पृ. 90)*

---

25. आदिगुरू ग्रथ साहिब – पृ. 525

3.1.6 अरबी-फारसी –

अरवी –

अलह अवलि दीन का साहिब, जोर नहीं फुरमाया।(क.ग्र.–पृ. 174)

काजी महरम जांन। (क.ग्र.पृ. 176)

मुल्लाँ मुग्ध न मारि। (संत वाणी संग्रह–प्रथम पृ. 90)

फारसी –

– मीया तुम्ह सौ बोल्यां बणि नहीं आवै।

हम मसकीन खुदाई बंदे, तुम्हारा जस मनि भावै। (क.ग्र.पृ. 174)

–हिंदू पूजै देवरवरा, मुसलमान महजीद। (संतवाणी संग्रह–1–पृ. 207)

6.1.3.2 **काव्य-गुण** – सिद्ध–नाथों का अनुसरण करते हुए संतों ने भी अपनी भाषा के अन्तर्गत माधुर्य, ओज व प्रसाद की त्रिवेणी प्रवाहित की। यथा –

3.2.1 माधुर्य गुण –

सर की सार सुहागिन जानै।। तजि अभिमानु सुख रलीआ मानै।।

तन मनु देइ न अंतरू राखै।। अवरा देखि न सुनै अभाखै।।

कहि रविदास सरनि प्रभ तेरी।।जिउ जानहु तिउ करू गति मेरी।।[26]

3.2.2 **ओज गुण** – संतों ने जहाँ खण्डनात्मक शैली को अपनाया है, वहाँ उनकी भाषा में ओज गुण का स्वरूप दिखाई देता है। यथा–

क्यू लीजै गढ़ बंका भाई।

दोवर कोट अरू तेवड खाई। (क.ग्र.पृ. 208 / 359)

3.2.3 **प्रसाद गुण** –संतों की रचनाओं में प्रसाद गुण के दर्शन किये जा सकते हैं। यथा –

दादू इश्क अलह की जाति है, इश्क अलह का अंग।

इश्क अल्लाह वजूद है, इसक अलह का रंग।[27]

6.1.3.3 **शब्द-शक्ति** – सिद्ध–नाथों के समान संत साहित्य में भी शब्द शक्तियों का सुन्दर निरूपण किया गया है। यथा –

---

26. आदि गुरुग्रथ साहिब, रागु सूही रविदास जी, पृ 793
27. श्री दादू वाणी – पृ. 85 / 152

3.3.1 अभिधा – संतों के काव्य में अभिधामूलक' सीधी सरल अभिव्यक्तियाँ भी सर्वत्र बिखरी पड़ी है। उदाहरण स्वरूप देखिये–

सुन्दर सतगुरू यो कह्या, सकल सिरोमनि नाम।

ता कौं निसु दिन सुमरिये, सुख सागर सुखधाम।[28]

यहाँ सरल शब्दों द्वारा नामस्मरण की महिमा को सिद्ध किया है ।

3.3.2 लक्षणा – लक्ष्यार्थ लक्षित करने में संत प्रवीण थे। इनकी रचनाओं में लक्षणा शक्ति के अनुपम उदाहरण सहज ही देखे जा सकते हैं। एक साखी में कबीर ने बादल और प्रेम का सादृश्य दिखा कर आत्मा एवं वन का सम्बंध स्थापित किया है –

कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरस्या आइ।

अन्तर भीगी आत्मा, हरी भरी बन राइ। (क.ग्र. पृ. /34)

3.3.3 व्यंजना – संतों ने व्यंजना शब्द शक्ति का प्रयोग करके काव्य–सौन्दर्य की श्री वृद्धि की है। यथा –

राम गति पार न पावै कोई,च्यतामणि प्रभु निकटि छाड़ि करि,

भ्रंमि भ्रंमि मति बुधि खोइ। (क. ग्र. पद 316)

उपर्युक्त पद में 'च्यतामणि' विशेष पत्थर नहीं, वरन् प्रभु ही चिंतामणि है जिसे धारण कर व्यक्ति निश्‍िचत हो सकता है।

6.1.3.4 मुहावरे-लोकोक्तियाँ – सिद्ध–नाथों के समान संतों ने भी मुहावरे–लोकोक्तियों का सार्थक प्रयोग करके अपनी भाषा को विशिष्ट बना दिया है।

3.4.1 मुहावरे –

- दादू सब हैरान है गूंगे का गुड़ खाइ। (श्री दादू वाणी – पृ. 166/4)
- दादू काल कलंक सब, राखे कंठ लगाइ। (उपरिवत् पृ. 20/104)
- जिन पर – आतम चीन्हिया, तेही उतरे पार। (संतबानी संगह – प्रथम पृ. 99)
- सुन्दर योंही देखतें, औसर बीत्यो जाइ। (उपरिवत् – पृ. 104)
- कहै कबीर सुनहु हो संतो, स्वान की पूछ गह्यों । (कबीर वाडमय खण्ड 2 पृ. 362/255)

---

28. संत बानी संग्रह – भाग 1 पृ. 102

3.4.2 लोकोक्तियाँ

– *नाच न जानै बापुरी, कहै आँगना टेडा। (संत बानी संगह–प्रथम भाग पृ.20/30)*

– *अंधे–अंधा ठेलिया, दोऊ कूप पडंत। (क. ग्र. – पृ. 2/15)*

– *राई ते पर्वत करै, पर्वत राई नाइ (संत बानी संगह–प्रथम भाग पृ. 21/1)*

– *अंधे का दीपक दिया तो भी तिमिर न जाइ। (श्री दादू वाणी – पृ. 280/120)*

जे तूं राखे साइयां तो मार सके ना कोइ,

बाल न बांका कर सके, जे जग बैरी होई। (उपरिवत् पृ. 395/79)

6.1.3.5 **विशिष्टार्थी शब्द प्रयोग** – संत साहित्य में विशिष्ट शब्दावली का प्रयोग हुआ है। जिसे उन्होंने सिद्ध–नाथों से विरासत रूप में ग्रहण किया है। उदाहरण स्वरूप देखिए –

3.5.1 **शून्य** – सिद्ध–नाथों के अनुकरण पर संतों ने भी शून्य शब्द का बहुतायत मात्रा में प्रयोग किया है। कहीं वह ब्रह्म–नाद, परमज्ञान, सुषुम्ना–वाचक ब्रह्मरन्ध्र तथा केवलावस्था को दर्शाता है। नानक देव के शून्य और ओंकार शब्द को एक मान शून्य का परम तत्त्व रूप सिद्ध किया है –

शून्य शब्द ते उठे झंकार,

सुन्न शब्द ते ओ ऊंकार। [29]

संत–प्रवर दादू ने भी शून्य को परमतत्व सिद्ध करते हुए उसे सर्वव्यापक बताया है –

सहज सुंनि सब ठौर है सब घट सबही माहिं। [30]

3.5.2 **सहज** – संतों ने सहज का प्रयोग भिन्न–भिन्न अर्थों में किया हैं वे 'सहज रूप हरि खेलण लागा'[31] द्वारा उसे ब्रह्म मानते हैं। संत रैदास भी 'भाई रे सहज बंदो लोई, बिन सहज सिद्धि न होई'[32] की घोषणा करके सहज को ब्रह्म सिद्ध करते हैं।

3.5.3 **खसम** – संतो ने खसम का मुख्यतः दो रूपों में प्रयोग किया है। प्रथम सिद्धों के समान खसमावस्था जिसे शून्यावस्था भी कहा जा सकता है तथा दूसरा अरबी भाषा के अनुसार पति के अर्थ में। गोविन्द त्रिगुणायत ने कबीर–साहित्य में दो अर्थों में

---

29. सत काव्य मे विद्रोह का स्वरूप – पृ. 115 से लिया गया।
30. दादू वाणी – भाग 2 पृ 81
31. क ग्र. – पृ 157/203
32. सत रैदास (भाग –2) – संगमलाल पाण्डेय पृ. 121/51

खसम का प्रयोग बताया है–मन और ब्रह्म।[33]

शून्यावस्था का संकेत रूप में आभास कबीर के निम्न पद में होता है–

खसम बिनु तेली का बैल भयो।

बैठत नाहि साध की संगति, नाधे जनम गयो।

खसमहि छांडि विषय रंगराते,पाप के बीज बयो। [34]

संत पलटू दास ने भी खसम को ब्रह्म अर्थ में प्रयुक्त किया है – पलटू पावै खसम जो, रहै संत की खेढ़।[35]

3.5.4 निरंजन – सिद्ध–नाथों की परिपाटी का अनुसरण करते हुए संतों ने निरंजन शब्द का प्रयोग भी किया है। यहाँ निरंजन शब्द ब्रह्म का प्रतीक है। निर्गुण ब्रह्म के लिए निरंजन का प्रयोग अवलोकनीय है –

गोव्यंदै तूं निरंजन तूँ निरंजन तूँ निरंजन रायां।

तेरे रूप नहीं रेख नाहीं, मुद्रा नही माया। (क.ग्र.–पृ. 162/219)

संत रैदास 'निरंजन' ब्रह्म में मन लगाये उसे मुक्ति–दाता सिद्ध करते हैं –

कह रैदास निरंजन ध्याऊँ, जिस पर जाय बहुरि नहिं आऊ। [36]

3.5.5 अजपा-जाप – नाथों के समान संत साहित्य में भी अजपा जाप का उल्लेख हुआ है। अजपा जाप नामस्मरण की वह प्रक्रिया है, जिसमें बाह्य साधकों के बिना ही जाप क्रिया चलती रहती है। दया बाई अजपा जाप का संदेश देती है –

दया जाप अजपा जपो, सुरति स्वास में लाव।

अर्ध ऊर्ध मधि सुरति धरि, जपै जु अजपा जाप। [37]

संत कबीर ने अजपा जाप में मन की एकाग्रता को महत्त्व दिया है –

मन में आसण मन में रहणा, मन का जप–तप मन सू कहणा। [38]

3.5.6 अनहद नाद – संतों ने नाथों की परिपाटी का अनुसरण करते हुए अनहद नाद शब्द का प्रयोग किया है। यथा –

गगन गरज मन सुनि समाना, बाजे अनहद तूरां। (क.ग्र.–पृ. 60/7)

33. कबीर की विचारधारा – पृ. 407
34. कबीर वाड्मय, खण्ड 2 – पृ. 117–118 (सबद)
35. संत बानी संग्रह – प्रथम भाग – पृ. 209
36. संत रैदास स. योगेन्द्र सिंह) पृ. 149
37. संत बानी संग्रह – प्रथम भाग – पृ. 158
38. कबीर ग्रंथवली – पृ. 158/206

3.5.7 उन्मनि – सिद्ध–नाथों के समान संतों ने भी उन्मनि का प्रयोग समाधि की अवस्था रूप में किया है, जिसमें आनन्द की प्राप्ति होती है। कबीर ने 'उन्मनि ध्यान घट भीतर पाया'[39] द्वारा इसे समाधि माना है।

संत कबीर ने इसे आनन्द स्वरूपा माना है –

'अवधू मेरा मन मतिवारा, उन्मनि चढ़ा मगन रस पीवै'– (क.ग्र.– पृ. 110)

3.5.8 नाद-बिंदू – संतों ने ये शब्द नाथों से प्राप्त किये है। वे इसे उपसाधना मानते हैं; क्योंकि उनकी मूल साधना तो भाव–भगति थी तभी तो वे नाद–बिंदू को राम–भक्ति के सामन गौण मानते हैं –

नाद बयंद की नावरी, राम नाम कनिहार,

कहै कबीर गुण गाहले, गुरू गमि उतरै पार। [40]

3.5.9 सुरति-निरति – संत साहित्य में इसका प्रयोग कभी आत्मा कभी स्तुति आदि के लिए किया गया है। संत दादू सहज सूरति में मन लगाने को कहते है–

मन चित मनसा, आतमा सहज सुरति ता माहि। [41]

सारांशतः सिद्ध–नाथों के भाषिक दृष्टिकोण से संत–जन प्रभावित हुए हैं। उसे संतों ने विरासत रूप में प्राप्त करके उसमें मौलिक चिन्तन को प्रश्रय प्रदान किया तथा उसमें श्री वृद्धि की।

6.2 सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी-संतों का काव्य-रूप

6.2.0 सिद्ध–नाथ एवं प्रमुख हिन्दी–संतों के काव्यरूप के विवेचन से पूर्व काव्य–रूप का सामान्य अर्थ, स्वरूप को समझने का प्रयास करेंगे।

6.2.1 काव्य का अर्थ – जो उक्ति हृदय में कोई भाव जाग्रत कर दे या उसे प्रस्तुत वस्तु या तथ्य की मार्मिक भावना में लीन कर दे – वह काव्य है।[42]

इस प्रकार काव्य व्यक्ति को आनन्द प्रदान करता है।

6.2.2 काव्य-रूप – काव्य रूप से तात्पर्य काव्य के भेद अथवा प्रकार से लिया जाता है। निम्न सारणी द्वारा काव्य रूप को सरलता से समझा जा सकता है –

39. क. ग्र. पृ. 94
40. उपरिवत् पृ. 94 / 18
41. श्री दादू दयाल की वाणी पृ. 241
42. अलकार परिजात – पृ. 2

काव्य-रूपों की सारणी
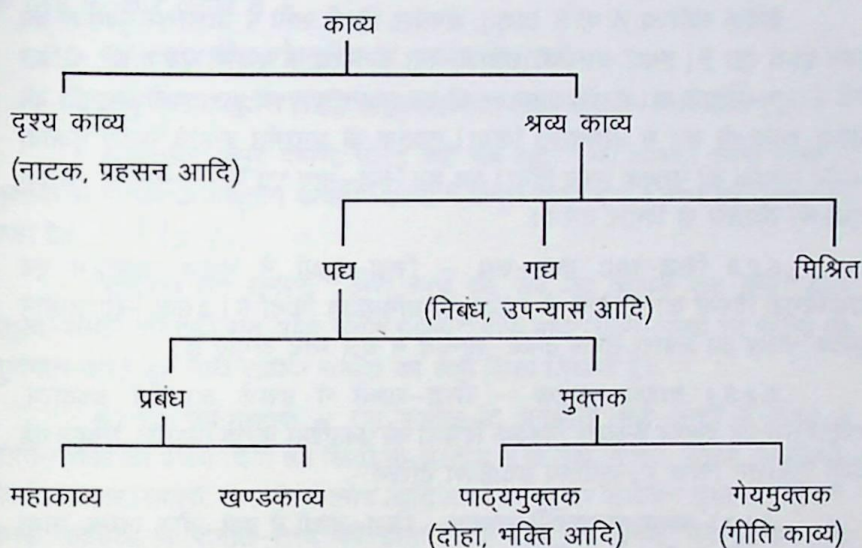
सिद्ध–नाथ एवं प्रमुख हिन्दी संतों ने अपनी वाणी द्वारा मुक्तक काव्य की सुन्दर सृष्टि की है। उनके काव्य रूप पर विचार से पूर्व मुक्तक काव्य के अर्थ, स्वरूप को समझना अपेक्षित होगा।

6.2.2.1 मुक्तक शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा – मुक्तक शब्द 'मुच्' धातु से भूतकाल में प्रयुक्त होने वाले निष्ठार्थक 'क्त' (क्त) प्रत्यय लगने से निष्पन्न हुआ है। इस मुक्त विशेषण से ही संज्ञा बनाने के लिए 'कन्' प्रत्यय जोड़ा है और इस प्रकार मुक्तक शब्द का निर्माण हुआ है।[43]

चिंतामणि में आचार्य शुक्ल ने मुक्तक को परिभाषित करते हुए कहा है – "यदि प्रबंध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है, तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है।

सम्यक निरूपण से स्पष्ट होता है कि मुक्तक पूर्वापर सम्बंध से निरपेक्ष होता है, वह अपने अर्थ के द्योतन में स्वतः समर्थ होता है, इस विषय में उसे किसी पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती छंद की अपेक्षा नहीं होती।[44]

43. वृहत साहत्यिक निबंध – पृ. 75
44. उपरिवत् – पृ. 75

6.2.2.2 मुक्तक काव्य की पूर्व परम्परा – निर्विवादित रूप से नहीं कहा जा सकता कि मुक्तक की रचना किस युग में हुई। भारतीय वाड्मय में मुक्तक काव्य रचना ऋग्वेद को माना जाता है।

वैदिक साहित्य से पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी सभी में उत्तरोत्तर मुक्तकों का सृजन होता रहा है। हमारे आलोच्य साधक–संत मानवता के पुजारी एवं दुःखी, पीड़ित जनों के शुभ–चिंतक थे। इन्होंने प्रबंध काव्यों का सृजन न करते हुए अपनी अनुभूति को मुक्तक काव्य के रूप मे अभिव्यक्त किया। मुक्तक के अन्तर्गत इन्होंने पाठ्य मुक्तक एवं गेय मुक्तक को मुख्यतः प्रश्रय दिया। अब हम सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी–संतों के मुक्तक काव्य पर विस्तार से विचार करेंगे।

6.2.3 सिद्ध-नाथः काव्य-रूप – सिद्ध–नाथों ने मूलतः अध्यात्म एवं साधनात्मक विषयों को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। इसके लिए उन्होंने मुक्तक काव्य का सहारा लेकर काव्य–सौन्दर्य में चार चाँद लगाए हैं।

6.2.3.1 पाठ्य मुक्तक – सिद्ध–नाथों ने इसके अन्तर्गत अध्यात्म, साधनात्मक एवं समाज कल्याण विषयक विचारों को प्रकाशित करके तद्युगीन समाज को दिशा निर्देशित किया है। कतिपय उदाहरण देखिये –

2.3.1.1 आध्यात्म सम्बंधी मुक्तक – सिद्ध–नाथों ने ब्रह्म, जीव, जगत, माया इत्यादि आध्यात्मिक विचारों का विवेचन मुक्तक काव्य के द्वारा किया है। ब्रह्म को वे शून्य निरंजन कहते हैं –

सुण्ण निरंजन परमपउ सुइणो (अ) माउ सहाव। [45]

मुक्तक के माध्यम से सिद्ध संक्षेप में ही आत्म–तत्त्व अथवा चित्त की स्थिति का निरूपण करते हुए कहते हैं –

बद्धो धावै दिसहि, मुक्तों निश्चल स्थाय। [46]

नाथों ने अपने आध्यात्मिक विचारों को मुक्तक के माध्यम से अभिव्यक्त करके उन्हें सरल एवं प्रभावोत्पादक बना दिया है। नाथ माया को जाल बता करके उसके परित्याग का उपदेश देते हैं –

सरब निरंतर काटे माया, सो घरबारी कहिए निरंजन की काया। [47]

2.3.1.2 समाज कल्याण सम्बंधी मुक्तक – सिद्ध–नाथों ने तद्युगीन समाज में व्याप्त रूढ़ियों, प्रथाओं (अहितकारी), लुप्त होते जीवन–मूल्यों के प्रति चिंता प्रदर्शित करते हुए मुक्तक के माध्यम से इन बाह्याचारों, आडम्बरों एवं युगीन शोषण–अन्याय आदि

45. दोहा कोश – राहुल जी – पृ. 30 / 138
46. उपरिवत् – पृ. 7 / दो. 26
47. सबदी – शार्दूल सिंह जी पृ. 13 / 44

के प्रति विद्रोह का शंखनाद किया है। सिद्ध सरहपाद ने मुक्तक का सहारा लेकर समाज में शोषण, ऊँच–नीच की भावना एवं आडम्बरों को फैलाने वाले ब्राह्मण को उसके कुकृत्यों के लिए फटकार लगाई है –

जइ राग्गा विउ होइमुक्ति ता सुणाह सिआलह,

लोभु पाडवों अत्थि सिद्धि तो जुबाईणिअम्बइ। (बागची–दोहा कोश पृ.7)

'खाई हींग कपूर वषाणै, गोरष कहै सब झूठा'[48] की घोषणा करके नाथों ने मुक्तक के माध्यम से तद्युगीन कथनी–करनी में अन्तर करने वाले ब्राह्मण को मिथ्याचारी कहा है।

'सुमरिण सत सुमरण'[49] द्वारा सत्य की, सब घट व्यापक एक ब्रह्म'[50] द्वारा बंधुत्व–समता की तथा सत, शीत संतोष धारण'[51] द्वारा नाथ जीवन–मूल्यों की महिमा का गुणगान करते हुए नाथ साधक समाज को सही दिशा दिखाते हैं।

6.2.3.2 **गेय-मुक्तक** – गेय मुक्तक के अन्तर्गत सिद्ध–नाथों ने काव्य में गीति–तत्त्वों को प्रश्रय दिया है। सिद्धों के साहित्य में धनरवी, गुर्जरी, बंगाल, पटमंजरी, भैरवी, मल्हार, सावेरी, धनाश्री, कामोद आदि रागों का सुन्दर संयोजन हुआ है। जिससे इनके साहित्य में संगीत–तत्त्व का होना सिद्ध होता है। इनके गेय मुक्तकों में, संगीतात्मकता, भावात्मकता, रागात्मकता, संक्षिप्तता, इत्यादि गीति काव्य के तत्त्वों का निरूपण हुआ है।

सिद्ध सरहपाद ने अनेक गीतों का सृजन किया है। राग भैरवी का उदाहरण अवलोकनीय है।

काअणावदि खष्टि मण केडुआल।

सदगुरू–वअणे घर पतवाल।।

चीर थिर करि धरहु रे नाइ।

आन उपाये धार न जाइ।।

नौवाही नौका टानअ गुणे।

मेलि मेल सहजे जाउ ण आणे।।

बाटत भउ खाष्ट वि बलआ,

भव उलोलें सब वि बोलिआ।।

---

48. सबदी–शार्दूल सिंह जी पृ. 32 / 120
49. नाथ सिद्धों की बानिया – पृ. 6
50. उपरिवत् – पृ. 112
51. उपरिवत् – पृ. 6

कूल लइ खर सोन्तें उजाल।

सरह भनै गउणें समाअ।। (दोहा कोश–राहुल जी पृ. 360/3)

6.2.4 हिन्दी-संत : काव्य-रूप – सिद्ध–नाथों की मुक्तक काय परम्परा को हिन्दी–संतों ने ग्रहण किया। युगान्तरकारी व्यवित्तत्व के धनी हिन्दी संतों ने तद्युगीन विषमताओं पर अपने मुक्तकों द्वारा करारे प्रहार करके उन्हें धराशाही किया है। मुक्तकों के सहारे संतों ने विविध विषयों की अभिव्यक्ति करके 'गागर में सागर भरने' की कहावत को चरितार्थ किया।

6.2.4.1 पाठ्य मुक्तक – सिद्ध–नाथों के समान संतों ने भी इसके अन्तर्गत अध्यात्म साधनात्मक एवं समाज–कल्याण आदि विषयों को आलोकित करके तद्युगीन विषमता के तिमिर का नाश किया। यथा –

2.4.1.1 अध्यात्म विषयक मुक्तक – संतों ने मुक्तक–काव्य द्वारा अपनी आध यात्मिक अनुभूति को अभिव्यक्त किया है। उन्होंने अपने उदात्त दार्शनिक विचारों (ब्रह्म, जीव, जगत्, माया आदि) को मुक्तक काव्य में निरूपित करके सामान्य जन को सरलता से वास्तविक सत्य से परिचित कराया। ब्रह्म के अद्वैत स्वरूप का चित्रण करते हुए कबीर ने कहा है –

अरे भाई दोइ कहा सो मोहि बतावौ।

बिचिहि भरमका भेद लगावौ। (क. ग्र. पृ. 106/56)

'निराकार निर्लेप है, सुन्दर तहँ न व्याधि'[52] द्वारा सुन्दर दास ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप को व्यक्त करते हैं।

संत रैदास ने मुक्तक के माध्यम से माया के मिथ्या स्वरूप को प्रकाशित करके प्रभु भक्ति से माया प्रभाव को तिरोहित करने का उपदेश लोगों को दिया है –

झूठी माया जग डहकाया, लौ तीन ताप दहै रे।

कह रैदास राम राम जप रसना, माया कैसे संग रहै रे। [53]

इस प्रकार संतों ने मुक्तकों का सहारा लेकर अध्यात्म–विषयक जटिल बातों को सरलता एवं संक्षिप्तता प्रदान करके उसे सामान्य जन के लिए सुलभ बना दिया है।

2.4.1.2 समाज-कल्याण विषयक मुक्तक – संत युग प्रवर्तक थे। उन्होंने जीर्ण पुरातन के ध्वंसावशेष पर व्यवस्था की नव अधिरचना स्थापित की थी। मुक्तकों का सहारा लेकर उन्होंने समाज में व्याप्त बाह्याचारों, रूढ़ियों, कुरीतियों का खुल कर विरोध किया है। ऐसा करके संतों ने सिद्ध–नाथों के स्वर को आगे बढ़ाया है।

---

52. स. बा. स. प्रथम भाग पृ. 105
53. सत रैदास – (स. योगेन्द्र सिंह) पृ. 180

'पंडिआ कवन कुमति तुम लागे'[54] द्वारा कबीर पंडितों को उनके कुकृत्य के लिए फटकारते हैं। वे पंडित वाद वदन्ते झूठा[55] द्वारा उनके ज्ञान को मिथ्या घोषित कर 'पण्डित मुल्ला जो कह दिया झाड़ चले हम कहु नहीं लिया'[56] का आह्वान करके सामान्यजन को थोथे ज्ञान से मुक्त कराते हैं।

मुक्तकों के सहारे संत, पंडित–मुल्ला (धर्म नियंताओं) को फटकारते हैं। साथ ही समाज के अभ्युत्थान हेतु व अपनी कल्याणकारी वाणी द्वारा प्रेम, दया, सत्य अहिंसा, परोपकार एवं बंधुत्व आदि मानवीय जीवन–मूल्यों की प्रतिष्ठा करते है। दया, नम्रता, दीनता, क्षमा, शील, संतोष को मुक्तिदायक सिद्ध करते हुए उनके सुमिरन का संदेश प्रेषित करते हैं –

दया नम्रता दीनता, छिमा सील संतोष,

इन कूँ लै सुमिरन करै, निस्चैपावै मोख। (स.बा.स. प्रथम पृ.140)

संतों ने पाठ्य मुक्तक के अन्तर्गत 'साखी' पद को चुना है। संतों ने दोहा छन्द में उपदेश की परम्परा को आत्मसात किया। सिद्ध–नाथों ने क्रमशः दोहा, सबदी के माध्यम से उपदेश दिये। संतों ने भी सिद्ध–नाथों के दिखाये मार्ग को ज्ञान का सहारा लेकर अपने उपदेशात्मक मुक्तक रचे और इस प्रकार सत्य के साक्षात्कार रूप में उन्होंने साक्षी दी। यही साक्षी शब्द बिगड़ कर साखी बन गया। बीजक में साखी का परिचय देते हुए कबीर ने कहा है–

साखी आंखी ज्ञान की समुझि देखु मन माहिं,

बिनु साखी संसार का झगरा छूटत नाहिं।[57]

संतों ने साखियोंके माध्यम से अध्यात्म–विषयक, समाज–कल्याण विषयक विषयों को सम्मिलित करके उन्हें सत्य कसौटी पर कसते हुए अभिव्यक्त किया।

6.2.4.2 **गेय मुक्तक** – सिद्ध–नाथों से प्रभाव ग्रहण करके संतो ने काव्य में गेय मुक्तकों को अपनाया। संतों के गेय मुक्तक लोक–मानस पर गहरा प्रभाव डालने में सफल हुए। संतों के इन गेय मुक्तकों ने ही उन्हें सामान्य जन का कवि बनाया है। इनके पदों में सम्प्रेषणीयता, भावात्मकता, मधुरता का अनूठा मेल हुआ है। संतों के साहित्य में राग गौड़ी, राम कली, आसावरी, सोरठ, केदारा, टोड़ी, भैरू, बिलावत, ललित,बसंत आदि रागों का अनुपम स्वरूप दिखाई देता है।

---

54. कबीर – द्विवेदी – पृ. 131–132
55. क. ग्र. पृ. 40 / 101
56. उपरिवत् – पृ. 272
57. बीजक – कबीर, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, साखी 353

'कहै कबीर मै गावा, मै गावा आप लखावा',[58] द्वारा संत कबीर स्वयं गाने की स्वीकृति भी प्रकारान्तर से देते हैं।

संत–प्रवर दादू दयाल द्वारा जैतश्री राग का अनुपम उदाहरण अवलोकनीय है–[59]

तेरे नाम की बलि जाऊ, जहां रहू जिस ठाऊ।टेक।
तेरे बैनों की बलिहारी, तेरे नैनहूँ ऊपरि वारी।
तेरी मूरति की बलि कीती, बार–बार हौ दीती।।1।।
शोभित नूर तुम्हारा, सुन्दर ज्योति उजारा।
मीठा प्राण पियारा, तू है पीव हमारा।।2।।
तेज तुम्हारा कहिये, निर्मल काहेन लहिये।
दादू बलि बलि तेरे, आवा पिया तू मेरे।।3।।

सारांशतः सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी–संतों के काव्य रूप के सम्यक निरूपण से स्पष्ट होता है कि इन्होंने अपने–अपने समय में लोक–परम्परा में प्रचलित छंदों के माध्यम से मुक्तक काव्य की सृजना की। मुक्तक के माध्यम से इन्होंने अपने आध्यात्मिक विचारों, समाज–कल्याण विषयक विचारों को प्रेषित किया तथा गेय मुक्तकों के माध्यम से गेय मुक्तक परम्परा को समृद्ध बनाया। मुक्तक काव्य के अनुरूप इनके मुक्तक स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं तथा पद पूर्वा पर निरपेक्ष स्वतः पर्यवसित पद्य तक सीमित है। इस प्रकार मुक्तकों का सहारा लेकर संतों – साधकों ने अपने भावालोक द्वारा सामान्य जन को दिशा निर्देश दिया।

6.3 सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी-संतों का विशिष्ट प्रतीक-विधान

जब मनुष्य अपनी भावनाओं एवं विचारधाराओं को जनवाणी में अभिव्यक्त करने में असमर्थ हुआ तब उसे विशेष सांकेतिक शब्दों की आवश्यकता महसूस हुई, ऐसे अवसर पर उसके प्रतीकों का आश्रयग्रहण किया। सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी संतों के प्रतीक विधान को जानने से पूर्व प्रतीक का अर्थ, अभिप्राय एवं पूर्व परम्परा को जानना अपेक्षित होगा।

6.3.1 **प्रतीक शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा** – प्रतीक शब्द 'प्र' + 'तीक' धातु से 'अ' प्रत्यय द्वारा बना है। 'तीकृ' धातु का गति अर्थ है और सभी गत्यर्थक धातु ज्ञानार्थक एवं प्राप्त्यर्थक हुआ करती है। अतः उसी के सहोदर 'हीकृ' धातु की टीका अर्थ ज्ञापन करने वाली वृत्ति का नाम है। अतः प्र = प्रकृष्ट तीकन = ज्ञान या अर्थ प्राप्ति कराने वाले शब्द को प्रतीक कहना चाहिए – 'प्रकृष्टं तीकते इति प्रतिकम्'[60]

---

58. क. ग्र. पृ. 182
59. श्री दादूवाणी – पृ. 718
60. सत साहित्य में प्रतीक विधान – डॉ. मुहम्मद अहसन, पृ. 6–7

अमर कोष में प्रतीक के पर्याय इस प्रकार बताये गए है – प्रतीक अंग प्रतीकोऽवयवोऽपवनोऽथकलेवरम्। (मनुष्य वर्ग श्लोक नं.)

प्रमाणित हिन्दी कोश में प्रतीक के अनेक अर्थ बताए हैं–चिह्न, लक्षण, निशान, मुख–मुँह, आकृति–रूप–सूरत, किसी के बदले में रखी वस्तु, प्रतिमा, जो सबकी बातों का सूचक हो।[61]

प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य (गोचर) वस्तु के लिए किया जाता है, जो किसी अदृश्य (अगोचर) विषय का प्रति विधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समानुरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है। अमूर्त, अदृश्य, अश्रव्य, अप्रस्तुत विषय का प्रति विधान मूर्त दृश्य, श्रव्य, प्रस्तुत विषय द्वारा किया जाता है।[62]

आचार्य शुक्ल प्रतीकों का प्रभाव दो प्रकार से दर्शाते हैं– प्रथम भावों को जाग्रत करने वाले व द्वितीय विचारों को जाग्रत करने वाला।[63]

निष्कर्षतः प्रतीक का आशय है– जिसके माध्यम से स्थूल के द्वारा सूक्ष्म की प्रतिष्ठा अपने मूल अर्थ के स्थान पर अन्य अर्थ व्यंजित करते हुए जगत् के गूढ़ रहस्यों का उद्‌घाटन करने के लिए होती है, जिससे वह अदृश्य को अधिक भाव व्यंजक बना सके। अतः प्रतीक अमूर्त का मूर्त द्वारा प्रस्तुतीकरण है।

6.3.2 प्रतीक-परम्परा – भारतीय साहित्य में प्रतीकों की एक समृद्ध परम्परा रही है। वैदिक युग ने आध्यात्मिक–रहस्यात्मक एवं दार्शनिक प्रतीकों को जन्म दिया, पौराणिक युग धार्मिक प्रतीकों की जननी बना, तो सिद्ध–नाथ कवियों ने योग परक प्रतीकों का पोषण किया। संत कवियों ने इन्हें विरासत रूप में ग्रहण करते हुए इनका यथोचित संवर्धन करते हुए उन्हें जीवन्त बनाने के साथ उनकी श्री वृद्धि की।

6.3.3 सिद्ध-नाथ : प्रतीक-विधान – सिद्ध–नाथ साधक थे। वे अपनी साधना–पद्धति को गोपनीय रखना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने प्रतीकात्मक शैली का सहारा लिया। इनके प्रतीक विधान को मोटे तौर पर तीन बिन्दुओं में विभक्त करके सरलता से समझा जा सकता है।

6.3.3.1 सामाजिक प्रतीक – सामाजिक प्रतीक समाज के सम्बन्ध, व्यवसाय एवं रीति–रिवाजों से जुड़े शब्द है। सिद्ध–नाथ साहित्य में सामाजिक प्रतीकों की मनोरम छटा बिखरी है। निम्न बिंदुओं के आधार पर हम सिद्धनाओं के सामाजिक प्रतीकों को आलोकित करने का प्रयास करेंगे। यथा –

61. प्रमाणित हिन्दी कोश – सं. रामचन्द्र वर्मा पृ. 836
62. हिन्दी साहित्य कोश – सं.डॉ. धीरेन्द्र वर्मा पृ. 47
63. चिंतामणि – भाग 2 पृ. 109

3.3.1.1 सम्बन्ध विषयक प्रतीक – सिद्ध–साहित्य में सम्बन्ध विषयक प्रतीक का मूलाधार श्रृंगार है। यहाँ नायक–नायिका, पति–पत्नी, सास–बहू, ननद, ससुर आदि को प्रतीकात्मक रूप में प्रयुक्त किया है। नाथ साहित्य में माता, बहन, भानजी, पोता आदि को प्रयुक्त किया है।

सास–ननद को प्रतीकात्मक रूप में प्रयुक्त करके सिद्ध कृष्ण पाद उन्हें मारने का उपदेश देते हैं–

मारिआ सासु णणद धरे शाली, माअ मारिआ कणह भइल कबाली।[64]

प्रस्तुत पद्य में सास–ननद (श्वास एवं इन्द्रियों की प्रतीक है।)

3.3.1.2 व्यवसाय विषयक प्रतीक – सिद्ध–साहित्य में विविध व्यवसायों को आध्यात्मिक क्रियाओं का प्रतीक सिद्ध किया गया है। सिद्ध शांतिपा ने अपनी चर्या में रूई धुनने का सूक्ष्म प्रतीकात्मक रूप में वर्णन किया है–

तुला धुणि धुणि आँसु रे आँसु।[65]

इसी प्रकार विनयश्री की गीतियों (दोहाकोष) में मछली पकड़ने का सुन्दर वर्णन मिलता है।[66] जो अपना विशिष्ट अर्थ रखते हैं।

3.3.1.3 रीति-रिवाज विषयक प्रतीक – सिद्ध–साहित्य में समाज में प्रचलित रिवाजों का प्रतीकात्मक रूप में निरूपण किया गया है। वर–यात्रा का सुखद वर्णन अवलोकनीय है–

भव निर्व्वाणे पडह मादला। मण पवण वेणि करण्ड कशाला।

जउ जउ दुन्दुहि साद उछलियाँ। काह्ण डोम्बी विवाहे चलिआ।[67]

एक अन्य स्थान पर अन्तेष्टि क्रिया का प्रतीकात्मक रूप में निरुपण करके बताना चाहा है कि मनुष्य की सद्गति के उपरान्त कुछ भी शेष नहीं रहता। यथा–

चारि वासे गडिला रे दिआँ।

ताहि तोलि शबरो डाह कएला कान्दइ सगुण शिआली।

मरिल भवमत्ता रे दह दिहे दिधलि वली।

हेर से सबरो निरेवण भइला फटिलि षबराली।[68]

6.3.3.2 प्राकृतिक-प्रतीक – प्राकृतिक प्रतीकों के अन्तर्गत वे वस्तुएँ आती हैं जो मनुष्य एवं उसकी कृति नहीं है। सिद्ध–नाथ साहित्य में आध्यात्मिक अनुभूतियों,

---

64. सिद्ध–साहित्य – पृ. 430
65. साहित्येतिहास – पृ. 163
66. दोहाकोश – पृ 362 – 363 संख्या –3
67. सहजसिद्ध – पृ. 204
68. सहजसिद्ध – पृ 204

अनुभूत सत्यों को प्राकृतिक साधनों द्वारा प्रतीकात्मक रूप में अभिव्यक्त किया गया है। कतिपय उदाहरण अवलोकनीय है –

3.2.1 **तरूवर** – सिद्ध–साहित्य में तरूवर को काया, चित्त, सृष्टि विस्तार, परमतत्त्व आदि के प्रतीक रूप में निरूपित किया है। यथा–

काया तरूवर पंचवि डार। (काया) (हि.का.ध. पृ. 136)

– अदृश्य चित्त तरूवरह गउ तिहुवणें वित्थर चित्त (सिद्ध–साहित्य पृ. 449)

3.2.2 **जलधि** –

यहाँ जलधि को संसार का प्रतीक माना है।

तरित्ता भव जलधि जिस करिभाअ सुइणा। (सिद्ध–साहित्य पृ. 453)

3.2.3 **हंस** – सिद्ध–नाथ साहित्य में हंस चित्त, पवन या प्राण का प्रतीक है।

– धरियउ हंस मइ कहिअउ भेउ। (दोहा कोश–राहुलजी पृ. 18/74)

– सोहम् बाई हंसा रूपी प्यंडब है। (गो.बा. पृ. 99)

3.2.4 **भुजंग** (साधक का प्रतीक)

– शबरो भुजंग नैरामणि ढारी पेम्ह रति पोहाइली। (सिद्ध–साहित्य पृ. 452)

– भुजंग सोइजाके मनि उजियारा। (उपरिवत्)

3.2.5 **मेघ** (मरूणा, गुण)

– करूणा मेह निरन्तर फरिआ। (चर्यापद 30)

– उतर देस में मेह धड़वया दक्षिण आंचल छाया। (सिद्ध साहित्य पृ. 454)

3.2.6 **काग** (अज्ञानी चित्त)

– दिवसइ बहुड़ी काउइ डरे भाउ। (उलटबांसी साहित्य–पृ.82 से लिया गया)

3.2.7 **गाय** (इन्द्रियाँ)

– गविआ बाझे। (सिद्ध साहित्य पृ. 450)

– एक गाय नौ बछड़ा। (गो.बा. पृ. 113)

3.2.8 **बैल** (मन, बोधि चित्त)

– बलद बिआअउ। (चर्यापद 33)

– मन बछौ। (गो. बा. पृ. 254)

3.2.9 **मृग** (आसक्त मन)

– आपणा मांसे हरिणा वैरी (सिद्ध साहित्य पृ. 452)

– ह्यौ ह्यौ मृगलो बेधियौ बांण (उपरिवत्)

6.3.3.3 साधनात्मक-प्रतीक – सिद्ध–नाथों ने अपनी साधना को प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है। इस हेतु इन्होंने जिन प्रतीकों को ग्रहण किया वे साधनात्मक प्रतीक कहलाये। साधनात्मक प्रतीकों को हम सांकेतिक, परिभाषिक तथा संख्यामूलक प्रतीकों द्वारा विवेचित करेंगे।

3.3.3.1 सांकेतिक-प्रतीक – सिद्ध–नाथों ने हठयोग साधना में प्राणायाम, कुण्डलिनी, जागरण, षट्चक्र, भेदन, ब्रह्मरन्ध्र, बंकलान इत्यादि के लिए नाड़ी, चन्द्र–सूर्य, गंगा, यमुना, सरस्वती इत्यादि को प्रयुक्त किया है।

सरह का का उदाहरण देखिये जिसमें चन्द्र–सूर्य इडा एवं पिंगला के प्रतीक हैं। यथा –

चंद–सुज्ज धसि धालह धोट्टइ। सो आणुत्तर एत्थु पहट्ठइ।

एव्वहिं सबल जाण णिगूढ़ों। सहज सहावे ण जाणिअ मूढ़ो।[69]

इसी प्रकार सिद्ध डोम्बीपाद ने एक चर्या में गंगा यमुना को इडा–पिंगला नाड़ियों का, नौका को सहजानन्द, डोम्बी को नेरात्मा, सूर्य–चन्द्र को प्रज्ञाज्ञान व अद्वयज्ञान को तटस्थता का प्रतीक निरुपित किया है। यथा–

गंगा जमुना माझे रे बहइ नाइ।

तहि बुडिली मातङ्गी पोइला लोलेपार करेइ।

पाञ्जकेडु आलपडन्ते माड़तो पिठत काच्छी बान्धि।

गअण हुखोते सिञ्चहुं वाणी नपइसइ सान्धि।

चन्द सूज्ज दुइ चका सिठि संहार पुलिन्दा।

वाम दाहिण दुइ माग न चेवइ बाहतु छन्दा।

कवड़ी न लेइ बोड़ी न लेइ सुच्छडे पार करइ।

जो रथे चडिला बाहवा न जाइकुले कुले बुडइ।[70]

नाथ–साहित्य में गगन मण्डल को ब्रह्मरंध्र का प्रतीक मानते हुए कहा है –

गगन मंडल में ऊँधा कुआ तहाँ अमृत का वासा।

सगुरा होइ सु भरि भरि पीवै निगुरा जाय पियासा।[71]

3.3.3.2 पारिभाषिक-प्रतीक – इसके अन्तर्गत शून्य, ब्रह्म, सुरति–निरति, निरंजन, परमतत्त्व, सहज इत्यादि प्रतीकों का प्रयोग सिद्धनाथ साहित्य में हुआ है। कतिपय उदाहरण अवलोकनीय है –

---

69. दोहा कोश – गीति मूल पृ. 10
70. उलटबासी साहित्य – पृ. 86
71. सबदी – शार्दूलसिंह जी पृ. 8 / 23

सुण्ण णिरंजन परमपउ, सुरणो (अ) माअ सुहाव।

भावहु चित्त–सहावता, णउ णासिजजइ जाव।[72]

गोरख नाथ ने सहज को परमतत्त्व का प्रतीक माना है –

ये ही पांचो तत बाबू सहजि समाना।

बदंत गोरख इमि हरि पद जाना।[73]

3.3.3.3 **संख्यामूलक-प्रतीक** – सिद्ध–नाथ साहित्य में साधनात्मक प्रतीकों के अन्तर्गत कुछ विशिष्ट संख्याओं के माध्यम से संख्यात्म प्रतीकों का प्रयोग किया है। इनकी रचनाओं में दशमद्वार, बत्तीस योगिनी, अठसठितीरथ, पंचतंत्र, बहत्तरि चन्द्रमा, षोडस नाड़ी, नव नाड़ी बहत्तर कोठा आदि का प्रयोग हुआ है। कतिपय उदाहरण अवलोकनीय है –

पञ्च तथागत किअ केडआअ – (सहज सिद्ध पृ. 148)

प्रस्तुत पद्य में पंच इन्द्रियों की ओर संकेत किया है।

मनवां जोगी काया मढ़ी। पंच तत्त्व लै कंथा गढी।

षिमा षडासड ज्ञान अधारी। सुमति पावडी डंड विचारी।[74]

यहाँ पंच तत्त्व की कथा एक ओर जल, क्षिति, पावक, गगन व समीर की है तो दूसरी तरफ क्षमा, ज्ञान, बुद्धि व विचार की है।

6.3.4 हिन्दी-संत : प्रतीक-विधान

सिद्ध–नाथों की प्रतीक परम्परा को हिन्दी संतों ने आत्मसात किया तथा उसे पोषण प्रदान कर उसे समृद्ध बनाया।

3.4.1 **सामाजिक-प्रतीक** – सिद्धों के अनुरूप संत–साहित्य में भी सामाजिक सम्बन्ध, व्यवसाय, रीति–रिवाजों के रंग बिखरे नजर आते हैं।

संतों ने सिद्ध–नाथों के समान सामाजिक प्रतीकों का प्रयोग किया है। इनके सामाजिक प्रतीकों को निम्न बिंदुओं द्वारा सरलता से समझा जा सकता है –

4.1.1 **सम्बन्ध विषयक-प्रतीक** – संत साहित्य में माता–पिता, भाई, बहन, पति–पत्नी, देवर–जेठ, सास–ससुर, ननद, सहेली आदि को प्रतीकात्मक रूप में चित्रित किया गया है। यथा –

सेजै रहूँ नैन नहीं देखौं।

यहु दुख कासौ कहूँ हो दयाल। हेक।

---

72. दोहाकोश – राहुल जी पृ. 138
73. गोरखबाणी – सबदी – शर्दूल सिंह पृ. 100
74. गो. बा. सबदी – पृ. 48

सासु की दुखी सुसर की प्यारी जेठ कै तरसि डरौरे।

नणद सहेली गरब गहेली देबर के विरह जरौ हो दयाल।

साबकौ करै लराई, माया सर मतिवाली।

सगौ भईलाँ लै सलि चढ़िहू, तब ह्रे हूंपीयहि पियारी।

सोचि विचारि देखौ मन मांही औसर आइ बन्यूं रे।

कहै कबीर सुनहुँ मति सुन्दरि, राजा राम रमूं रे।[75]

सिद्ध कण्हपा के समान संत पलटू भी एक स्थान पर सास–ननद को मारने का उल्लेख करते हैं। यहाँ सास ननद इन्द्रियों का प्रतीक है। यथा –

सासु ननद को मार मैं अदल दिहा चलाई।

उनकै चलै न जोर पिया को मैंहि सुझाई।[76]

4.1.2 **व्यवसाय विषयक-प्रतीक** – सिद्ध–नाथों के समान संत साहित्य में भी व्यवसाय विषयक प्रतीकों के दर्शन किए जा सकते हैं संत कबीर ने धोबी को ब्रह्म का प्रतीक मानते हुए वर्णन किया है –

मोरी रंगी चुनरिया धो धुविया।[77]

संत–प्रवर दादू दयाल ने ब्रह्म को प्रतीक रूप में बाजीगर कहा है –

इहि बाजी जगत् भुलाना, बाजीगर किनहूँ न जाना।[78]

संतों ने सिद्ध नाथों के समान व्यावसायिक प्रतीकों का आश्रय ग्रहण करके निम्न वर्ण एवं उनके कार्य के प्रति समान भाव को जगाने का प्रयास किया है।

4.1.3 **रीति-रिवाज विषयक-प्रतीक** – सिद्ध–नाथों के समान संतों ने भी समाज में प्रचलित रीति–रिवाजों का निरूपण प्रतीकात्मक रूप में किया है।

संतों में सिद्धों के समान दुल्हा, दुल्हन व बरात का प्रतीकात्मक रूप में वर्णन अवलोकनीय है। यथा –

दुलहिनि गावहु मंगला चार।

हम घरि आये राम भरतार।

तन रत करि मैं मन रति करि हो पांचउ तत बाराती।

राम देव मोरे पाहुने आये मैं जोबन में माती।[79]

---

75. क. ग्र.पृ. 166 / 230
76. सिद्ध साहित्य पृ. 430
77. कबीर शब्दावली – भाग – 2 पृ. 74
78. दादू दयाल की वाणी – मंगलदास पृ. 73
79. क. ग्र. – पृ. 84 / 1

3.4.2 प्राकृतिक-प्रतीक – सिद्ध–नाथों के समान संतों ने प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। यथा –

4.2.1 **तरवर** (काया)

– *तरूवर एक अनन्त डार साखा पुहुप सत्र रस भरीआ।*[80]

4.2.2 **जलधि** (संसार)

– *विशम भयानक भौजला तुम बिन भारी होइ। (दादू दयाल की वाणी, भाग–2, पृ. 7)*

4.2.3 **हंस** (चित्त)

– *कहै कबीर स्वामी सुख सागर हंसहि हंस मिलावैंगे। (क.ग्र.पृ.137)*

– *पहुँचै हंस सत सबद से, सदगुरु मिलै जो मीत। (स.बा.स. प्रथम भाग पृ. 114)*

4.2.4 **भुजंग** (साधक)

– *साइर सोखि भुजंग बलइओ। (संत कबीर पृ. 104)*

4.2.5 **मेघ** (करूणा प्रेम–गुण)

– *कबीर गुण की बादली तीतरबरनी छांह। (क.ग्र.पृ. 34)*

– *कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरष्या आइ। (क.ग्र.पृ. 4)*

4.2.6 **काग** (अज्ञानी चित्त)

– *मिहर दया नहिं सिंह दिल,*
कूकर काग सियाल। (दादूदयाल की बानी भाग–1 पृ. 126)

– *सतगुरु सबद चीन्हे बिना,*
ज्यो पछिन महँ काग। (सं.बा.स. प्रथम भाग पृ. 115)

4.2.7 **गाय** (इन्द्रियाँ

– *काल्हि जुतेरी बन्सरिया छीनी कहा चरावै गाइ। (क.ग्र.पृ. 147)*

4.2.8 **बैल** (बोधि चित्त, मन)

– *कील रबाबी बलद परवावज कउआ ताल बजावै (संत कबीर पृ. 96)*

4.2.9 **मृग** (आसक्त मन)

– *सन्तति एक अहेरा लाधा, मिर्गनी खेत सविन का खाधा। (क.ग्र.पृ. 206)*

---

80. संत कबीर – पृ. 181

3.4.3 साधनात्मक-प्रतीक – सिद्ध–नाथों के साधनात्मक प्रतीकों को हिन्दी संतों ने अपनाया। उन्होंने साधना तथा आध्यात्मिक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने हेतु साधनात्मक प्रतीकों को आधार बनाया।

3.4.3.1 सांकेतिक-प्रतीक – सिद्ध–नाथों के समान संतों ने प्राणायाम, ध्यान, ब्रह्मरन्ध्र, कुण्डलिनी, अमृत, गगन–मण्डल, उरध–उरध आदि का प्रतीकात्मक प्रयोग किया। नाथों की परिपाटी का अनुसरण करते हुए संत कबीर ने गगन मण्डल को ब्रह्मरन्ध्र का प्रतीक माना है तथा वक नालि को सुषुम्ना का प्रतीक माना है – अवधू गगन मण्डल धन कीजैं।

अमृत झरै सदा सुख उपजै।

बंक नालि रस पीवै। (क.ग्र.–पृ. 110/70)

गंगा, यमुना, सरस्वती, इड़ा–पिंगला तथा सुषुम्ना का प्रतीक है। यथा –

गंग जमुन सरसुती मिलावै।[81]

संतों ने सिद्धों–नाथों के समान सूर्यचन्द्र को इडा–पिंगला का प्रतीक मानते हुए कहा है –

मिलि चांद सुरज दोउ घर आया।[82]

3.4.3.2 पारिभाषिक-प्रतीक – सिद्ध–नाथों का अनुसरण करते हुए संतों ने शून्य, परमपद, अनहद, सुरति–निरति, सहज इत्यादि को पारिभाषिक प्रतीक रूप में निरूपित किया है। यथा –

सबदअनाहद उपजै जहाँ सुषमन रंग लगावै तहाँ।

तहाँ अनहद बाजै अद्भुत खेल दीपक जलै बाति बिन तैल।[83]

शून्य का ब्रह्म के प्रतीक रूप में वर्णन देखिये –

सुनन तें नित तारी लावो, सूझि है निर्गुन।[84]

3.4.3.3 संख्यात्मक-प्रतीक – सिद्ध–नाथों के संख्यात्मक प्रतीकों को संतों ने आत्मसात किया। कतिपय उदाहरण देखिये –

नाइक एक बनिजारे पाँच

बैल पचीस कौ संग साथ।

नव बहिया दस गौनिआहि,

81. यारी साहिब की रत्नावली – वेलवेयिर पेस प्रयाग, पृ. 8
82. उपरिवत् – पृ. 14
83. दादू वाणी – मगल दास पृ. 406
84. यारी साहबकी रत्नावली पृ. 5/15

कसानि बह तरि लागे ताहि।

सात सूत मिल बनिज कीन्ह,

कर्म पयापौ संग लीन्ह।

तीन जगाती करत रारि।

चल्यौ है बनिज बाबनज झारि।[85]

प्रस्तुत पद्य में बंजारे पंच, पांच इन्द्रियो, पच्चीस बैल–पचीस प्रकृतियों, सात सूत–रस, रक्त, मांस, वसा, मज्जा, अस्ति एवं शुक्र के तथा तीन जगाती–सत्, रज, तम के प्रतीक है।

संत रैदास ने भी पाँच की संख्या प्रतीक द्वारा मनुष्य में पाये जाने वाले पंच विकारो। अवगुणों की ओर संकेत किया है–

पंच संगी मिलि पीड़यो प्रानियां।

जाय न सक्यो वैराग भागा। (संत रैदास–योगेन्द्र सिंह पु. 167)

पाँच इन्द्रियाँ पाँच कर्मेनिद्रयाँ व चार अन्तः करण वृत्तियाँ मिलकर चौदह भवन कहलाती हैं इन्हीं की ओर संकेत करते हुए संत–प्रवरदादू कहते हैं –

काया माहै चौदह भवन।[86]

सारांशतः यही कहा जा सकता है कि सिद्ध–नाथों के प्रतीक विधान को हिन्दी संतों ने आत्मसात किया। इसमें अपने मौलिक चिन्तन को समाहित करके संतों ने परवर्ती साहित्य के लिए प्रतीकों की अनमोल विरासत तैयार की है।

6.4 सिद्ध-नाथ एवं संतों के अलंकार-विधान का वैशिष्ट्य

6.4.0 अलंकार साहित्याभूषण होते हैं। वस्तुतः अलंकारों का कार्य काव्य में रस, रूप, गुण, भाव एवं क्रिया सौन्दर्य का अधिक उत्कृष्टता के साथ भान करना है। सिद्ध–नाथ एवं संतों के काव्य में निहित अलंकार विधान के वैशिष्ट्य निरूपण से पूर्व अलंकारशब्द का अर्थ स्वरूप, भेद इत्यादि को जानना आवश्यक होगा।

6.4.1 अलंकार शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा – अलंकार शब्द 'अलम्' उपपद 'कृ' धातु से संज्ञा अर्थ में या करण अर्थ में धन प्रत्यय होकर बना है। इस प्रकार इसकी दो प्रकार की व्युत्पत्ति होगी– अलंकरोतीत्यलंकारः और 'अलङ्क्रियतेऽनेन इत्यलंकार' अर्थात् जो अलंकृत करे अलंकार कहलाते हैं अथवा जिनके द्वारा अलंकृत किया जाय उसे अलंकार कहते हैं।[87]

85. संत साहित्य– पृ. 358 से उद्धृत।
86. दादू वाणी – मंगल दास पृ. 552
87. वृहत साहत्यिक निबन्ध पृ. 93

आचार्य शुक्ल का मत है – 'भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में सहायक होने वाली युक्ति ही अलंकार है।[88]

मूलतः अलंकार काव्य में चारूता एवं आकर्षण को उत्पन्न कर उसे अधिक प्रभावी एवं अधिक विशिष्ट बनाने में सहायक होते हैं। इसी कारण कवि अपने काव्य में सौन्दर्य, बिम्ब, प्रेरणा, सजीवता व रोचकता एवं चमत्कार लाने हेतु अलंकारों को प्रयुक्त करता है।

6.4.1.1 अलंकारों का वर्गीकरण – आचार्य भामह ने सर्वप्रथम अलंकारों का वर्गीकरण, शब्दालंकार एवं अर्थालंकार के रूप में किया है। आचार्य ने लिखा है कि जो अलंकार शब्द का अलंकरण करता है, वह शब्दालंकार है और जो अर्थ का अलंकरण करता है वह अर्थालंकार कहा जाता है।[89]

इनके अतिरिक्त अलंकारों का एक तीसरा प्रकार भी है, जो 'उभयालंकार' नाम से जाने जाते हैं। 'उभय' द्वि संख्या वाची शब्द है, अतः जहाँ कही काव्य में दो अलंकार वहाँ 'उभयालंकार' होता है। चाहे वे दोनो ही शब्दालंकार हो अथवा अर्थालंकार अथवा एक शब्दालंकार व दूसरा अर्थालंकार दो से अधिक अलंकार भी किसी पद में आ सकते हैं, दो तो न्यूनतम सीमा स्पर्शक है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी इसी व्युत्पत्ति को उचित ठहराया है।[90]

सामान्यतः इन्हीं तीनों वर्गों के अन्तर्गत अलंकारों के विवेचन की परिपाटी सर्वमान्य रही है।

अब हम हमारे आलोच्य साधकों–संतों के अलंकार विधान पर प्रकाश डालेंगे।

6.4.2 सिद्ध-नाथ : अलंकार-विधान – सहज जीवन में विश्वास करने वाले सिद्ध–नाथ काव्य क्षेत्र में भी सहजता को ही प्रमुखता प्रदान करते हैं। पाण्डित्य प्रदर्शन अथवा काव्य–सौन्दर्य में गुणात्मक वृद्धि हेतु अलंकारों की झड़ी लगा इन्होंने अपने काव्य को बोझिल नहीं होने दिया है। इनका साहित्य (काव्य) सर्वथा अलंकारों से शून्य नहीं है वरन् हमें इसमें अलंकारों का सुन्दर निरूपण भी दिखाई देता है। सिद्ध–नाथ साहित्य में निम्न अलंकारों का सुन्दर प्रयोग अवलोकनीय है।

4.2.1 अनुप्रास – जहाँ वर्ण या वर्ण समूह की आवृत्ति हो, वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। सिद्ध–नाथों में इसके अनेक उदाहरण दिखाई देते हैं –

---

88. रस मीमासा – शुक्ल पृ. 292–93 (संस्करण 2017 संवत्)
89. रीति कालीन अलंकार साहित्यका शास्त्रीय विवेचन – डॉ. ओम प्रकाश शर्मा पृ. 538
90. वाड्मय विमर्श – विश्वनाथ प्रसाद पृ. 368–70

2.1.1 **छेकानुप्रास** –

नदी ना ना तउ समुद्र एक। (दोहा कोश – पृ. 85/4)

जप तप जोगी संजय सार। (संत सुधासार – पृ. 34/35)

2.1.2 **वृत्त्यनुप्रास** –

– सब समरस स्वभाव से समुझि अनुत्तर ज्ञान। (दोहा कोश पृ. 53/48)

– महंमद महंमद न करि काजी महंमद का विषय विचार। (सबदी–शार्दूल सिंह पृ. 4)

2.1.3 **श्रुत्यनुप्रास** –

– एक स्थान से उच्चरित होने वाले वर्णो की आवृत्ति को श्रृत्यनुप्रास कहते है।'[91]

– सप्त धातु का काया पींजरा। (दन्त्य वर्ण बाहुल्य)– (गोरखनाथ)

2.1.4 **अन्त्यानुप्रास** – जिसमें स्वर की प्रधानता हो।[92]

चारि वासे गडिला रे दिआँ चञ्चाली।

ताहिं तोलि शबरो डाहक एला कान्दइ सगुण शिआली। (सहज सिद्ध–पृ. 204 से)

नव नाड़ी बहोतरि कोठा, ए अष्टांग सब *झूठा*। (सबदी–शार्दूल सिंह जी पृ.35)

4.2.2 **उपमा** – जहाँ उपमेय और उपमान की किसी प्रकार धर्म या क्रिया अथवा प्रभाव में समानता हो वहाँ उपमा अलंकार होता है।[93] यथा

एहि सो सरस्वती प्रयाग एहि गंगा सागर,

वाराणसी प्रयाग एहि सो चन्द्र दिवाकर। (दोहा कोश – पृ. 23)

सिद्ध ने प्रस्तुत दोहे मे देह को सरस्वती, गंगा, वाराणसी, प्रयाग, सूर्य एवं चन्द्रमा के समान बता उपमा अलंकार के सौन्दर्य को फैलाया है।

अगनि कुंड समो नर, धृत कुंड समो नारी। (नाथ सिद्धों की बानिया– पृ.119)

यहाँ नर को अग्नि–कुंड व नारी को धृत–कुंड के समान बताया है।

---

91. साहित्य और समीक्षा – गुलाबराय पृ. 84
92. उपरिवत्
93. उपरिवत् – पृ. 87–88

4.2.3 **रूपक** – जहाँ पर उपमेय पर उपमान का आरोप कर दोनों को एक कर दिया जाता है, वहाँ रूपक अलंकार होता है।[94]

एहुमण मेल्लह पवन तुरंग सुचंचल

सहज सहावे णे वसइ होइ जिऩ्चल। (दाहाकोश– बागची पृ. 25)

द्वारा सिद्धों ने घोड़ा सवार का रूपक प्रस्तुत किया है।

नाथों ने शब्द योग के प्रसंग में ताला–कुंजी का रूपक बनाया है–

सबदहि ताला सबदहि कूंची, सबदहि सबद समाया। (सबदी–शार्दूल सिंह जीपृ. 7)

मन मस्त हस्ती मिलाइ अवधू तब लूटिलै अषै भंडार। (उपरिवत् पृ. 21)

द्वारा मन रूपी हाथी को वश में रखने की चर्चा करते हुए रूपक अलंकार का सुन्दर निरूपण किया है।

4.2.4 **विरोधाभास** – सिद्ध–नाथों ने विरोधाभास अलंकार का प्रयोग करके अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है। सिद्ध सरहपाद ने चित्तका खुलने पर स्थिर होना व बंधने पर दौड़ना बता करके विरोधाभास की सृष्टि की है–

बद्धो धवै दस दिसहि मुक्तो निश्चल स्थाय। (दोहाकोशराहुल जी पृ.6)

4.2.5 **उदाहरण** – इसमें साधारण बात का विशेष से समर्थन किया जाता है और वाचकशब्द रहते हैं।[95]

णउण विआर करन्तहि णउ कत्थवि परमात्थ,

जिय कलतरू सोहणेहि, णउ पाविज्जइ सारू। (दोहाकोश–राहुल जी पृ. 32)

4.2.6 **दृष्टांत अलंकार** – जहाँ उपमेय व उपमान वाक्य में विभिन्न, पर मिलते जुलते धर्म के द्योतक शब्दों द्वारा बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव दिखाया जाय वहाँ दृष्टांत अलंकार होता है।[96]

जिभि जल पूर्ण गोष्पद सोइ सूख जावै
तिमि ना संपति दृढ़ चिन्त भी संपत्ति सूख जायौ (दोहा कोश–राहुल जी पृ. 87)

4.2.7 **अतिशयोक्ति** – जहाँ प्रस्तुत की अत्यंत प्रशंसा के लिए उसे साधारण से ऊँचा दिखाया जाय, वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है।[97] यथा–

94. साहित्य और समीक्षा – पृ. 90
95. साहित्य और समीक्षा– पृ. 100
96. उपरिवत – पृ 99
97. साहित्य ओर समीक्षा – पृ 98

नाथ बोले अमृतवाणी, बरिषेगी कंबली भीजेगा पाणी। (गोरखबानी पृ. 141)

चींट्यां परबत ढोल्या रे अवधू, गायां बाघ बिडाऱ्या जी। (गोरखबानी पृ. 154)

4.2.8 विभावना – जहाँ कार्य कारण के सम्बन्ध में कोई असाधारण कल्पना की जाय, वहाँ विभावना अलंकार होता है।[98]

अस्थानं बिनु नगी अलेष दरवाजा सत संतोष वजीरं। (नाथ सिद्धों की बानियाँ–पृ.70)

सिद्ध–नाथों द्वारा प्रयुक्त अलंकारों का विकास संत साहित्य में हुआ।

6.4.3 हिन्दी-संत : अलंकार-विधान – संतों के अलंकार विधान में सिद्ध–नाथों की परम्परा का अनुसरण हुआ है। संत–साहित्य में सप्रयास अलंकारों की झड़ी नहीं लगाई है, वरन् वे अनायास ही काव्य में प्रवेश करके उसके सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं तथा साथ ही काव्य को अर्थगत वैशिष्ट्य भी प्रदान करते हैं।

4.3.1 अनुप्रास

4.3.1.1 छेकानुप्रास

– *मूंड मुडाय फूलि काबैठे, कांननिपांहिरि मंजूसा। (कबीर वाड़्मय खण्ड 2 सबद, पृ. 130)*

– *मनसा मन्दिर धूप धुपाइये।(संत रैदास सं योगेन्द्रसिंह,पृ. 196)*

4.3.1.2 वृत्त्यनुप्रास

कठिन कलि काल जंजाल जुग जवनिका।

ज्ञान वैराग्य दृढ़ भगति नाही –(संत रैदास–योगेन्द्र सिंह, पृ. 164)

साचा सद्‌गुरू जेमिले सब साज सँवारे। (श्री दादूवाणी–ना.दा–पृ.3/11)

4.3.1.3 श्रुत्यानुप्रास

आकास गगन पाताल गगन है चहु दिसि गगन रहाइले। (कण्ठ्य) (क ग्र. पृ. 268)

4.3.1.4 अन्त्यानुप्रास

हरि हिरदै रै अनत कत चाहौ

भूलै भरम दुनी कत बाहौ। (क. ग्र. – पृ. 144)

देह छुटै मन में रहै, सहजो जैसी आस।

देंह जनम जैसो मिलै, जैसे ही धर बास। (स. बा. स. प्रथम भाग–पृ. 155)

---

98. साहित्य और समीक्षा – पृ. 102

4.3.2 उपमा –

सद गुरू सबदी लागिया, नावक का सा तीर,

कसकत है निकसत नहीं, होत प्रेम की पीर। (स. बा. स.–पृ. 134)

शून्य सरोवर मीन मन, नीर निरंजन देव,

दादू यहु रस विलसिये, ऐसा अलख अभेद।(श्री दादूवाणी–भूमिका पृ. 12)

4.3.3 रूपक– सिद्ध–नाथों की परिपाटी को अपना कर कबीर ने ताला–कुंजी का रूपक निरूपित किया। इसका प्रयोग कबीर ने ध्यान को कुभंक द्वारा त्रिकुटी में केन्द्रित करने के प्रसंग में किया है। यथा –

षहचक्र की कनक कोठरी, बस्तभाव है सोई,

ताला कूँची कुलफ के सागै, उधड़त बार न होइ। – (क.ग्र.पद – 23)

संतों ने रूपक के माध्यम से विवाह, जुलाहे, घोड़ा–सवार इत्यादि का वर्णन करके सिद्ध–नाथों की परिपाटी को आगे बढ़ाया है।

काया कठिन कमान है, खाँचे बिरला कोइ।

मारै पंचौं मृगला, दादू सूरां सोइ। – (श्री दादूवाणी – पृ. 387/36)

4.3.4 विरोधाभास – सिद्ध–नाथों के समान संतों ने भी विरोधाभास अलंकार का प्रयोग बहुतायत मात्रा में किया है।

विरह जलाई में जली, जलती जल हरि जाऊं

मो देख्यां जल हरि जलै, संतो कहां बुझाऊ। (क. ग्र. पृ. 10/39)

दादू अमृत को विष, विष को अमृत फेरि धरै सब नाम,

निर्मल मैला, मैला निर्मल जाहिगें किस ठाम। – (श्री दादू वाणी पृ. 443/12)

4.3.5 उदाहरण –

ज्यूं जल पैसे दूध में ज्यू पाणी में लूण,

ऐसे आत्म राम सौ, मन हठ साधे कूंण। – (श्री दादू वाणी पृ. 47/75)

सो सांई तन मै बसै, भ्रम्यौ न जाणौ तास।

कस्तूरी के मृग ज्यूं फिरि सूंधै धास। (क. ग्र. पृ. 81/53)

4.3.6 दृष्टांत – संतो ने दुरूहतम दार्शनिक तथा आध्यात्मिक अनुभूतियों को व्यक्त करने तथा उन्हें बोधगम्य बनाने हेतु दृष्टान्तों का प्रयोग किया है। इनके दृष्टांत जन–जीवन से सम्बन्धित है। यथा

तोही–मोहि मोही–तोही अन्तर ऐसा,

कनक कटिक जल तरंग जैसा। – (संत रैदास योगेन्द्रसिंह पृ. 168)

कुम्भै बंधा जलु रहै, जल बिनु कुम्भ न होइ

गिआन का बधा मनु रहै, गुरू बिन गिआन न होइ। (आदि ग्रंथ–महला–1 गुरू नानक)

4.7.7 अतिशयोक्ति –

सपनेहूँ बरड़ाइ कै, जिह मुख निकसै राम।

ताके पा की पनही, मेरे तन कौ चाम। (क. ग्र. पृ. 159)

एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढ़ा सिंध चरावैगाई।

पहलै पूत पीछे भई माइ, चेला के गुरू लागै पाइ।

जलकी मछली तरवर ब्याई, पकड़ि बिलाई मुरगै खाई। (क. ग्र. पृ. 91)

4.3.8 विभावना– नाथों के समान संतों ने भी विभावना अलंकार का सुन्दर निरूपण किया है।

बिनु पगु निरत करो तहाँ, बिनु कर दै दै तारि।

बिनु नैनन छवि देखना, बिनु सरवन झनकारि। (स.बा.6–प्रथम भाग पृ. 109)

घन बादल बिन बरषि है, निरर निर्मल धार। (श्री दादू वाणी पृ. 111/113)

– दादू नैन बिन देखबा, अंग बिन पेखबा।

रसन बिन बोलबा, ब्रह्म सेती।

श्रवन बिन सुनबा, चरण बिन चालबा।

चित्त बिन चिन्तबा, सहज ऐती। (श्री दादू वाणी पृ. 127/192)

सारांशत सिद्ध–नाथों के अलंकार–विधान को संतो ने आत्मसात किया। ऐसा करके अलंकार परम्परा को संतों ने आगे बढ़ाया। अलंकारों का उचित प्रयोग करके इनके काव्य में काव्य–सौन्दर्य के साथ ही साथ अर्थ वैभव की भी श्री वृद्धि हुई है।

6.5 सिद्ध-नाथ एवं संतों का छन्दोविधान

6.5.0 भावनाओं की प्रबल वेगवती धारा को संयत एवं नियंत्रित करने तथा अनगढ़ अभिव्यक्तियों को सुधड़ आकृति प्रदान करने में छन्दों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। छन्द सुदृढ़ कवच की भाँति कवित्व को आच्छादित कर उसे स्थायित्व और दीर्घ जीवन प्रदान करते हैं।

सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी–संतों के काव्य में निहित छन्द विधान के अध्ययन से पूर्व छन्द का अर्थ, परिभाषा, भेद आदि का सामान्य परिचय प्राप्त कर लेना अपेक्षित होगा।

6.5.1 छन्द व्युत्पत्ति एवं अभिप्राय – आचार्य पाणिनी ने छन्द की व्युत्पत्ति 'चदि' धातु से मानी है 'चदि आह्लाद नै दीप्तौच' के अनुसार जो हर्ष और दीप्ति प्रदान करता है वह छन्द है।[99]

श्रीमद् भगवद्गीता में छन्द के दो अर्थ मिलते है एक, जो इसे वेदों का पर्याय मानता है तथा दूसरा, उसके शास्त्रीय स्वरूप को स्वीकार करता है।[100]

धीरे–धीरे श्रीमद् भगवद्गीता का शास्त्रीय अर्थ विकसित होता चला गया।

हिन्दी साहित्य कोश में छन्द की परिभाषा इस प्रकार दी गई है – अक्षर – अक्षरों की संख्या का क्रम, मात्रा, मात्रा गणना तथा यति–गति आदि से सम्बंधित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य रचना छन्द कहलाती है।[101]

6.5.2 छन्द का उद्देश्य – कवि की वाणी को अमृत तुल्य बनाते हुए उसे अमरत्व प्रदान करना ही छन्द का प्रमुख उद्देश्य है। आचार्य द्विवेदी छन्द को आवेग का वाहन व एक चित्त के अनुभव को अनेक चित्तों में अनायास संचरित करने वाला महान साधन माना है।[102]

6.5.3 प्राचीन एवं अर्वाचीन परिभाषाओं के आधार पर छन्द के प्रमुख रूप से दो भेद किए गए हैं –

6.5.3.1 परम्परागत शास्त्रीय छन्द – इसके अन्तर्गत सभी मात्रिक एवं वार्णिक छन्द शामिल किये जा सकते हैं।

6.5.3.2 संगीत प्रधान भावच्छन्द – इसके अन्तर्गत वे रचनाएँ आती है जिसकी यतियां संगीत की ताल–लय के आधार पर निर्धारित की जा सके।

हमारे आलोच्य साधक–संत मूलतः साधक थे। अतः इन्होंने काव्य में छन्दों पर विशेष ध्यान नहीं दिया है। इनका लक्ष्य तो मानव को मंगलमार्ग का अनुयायी बनाना था। अतः इसी को ध्यान में रखते हुए हम इनके छन्द विधान को आलोकित करेंगे।

6.5.4 सिद्ध-नाथ : छन्दोविधान – सिद्ध–नाथ मूलतः साधक थे। साहित्याकाश के सूर्य–चन्द्र बनने की अभिलाषा मन में संजों कर उन्होंने काव्य–सृजन नहीं किया। उन्होंने तो सत्य–ज्ञान का निरूपण, रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति एवं मिथ्याडम्बरों को खोखला करके दिग्भ्रांत जनता को ज्ञानोपदेश देने हेतु काव्य को माध्यम बनाया। अतः भावाभिव्यक्ति एवं लय–ताल में जब जो छंद बंध गया, उसे उन्होंने स्वीकार किया। अतः उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर ही नाथ–साहित्य में निहित छन्द–विधान को समझा

99. पाणिनीधा पाठ ग्वादिगण
100. गायत्री छन्दसामहम् – गीता 10/35
101. हिन्दी साहित्य कोश – भाग 1 वर्मा पृ. 321
102. साहित्य का मर्म – लेख ज्ञान शिखा पत्रिका – 'अक्टूबर 1980, पृ. 41–46

जा सकता है। यहाँ हम सिद्ध–नाथों के साहित्य में निहित छन्दों को उदाहरण सहित प्रस्तुत करेंगे। यथा–

5.4.1 **महानुभाव** – (12 मा.)

–सरह भणइ महु (कि) वक्करमि। (दोहा कोश – राहुल जी पृ. 6/20)

आओ देवी बैसो। द्वादिस अंगुल पैसो। (गो.बा.सबदी–शार्दूल सिंह पृ. 41/155)

5.4.2 **हाकलि** – (14 मा. + अंत में 5 हो)

नाद नाद सब कोइ कहै। नादहि ले को विरला रहै।

नाद बिंद है फीकी सिला। जिहिं सध्या ते सिधै मिला। (सबदी–पृ. 48/181)

5.4.3 **कज्जल** – (14 मात्राएँ तथा अंत में गुरू, लघु (S,1) हो)

काया मधे कै लष चंद,पहुप मधे कहा बसै गंध। (हिन्दी–साहित्य का छन्दोविधान पृ. 114 से उद्धृत्त)

5.4.4 **चौपई** (15 मात्र)

इक लष सींगणि नौ लष बाण।

बेध्या मीनं गगन अस्थान।

बेध्या मीन गगन कै साथ।

सति सति भाषंत श्री गोरषनाथ। – (सबदी – पृ. 34/127)

5.4.5 **चौबोला** (15 मा., 8–7 पर यति तथा अंत में (1S)

अरध जाता उरधै धरै, कांम दगध जे, जोगी करै। (सबदी – शार्दूल सिंह जी पृ. 6/17)

5.4.6 **चौपाई** (16 मात्राएँ)

– एक बंद नर नारी रीधा

ताही मैं सिध साधिका सीधा। [103]

5.4.7 **रूपमाला** – (24 मा. तथा अंत में S1 हो)

अचल कुल दल समुद साएर अचले दश दिशि धाइ।

एहे बाअें बिलसइ सिद्धा पाड़गु धरिआ बुलाइ।(दोहा कोश–लुई गीति पृ. 368)

5.4.8 **मुक्तामणि** – (25 मा. तथा अंत में SS हो)

अधराधरे विचारिया, घर याही मैसोई।

---

103. हिन्दी साहित्य का छन्दो विवेचन पृ. 115 से लिया गया।

5.4.9 **विष्णुपद** (26 मा. तथा अंत में ऽ हो)

जइ तुम्ह भुसुकु अहेरी जाइब मरिहसि पंच जना।

णलिणीवन पइसन्ते होहिसि एक्कु मणा। (हि. का. धाा. पृ. 132)

यहा प्रथम पंक्ति विष्णुपद की है तथा दूसरी सुखदा छन्द की।

सिधे सिध मिल्या रे अवधू बोल्या अरू लाधा। (गो. बा. सबदी–शार्दूल सिंह पृ. 9/28)

5.4.10 **सरसी** – (27 मा. तथा अंत में ऽ।)

– मण निम्मल सहजावत्थे गउ अरिउल नाहिं म्पवेस।

एतें चीएहु फुड सथाविअउ, सो जिण नाहिं विसेस।(दोहा कोश पृ.12/45)

कौण देस स्यूं आये जोगी, उतर हमारा भाव।

धरती हमारी बहण भाणजी पापी के सिरि पाव।–(सबदी–शार्दूल सिंह पृ. 70/266)

5.4.11 **सार** (28 मा.+अंत में ऽऽ)

– सरह भण्इ वर सून गोहाली की मो दुठ बलन्दे। (हि.का.धा.पृ.18)

5.4.12 **सोरठा** (11,13 पर यति त्र 24 मा.)

खेतु पीठ उपपीठ। एतथु भमइ परिव्रओं

देहा सरसिअ तित्थ। मइ सुह अराणा ण दिव्रओं।–(सिद्ध साहित्य–पृ. 295)

एका एकी सिध नाउं, दोई रमति साधवा।

चारि पंच कुटुम्ब नांउ दस बीस ते लसकरा। (सबदी–शार्दूल सिंह पृ. 48/179)

5.4.13 **दोहा** (13,11 पर यति त्र 24 मा.)

– आइण अन्त णा मज्झ णउ। णउ भव णउ णिव्वाण। (सिद्ध साहित्य पृ. 295)
पढ़ि पढ़ि पढ़ि केता मुवा, कथि कथि कथि कहा कीन्ह।
बढ़ि बढ़ि बढ़ि बहु बहु घटि गया, पार ब्रह्मा नही चीन्ह । (सबदी–शार्दूल सिंह पृ.65/248)

5.4.14 **दोहकीय** – (26 मा. 13,13 पर यति)

जोगी च्यंता बीसरै तौ होई अच्यंतहि लीन। (सबदी–शार्दूल सिंह पृ. 64/244)

5.4.15 **उल्लाला** – (15, 13 पर यतित्र 28 मा.)

– दुक्ख दिवाअर अत्थ बिजाइ उव्वइ तरावह सुक्क।(सिद्ध साहित्य पृ. 295)

सारांशतः सिद्ध–नाथों ने भावाभिव्यक्ति हेतु छंदों को सप्रयास काव्य में नहीं उतारा, तभी कहीं–कहीं एक छन्द का प्रवाह कई छन्दों तक फैल गया है और साथ ही इनका साहित्य श्रुति परम्परा से संग्रहित एवं लिपिबद्ध है, जिससे छन्दों में मात्राओं की संख्या में कहीं–कहीं उतार–चढ़ाव साफ झलकता है।

6.5.5 हिन्दी-संतः छन्दो-विधान

संत जन सामान्य से जुड़ाव रखने वाले कवि एवं साधक थे। उन्होंने अनुभूत सत्य को सीधे सरल शब्दों के माध्यम से उतार दिया है। संतो ने काव्य–शास्त्र का अंधानुकरण न करते हुए लोक प्रचलित छंदो को अपनाया जहाँ अनेक स्थलों पर छंदों के नियम भी भंग हुए; किंतु स्वाभाविक वेग के कारण इनका प्रभाव विलक्षण ही रहा।

हिन्दी संतों के छन्द–विधान परभी सिद्ध नाथों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। संतों ने सिद्ध–नाथों में प्रचलित छंदों को विरासत रूप में अपना करके छन्दों की प्राचीन परम्परा को जीवित रखा और उसे परवर्ती संतों तक पहुँचाया।

6.5.5.1 **महानुभाव** – (12 मा.)

काम क्रोध दो उमारे गुरू प्रसाद सब तारे।

कह कबीर भ्रमनासी राम मिले अविनासी।–(कबीर वचनिका–पद 35)

6.5.5.2 **हाकलि** – (14 मा. अंत में ऽ हो)

भूखे भगति न कीजै। यह माला अपनी लीजै।

हौ माँगो संतन रेना। मैं नाही किसी का देना।(क.ग्र. पृ. 314/156)

उपर्युक्त पद्य में हाकलि का स्वतंत्र प्रयोग है; किन्तु इसमें दो पंक्तियाँ अन्य छन्दों की समाविष्ट हुई है

6.5.5.3 **कज्जल** (14 मा. अंत में ऽ।)

चहु दिसि चितवै मुँह पराय।

ले चल भँवरी सिर चढ़ाय।

कहै कबीर ये मन के भाव।

नाम बिना सब जम के दाव। (कबीर वचनिका – पद 152)

6.5.5.4 **चौपई** (15 मा.)

जिहि घटिरमा रहे भरपूरि।

ताकी मै चरनन की धूरि।

जाति जुलाहा मति कौ धीर।

हरषि हरषि गुण रमै कबीर। – (क.ग्र. – पद 124)

6.5.5.5 **चोबोला** (15 मा. + अंत में IS)

उपजी च्यंत च्यंत मिटि गई।

यौ भ्रम भागा ऐसा भाई।

उलटी गंग मेरर कूं चली।

धरती उलटि अकासहि मिली। (क. ग्र. पद 329)

6.5.5.6 **चौपाई** (16 मा. + अंत में SI न हो)

दादू अमली इहि रस माते

राम रसायन पीवत छाके। – (श्री दादू वाणी – पृ. 606/238)

चारि पहर निस भोरा, जैसे तरवर पंखि बसेरा।

जैसे बनिये हाट पसारा, सब जग का सो सिरजन हारा। (क.ग्र.पृ. 121/103)

6.5.5.7 **रूपमाला** (24 मा. + अंत में S1 हो)

नीच पावै ऊँ (च) पदवी, बाजते नीसान।

भजन को प्र (पर) ताप ऐसो, तिरे जल पाषान।

अधम भील अजाति मणिका चढ़े जात बिवांन।

नव लख (नखत)तारो चलै मंडल, चलै ससिहर भांन।(क.ग्र.पृ. 190/301)

6.5.5.8 **मुक्तामणि** (25 मा.+ अंत में S,S हो)

– धन धन झखित धन गयौ सो धन मिल्यौ न आये (रे)

ज्यू वन फूली मालती, जन्म अविरया जाये (रे)–(क.ग्र.–पृ. 200/398)

उपर्युक्त पद में 'रे' छंद से पृथक् है।

6.5.5.9 **विष्णु पद** (16, 10 मा. त्र 26, अंत में S)

मुनि वसिष्ठ से पंडित ज्ञानी सोध के लगन धरी।

सीता हरन मरन दसरथ का बन मे विपति परी।

कहँ वह फंद कहां वह पारधि कहँ वह मिरग चरी।

सीया का हरि लैगो रावन सुबरन लंक जरी। (क. व. पद–114)

6.5.5.10 **सरसी** (27 मा. + अंत में S,1)

–कहै कबीर मिलै जे सांई मिलि करि मंगल गाइ। (क. ग्र. – 192/206)

6.5.5.11 **मार** (28 मा.+ अंत में SS)

आंखे मद्धै पाँखी चमकै पाँखी मद्धै द्वारा।

तेहि द्वारे दुरबीन लगावे उतर भौ जल पारा। (क.व.पद 30)

6.5.5.12 **सोरठा** (11,13 पर यति)

– कामिणि मींनीं पाणि की, जे छेड़ौ तौं खाइ।

जे हरि चरणा राचिया, तिनके निकट न जाइ। (क. ग्र. 39/2)

6.5.5.13 **दोहा** (13–11 परयति + अंत लघु)

–मारग जोवै विरहिणी, चितवै पिय की ओर।

सुन्दर जियरे जक नहीं, कल न परत निस भोर। –(स.बा.स. प्रथम पृ.103)

मोह मिरग काया बसै, कैसे उबरे खेत।

जो बोवै सोइ चरै, लगै न हरि सूँ हेत। (उपरिवत् पृ. 150)

6.5.5.14 **दोहकीय** (26 मा.)

– दरसन सांभि का कीजियै, जो गुन नहीं होत समान।

सीधवनीर कबीर मिल्यौ, है फटक न मिलै परवान। (क.ग्र.–पृ. 97/28)

6.5.5.15 **उल्लासा** – कहै कबीर ब्यंदहु नरा, ज्यूँ जल पूर्या सकल रस। (क. ग्र. पृ. 56/9)

सम्यक विवेचन से स्पष्ट होता है कि हिन्दी–संतों ने सिद्ध–नाथ साहित्य में प्रयुक्त छन्दों का अनुसरण किया। संतों की छंद योजना के विषय में रामखेलावन पाण्डेय का मत है – कहीं–कहीं गति–यति का सम्यक् रूपेण न प्राप्त होना उनकी छन्द शास्त्रीय उपेक्षा वृत्ति का परिचय देता है। उन्हें इतना अवकाश नहीं था कि वे अभिव्यक्ति की बाह्य सज्जा पर भी ध्यान देते। वे आध्यात्मिक जगत् के प्राणी थे, अध्यात्म ही उनका साध्य था और अध्यात्म ही उनका साधन था।[104] उक्त परिभाषा से स्पष्ट होता है कि संतों ने पिगंल शास्त्र के नियमों की अनदेखी भी की है तभी तो उनके काव्य में छन्द शास्त्र का सम्यक निरूपण नहीं हुआ; किन्तु सिद्धनाथों से लेकर संतों तक एक परम्परालीक अवश्य दिखाई देती है।

----

104. मध्ययुगीन सत साहित्य – पृ. 404

उपसंहार

7.0 सिद्ध–नाथ एवं प्रमुख हिन्दी–संतों के काव्य के दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक पक्षों एवं शिल्प–विधान का सम्यक् निरूपण द्वारा हमारे आलोच्य संतों–साधकों की युग के प्रति सजगता को सहज ही अनुभव किया जा सकता है। सम्पूर्ण सृष्टि में मनुष्य ही सर्वाधिक संवेदनशील प्राणी है। इसी संवेदनशीलता ने उसकी मानसिक प्रक्रिया को और अधिक जटिल बना दिया है। उसकी पीड़ा एकाकी नहीं; वरन् उसके कई फलक हैं यथा–वैयवित्तक, सामाजिक, धार्मिक इत्यादि। जीवन के विविधिता के मध्य मानव की सहज जीवन जीने की अभिलाषा कसमसाने लगी। जीवन की विविधता के मध्य संतुलन बनाये रखना ही मानव का लक्ष्य है। हमारे आलोच्य संतो–साधकों ने सजग युग कलाकार की भाँति इस बहुफलकीय पीड़ा को महसूस किया तथा बहुत हद तक उसे स्वयं सहा। अतः उन्होंने सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं वैयक्तिक पीड़ा का हरण करने के लिए एक दिग्विजयी अभियान चलाया।

प्रस्तुत शोध–प्रबंध पीठिका–भाग में हमने निर्गुण मत की चिन्तन पृष्ठभूमि का चित्रण किया है। इसके अन्तर्गत वैदिक संस्कृति, उपनिषद् चिन्तन, बौद्ध–जैन आन्दोलन, सिद्ध–नाथ सम्प्रदाय, रसेश्वर मत, दक्षिण भक्ति आन्दोलन, चार वैष्णव आचार्य, रामानन्द, सूफी इस्लामी चिन्तन तथा सूफीवाद की मूल विचारधारा को आलोकित करते हुए निर्गुण मत की प्राचीन परम्परा को शृंखला बद्ध किया है।

प्रथम अध्याय में सिद्ध मत : उद्‌भव, विकास एवं सैद्धान्तिक स्वरूप तथा साहित्य को आलोकित किया है। इसमें बौद्ध–धर्म का विकास, वज्रयान / सहजयान से सिद्धों की उत्पत्ति, सिद्ध साधना–पद्धति का निरूपण किया है। सिद्ध साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों के अन्तर्गत विषयगत एवं शैलीगत पक्षों को प्रस्तुत किया है।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत नाथमतः उद्‌भव, विकास, सैद्धान्तिक स्वरूप एवं साहित्य को उजागर करने का प्रयास किया है। इसके अन्तर्गत हमने नाथ शब्द की निरुक्ति व निर्दिष्ट मत का उल्लेख किया है। मत्येन्द्र नाथ व गोरख नाथ का परिचय देते हुए गोरख नाथ को नाथ मत का प्रवर्तक सिद्ध करके, उनके व्यवित्तत्व, कृतित्व एवं

विचारों को स्पष्ट किया है। हमने कौल कापालिक एवं हठयोग का वर्णन करते हुए उसका नाथ मत से सम्बंध बताया है। सहज सम्प्रदाय और नाथमत के स्वरूप एवं सिद्धांतों को आलोकित किया है। अंत में नाथ साहित्य की विषयगत एवं शैलीगत प्रवृत्तियों को वर्णित किया है।

तृतीय निर्गुण मत की चिन्तन पृष्ठभूमि, सिद्ध–नाथ मत के विवेचन के उपरांत हमने चतुर्थ, पंचम, षष्ठ अध्याय में सिद्ध–नाथों के दार्शनिक धार्मिक सामाजिक, चिन्तन तथा शिल्प–विधान से प्रभावित हिन्दी–संतों की विचारधारा को आलोकित करने का प्रयास किया है। जिन्हें सारांशतः हमने निम्नस्थ बिन्दुओं के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है।

7.1 क्रांतिकारी आन्दोलन की कड़ी

मानवीय अस्तित्व की मूल चेतना में ही विद्रोह के स्फुल्लिंग होते हैं। समाज में निरन्तर बढ़ते भेदभाव धार्मिक संकीर्णता, सामाजिक असमानता, भौतिकवादी प्रवृत्ति तथा कृत्रिम आरोपित मूल्यों के नीचे कसमसाते विशुद्ध मानव की खोज ही इस क्रांति की प्रेरक बनी।

सिद्ध–नाथ एवं प्रमुख हिन्दी–संतों ने अपने युगान्तरकारी व्यक्तित्व के अनुरूप ही अपने–अपने समय में क्रांति की मशाल प्रज्वलित की। क्रांतिकारी वही हो सकता है तथा वही युग को बदलने की शक्ति रखता है, जो पुराने ध्वंसावशेष पर व्यवस्था की नई अधिरचना खड़ी करे। सिद्ध–नाथों ने अपने समय में गर्हित विचारधारा को तोड़कर नवीन समरसता वादी, समतावादी व्यवस्था की स्थापना की तथा हिन्दी संतों ने अपने पूर्ववर्ती साधकों का अनुसरण करते हुए तद्युगीन समाज में क्रांति का शंखनाद किया।

प्रस्तुत प्रबंध के चतुर्थ एवं पंचम अध्याय में सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी संतों के क्रांतिकारी व्यक्तित्व के दर्शन सहज ही किए जा सकते हैं। 'सिद्ध–नाथ और हिन्दी–संतों का धार्मिक चिन्तन' के अन्तर्गत हमारे आलोच्य संतों ने क्रांतिकारी की भाँति तद्युगीन प्रचलित विविध मत–मतान्तरों एवं धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता का प्रतिकार किया है तथा सर्वकल्याणकारी मानवधर्म को प्रतिष्ठित किया है। उन्होंने भक्ति के संकीर्ण पटों को सामान्य जन के सम्मुख खोलकर रख दिया।

षष्ठ अध्याय में शिल्प–विधान के अन्तर्गत भी सिद्ध–नाथ एवं संतों ने जन–भाषा अथवा लोक–भाषा को काव्य का माध्यम बना करके एक क्रांतिकारी कदम ही उठाया।

'सिद्ध–नाथ और संतों का सामाजिक चिन्तन' के अन्तर्गत हमारे आलोच्य संतों ने विद्रोह व व्यंग्य को अपना हथियार बनाया है। सिद्ध–नाथों के समान संतों ने जाति–व्यवस्था (जन्माधारित) को समाज के विकास का सबसे बड़ा रोड़ा माना है। उन्होंने कर्माधारित जाति व्यवस्था की वकालत की है तथा ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय एवं शूद्र सभी

को उनके कर्त्तव्यों का भान कराया है। इन क्रांति दृष्टा साधकों ने समाज में समानता का शंखनाद करते हुए सभी को सांई का जीव घोषित किया है। तद्युगीन संकीर्ण मनोवृत्ति के शिकार ब्राह्मण–मुल्लाओं (धर्मनियंता) के चरित्र में निहित स्वार्थ, भोग–विलास, मिथ्या प्रचार, अहंकारी स्वरूप को आलोच्य संतो–साधकों ने आलोकित किया है। ऐसा करके उन्हें भ्रष्ट धर्म–नियंता की पोल खोली है। संतों–साधकों ने धर्मनियंता के थोथे ज्ञान, एवं पोथियों को व्यर्थ सिद्ध कर उन्हें बहा देने का फरमान जारी किया है। हमारे आलोच्य संतो–साधकों ने धर्मनियंताओं (ब्रह्मण–मुल्ला) के छद्म स्वरूप को आलोकित करने के साथ ही सच्चे धर्म–नियंता के पावन स्वरूप का उद्घाटन समाज के सम्मुख किया। सिद्ध–नाथ एवं संतों ने निम्न वर्ग व नारी के अधिकारों की पैरवी कर उन्हें समाज में बराबरी का दर्जा दिलाया।

सिद्ध–नाथ एवं प्रमुख हिन्दी संत एक युग परिवर्तनकारी क्रांति की मजबूत कड़ियाँ थे, जिन्होंने मानव–कल्याण हेतु क्रांति की मशाल को विरासत रूप में पाया और उसे अपनी अगली पीढ़ी के हाथों में सौंपा।

7.2 सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी-संत और निम्न-वर्ग

हमारे आलोच्य साधक–संतों के पैरों में बिवाई भी फटी थी और उन्होंने उसकी पीड़ा को सहा भी था। अतः उनकी वाणी में निम्न वर्ग पर होने वाले अत्याचारों की अकुलाहट स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ती है।

सिद्धों व नाथों में से अधिकांश निम्न मानी जाने वाली जाति के प्रतिनिधि थे तथा अधिकांश हिन्दी संत भी निम्न जाति में उत्पन्न हुए थे। ये समाज में तुच्छ माने जाते थे। इनकी सजग मनोवृत्ति एवं आत्मविश्वास के कारण इन्होंने उच्च वर्ग, ऊंची जातियों (जन्मना) एवं सत्ताधारियों को खुले आम चुनौती दे डाली।

हमारे आलोच्य संतो–साधकों ने दूषित जाति व्यवस्था को खत्म करने के लिए अपने अद्वैत ब्रह्म की संकल्पना विकसित की। ब्रह्म को अनेक मानने में खतरा था; क्योंकि हर जाति या सम्प्रदाय के लोग अपने–अपने ढंग से ईश्वर का स्वरूप गढ़ सकते थे और तब ईश्वर परक भेद के आधार पर समाजिक भेद को न्यायोचित ठहराया जा सकता था। हमारे आलोच्य साधकों ने आध्यात्मिक एकता स्थापित करके सामाजिक समानता की परिस्थितियाँ तैयार की। जब सभी ईश्वर द्वारा निर्मित है तो ऊँच–नीच की भावना कृत्रिम एवं व्यर्थ है।

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत हमारे आलोच्य साधकों–संतों ने निम्न वर्ग के धार्मिक अधिकारों की रक्षा की।

पंचम अध्याय के अन्तर्गत इन्होंने तद्युगीन ऊंच–नीच के विषमता युक्त वातावरण में समानता का संदेश प्रेषित करके इस असमानता की खाई को पाटने का प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति रखते हुए इन्हें अपने गले

से लगाया तथा उनके उद्वार का शंखनाद करके (श्रम) की महत्ता का निरूपण करते हुए निम्न वर्ग में सुप्त आत्मगौरव, आत्म–विश्वास को जगाया। उन्होंने निम्न वर्ग एवं उसके कार्य को ब्रह्म एवं उसके कार्य के समान सिद्ध करके श्रम को पूज्य बना दिया। ऐसा करके उन्होंने निम्न वर्ग को समाज व्यवस्था का वास्तविक संचालक घोषित किया तथा परजीवी वर्ग को आडे हाथों लिया।

7.3 सिद्ध-नाथ एवं संत-साहित्य की प्रगतिशीलता

निर्गुण काव्य धारा प्रगतिशील है। सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी–संतों ने भी अपने–अपने युग में अपनी इसी प्रगतिशील विचारधारा को अपनाते हुए, युग को दिशा निर्देश प्रदान किया।

प्रबंध के 'सिद्ध–नाथ और संतों का सामाजिक चिन्तन' एवं 'सिद्ध नाथ और संतों का धार्मिक चिन्तन' शीर्षक अध्यायों में हमारे आलोच्य संतो– साधकों के प्रगतिशील विचारों को निरूपित किया है।

हमारे आलोच्य साधकों–संतों ने अपने प्रगतिशील व्यक्तित्व के कारण ही समाज व धर्म में गहरे तक जड़ें जमा चुकी रूढ़ियों, आडम्बरों का कड़ा विरोध किया है।

धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक त्रिकोण में भटकती तद्युगीन जनता को संतो–साधकों ने सन्मार्ग दिखाया। उन्होंने तिरस्कृत व हेय समझे जाने वाले सामान्य जन को अपना कंठ हार बना करके निम्न वर्ग के मन में निहित हीनता की ग्रंथि को तोड़ा। उनमें आत्मविश्वास को जगाया।

हमोर आलोच्य संतों ने तद्युगीन सामाजिक, धार्मिक अधिकारों की पुरजोर पैरवी की। उन्होंने अत्याचारी, शोषक वर्ग (धर्म–नियंता, ऊँची जातियों) को आड़े हाथों लिया। हमारे साधकों–संतों ने अपार साहस का परिचय देते हुए सामाजिक चौराहे पर खडे हो कर, जातिवादियों, सम्प्रदायवादियों व रूढ़िवादियों को ललकारा। इस आक्रामकता के जरिये इन्होंने तद्युगीन जन्मना ब्राह्मणों–मुल्ला–काजी को उनके घर में घुस कर उनके पंथ की कमिया बताई तथा उनके ज्ञान को व्यर्थ सिद्ध करके उन्हें मानवतावादी सर्वहितकारी मत से अवगत करवाया।

इन्होंने निम्न वर्ग, नारी के सामाजिक, धार्मिक हितों की रक्षा हेतु क्रांति का आह्वान किया। ये मानवतावादी विचारों से प्रभावित थे। अतः उन्होंने धर्म के निर्मल स्वरूप को प्रतिष्ठित करने के साथ ही समाज में सत्य, अहिंसा, दया, धर्म आदि सामाजिक जीवन–मूल्यों को स्थापित किया। ऐसा करके इन्होंने समाज को कल्याण–मार्ग दिखा कर सम्पूर्ण मानवता को धन्य किया। अपनी प्रगतिशील प्रवृत्ति के कारण ही संत साहित्य आज भी प्रासंगिक है।

7.4 सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी-संतों का नारी-विषयक दृष्टिकोण

सिद्ध–नाथ और हिन्दी–संतों का धार्मिक चिंतन व सिद्ध–नाथ और हिन्दी–संतों का सामाजिक चिन्तन अध्याय में सिद्ध–नाथ एवं संतों के नारी विषयक दृष्टिकोण को विस्तार से वर्णित किया है।

हमारे आलोच्य संतों ने नारी के प्रति दोहरी विचारधारा को अपनाया है। एक ओर वे नारी के मायिक, भोग्य स्वरूप की निन्दा करते हैं वहीं दूसरी ओर उसके माता, पतिव्रता, सती स्वरूप के समक्ष नतमस्तक हुए हैं।

युगों से प्रताड़ित नारी को सिद्धों ने अपनी साधना में साधिका पद प्रदान करके उसे गौरवान्वित किया तथा उसके लिए भक्ति के द्वारा खोले। नाथों ने नारी के मायिक, भोग्य स्वरूप की अवहेलना की; किन्तु नाथ–पंथ में भगवती देवी को आई पंथ की प्रवर्तिका बताया है तथा आदि शक्ति अवतार आवड़माता ने नाथ पंथ में दीक्षा ग्रहण कर कानों में मुद्रा धारण किये तथा वर्तमान में आई नाथ के नाम से पूजनीया है। उक्त प्रसंगों द्वारा नाथ पंथ नारी को भक्ति में स्थान प्रदान करके नारी के प्रति अपने उदात्त भावों का परिचय देता है। सिद्ध–नाथों की परम्परा का निर्वाह हिन्दी संतों ने किया है। उन्होंने नारी के मायिक व भोग्य स्वरूप का विरोध किया है, किन्तु उसके पतिव्रता, माता, सती रूप की मुक्त कंठ से प्रशंसा करके उसे वन्दनीय बना दिया है। संतों ने स्वयं राम की बहुरिया बनने की अभिलाषा द्वारा नारी के श्रेष्ठ भक्त होने की पुष्टि है।

हमारे आलोच्य साधकों संतों ने नारी को मानवीय सहृदयता के साथ अपनाते हुए उसे समाज में सम्मान की अधिकारिणी घोषित किया है।

7.5 सिद्ध-नाथ एवं हिन्दी-संत और श्रम की महत्ता

हमारे आलोच्य साधकों ने श्रम की महत्ता को स्वीकार किया है। इन सभी ने उपदेश देने, भक्ति में लीन रह कर स्वयं श्रम से पलायन का मार्ग नहीं चुना; वरन् समाज के पथ निर्माता के दायित्व के निर्वहन के साथ–साथ अपने पैतृक अथवा स्वेच्छा से चुने उद्यम को जीवन पर्यन्त अपनाते हुए उद्यम में आनन्द का संदेश प्रेषित किया है।

संतों–साधकों ने श्रम जीवी वर्ग को सच्चा मनुष्य घोषित किया है; क्योंकि जो अत्याचार युक्त वातवरण में श्रम निष्ठ हो अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह कर पथ–भ्रष्ट नहीं हुआ वहीं सच्चा मानव है।

तद्युगीन समाज में सर्वाधिक श्रम निम्न वर्गीय जनता ही करती थी और उनके खून–पसीने की कमाई का उपभोग (परजीवी वर्ग) उच्च वर्ग अपने वैभव विलास पर करता था। इस विषमता ने श्रम–साधकों के मन में हीनता की भावना को बढ़ाया। युग प्रवर्तकों ने व्यर्थ के प्रपंचों, स्वार्थों, लोभ प्रवृत्ति से परे रह करके अपने कार्यों के माध्यम से समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने वाले श्रमजीवी वर्ग को समाज का वास्तविक

कर्णधार घोषित किया। उन्होंने श्रमजीवी वर्ग व उसके कार्य को ब्रह्म व उसके कार्य के समकक्ष खड़ा करके श्रम की महत्ता का निरूपण किया।

समाज में कड़ी मेहनत करने पर भी दो वक्त की रोटी के लिए तरसते, घोर अपमान, अत्याचार को सहने वाले श्रम जीवी वर्ग की सामाजिक उपयोगिता का भान कराते हुए संतो–साधकों ने श्रम जीवी वर्ग में सुप्त आत्म–गौरव एवं आत्म–विश्वास को जगाया। इन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि श्रम करने वाला निम्न नहीं होता वरन् श्रम करना तो ईश्वर की सेवा के समान महान् कार्य है।

7.6 श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा

सिद्ध–नाथ एवं संतों का लक्ष्य स्वस्थ समाज व्यवस्था का निर्माण करना था। वे धरती को वैकुण्ठ बनाने की अभिलाषा रखते थे। उन्होंने तद्युगीन विषमता एवं आतंक में दम तोड़ती मानवता को सामाजिक मानवीय मूल्यों की संजीवनी प्रदान की।

इन्होंने सत्य, अहिंसा, दया, दान, शील, बंधुत्व, प्रेम, श्रमशीलता का उपदेश समाज को प्रदान करके उनके लिए मुक्ति के कल्याणकारी पटों को खोला। इनके माध्यम से युग प्रवर्तक सिद्ध–नाथ एवं संतों ने समाज के सार्वजनिक जीवन को पावन बना दिया।

7.7 आदर्श मानव की प्रतिष्ठा

सिद्ध–नाथ एवं संतों ने तद्युगीन प्रचलित उच्चता एवं हीनता के मापदण्ड को अस्वीकार किया। उन्होंने इसके लिए अभिनव मापदण्ड बनाया जिसका आधार था चरित्र और आचार। उन्होंने खुले तौर पर कहा कि श्रेष्ठ मानव वहीं है, जो उच्च आदर्शों को आत्मसात् करके सद्चरित्रता का निर्वाह करता है। आदर्श मानव वही है, जो उदार, सहिष्णु, सत्यनिष्ठ, सम दृष्टि, बंधुत्व, सदाचार व प्रेम और सौहार्द की अभिवृद्धि करता है।

इस प्रकार सिद्ध–नाथों की परिपाटी का अनुसरण करते हुए संतों ने अपनी अनुभूति को व्यक्त किया। संतों का अभिव्यक्ति पक्ष भी सिद्ध नाथों से प्रभावित रहा।

प्रबंध के षष्ठ अध्याय में सिद्ध–नाथ और संतों के शिल्प–विधान को निरूपित किया है? इसमें सर्वप्रथम सिद्ध–नाथों एवं संतों के भाषिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत विविध भाषाओं के शब्द–प्रयोग, काव्य–गुण (माधुर्य, ओज, प्रसाद), शब्द–शक्तियाँ, लोकोक्ति–मुहावरें एवं विशिष्टार्थी शब्द प्रयोग आदि पर विचार किया गया है।

सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी–संतों के काव्य–रूप की चर्चा करते हुए काव्य का अर्थ, काव्य रूप की सारणी प्रस्तुत की है। सिद्ध–नाथ एवं संतों ने मुख्य रूप से मुक्तक काव्य को अपनाया है। अतः सर्वप्रथम मुक्तक शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा तथा मुक्तक काव्य की पूर्व परम्परा का निरूपण किया है। सिद्ध–नाथ एवं संतों के मुक्तक काव्य को

पाठ्य मुक्तक (आध्यात्मिक विषयक मुक्तक, समाज कल्याण विषयक मुक्तक) तथा गेय मुक्तक के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

सिद्ध–नाथ एवं हिन्दी संतों के प्रतीक विधान के अन्तर्गत प्रतीक का अर्थ एवं परिभाषा तथा प्रतीक परम्परा का सामान्य परिचय देते हुए सामाजिक प्रतीक (सम्बंध विषयक, व्यवसाय विषयक, रीति–रिवाज विषयक), प्राकृतिक प्रतीक, साधनात्मक प्रतीक एवं पारिभाषिक प्रतीकों को विवेचित किया है। जिससे सिद्ध–नाथों की प्रतीक परम्परा का प्रभाव संतों पर स्पष्ट नजर आया है।

सिद्ध–नाथ एंव हिन्दी संतों के अलंकार विधान के अन्तर्गत सर्वप्रथम अलंकार शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ परिभाषा तथा वर्गीकरण प्रस्तुत किया हैं। इसके उपरांत सिद्ध–नाथों के साहित्य में प्रयुक्त अलंकारों का वर्णन करके उन्हें संत साहित्य में तलाशने का प्रयास किया है।

सिद्ध–नाथ एवं संतों के छन्द विधान के अन्तर्गत छन्द शब्द का अभिप्राय, उद्देश्य, भेद बताये गये हैं। सिद्ध–नाथ साहित्य में प्रयुक्त छन्दों का उदाहरण सहित वर्णन किया है और उन छन्दों को संत साहित्य में खोजा गया है। षष्ठ अध्याय में स्पष्ट होता है कि सिद्ध–नाथों के शिल्प विधान को संतों ने आत्मसात् किया तथा उसमें अपनी मौलिकता के रंगों को मिलाया।

मेरा प्रयास रहा है कि 'सिद्ध–नाथ एवं प्रमुख हिन्दी संत' विषयक शोध–प्रबंध के माध्यम से सिद्ध–नाथों की वाणी के विविध पक्षों का उद्घाटन तो हो ही, साथ ही लोक जीवन से बहुत गहराई में जुड़े होने के कारण उनकी वाणी को किस प्रकार संतों ने आत्मसात् किया तथा उनकी विचार परम्परा को अमर बनाया, इसे भी जाना जा सके।

सिद्ध–नाथों के दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक कल्याणमयी एवं मंगलकारी विचारधाराओं को हिन्दी संतों ने विरासत रूप में अपनाया। हिन्दी संतों की उदात्त विचारधारा को सिद्ध–नाथों की विचारधारा ने ही ठोस आधार प्रदान किया है। इस प्रकार सिद्ध–नाथों ने तद्युगीन रूढ़ समाज व धर्म में व्याप्त कुरीतियों, कुप्रथाओं तथा कुव्यवस्थाओं के विरुद्ध जो क्रांति की मशाल प्रज्वलित की थी, उसे उनकी आगमी पीढ़ी के संतों ने न केवल प्रज्वलित किये रखा; वरन् उस क्रांति की मशाल से संसार में व्याप्त अत्याचार, कुप्रथाओं, रूढ़ियों, कुरीतियों की कालिमा को अपनी वाणी से आलोक प्रदान किया। संतों ने सिद्ध–नाथों की अनुभूतियों को ही नहीं; वरन् उनकी अभिव्यक्ति–परम्परा को भी आत्मसात् किया है। ऐसा करके हिन्दी संतों ने अपने पूर्ववर्ती सिद्ध–नाथों की विचार परम्परा को पुष्पित, पल्लवित एवं फलित किया।

हिन्दी संतों ने सिद्ध–नाथों की विचार–परम्परा को आत्मसात् आवश्यक किया है, किन्तु तद्युगीन परिवेश, परिस्थितियों के अनुरूप संतों ने मौलिक चिन्तन को भी प्रश्रय प्रदान किया है। इस प्रकार सिद्ध–नाथों की विचारधारा का संतों ने अंधानुकरण नहीं किया है, वरन् उन्होंने सिद्ध नाथों की लोक कल्याणकारी विचारधारा से प्रभाव ग्रहण कर उसमें अपनी मौलिक भावनाओं, विचारों के रंगों को समाहित करके साहित्याकाश में छाये लोकमंगल के सुरचाप के रंगों को अधिक चटक बना दिया है।

इन युग प्रवर्तकों ने अपनी तर्क पूर्ण वाणी द्वारा जनता का आत्मपरिष्कार करके उनके सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक अधिकारों की पैरवी की है। इनके विचार सर्वकालिक है। वर्तमान में उपस्थित अन्तर्विरोधों एवं समस्याओं के निराकरण हेतु इनके विचार अधिक ग्राह्य एवं अनुकरणीय होंगे।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

मूल ग्रंथ

1. ऋग्वेद
2. यजुर्वेद
3. सामवेद
4. तैतिरीय उपनिषद्
5. छन्दोग्य उपनिषद्
6. श्वेताश्वेतर उपनिषद
7. कठोपनिषद्
8. धम्मपद,
9. मनुस्मृति
10. भगवत गीता
11. महाभारत
12. स्मृति रत्नाकर
13. थेरी गाथा – भिक्षु उत्तमा द्वारा प्रकाशित, 1937
14. उदान–भिक्षु जगदीश कश्यप, महबोधित सभा सारनाथ, 1941
15. दोहा कोश– सरहपाद–सं.– राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशक–बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना, प्रथम संस्करण– 1957
16. दोहाकोष– प्रबोध चन्द बागची
17. चर्यागीति–सुकुमार सेन, ईस्टर्न पब्लिशिंग कलकत्ता, 1966 तृतीय संस्करण
18. चर्यागीति कोष – प्रबोध चन्द बागची, विश्व भारती शांति निकेतन, बुद्वाब्द 2500
19. गोरखबानी – पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग सं.–2003
20. गोरखबानी (सबदी)–टीकाकार–शार्दूल सिंह कविया, नाथ कुंज आश्रम, प्रथम संस्करण, 2000
21. नाथ सिद्धों की बानियाँ– हजारी प्रसाद द्विवेदी, नागरी प्रचारिणी काशी, संवत्–2014.
22. योग बीज – टीकाकार– रामलाल श्रीवास्तव, श्री गोरखनाथ मंदिर गोरखपुर, प्रथम संस्करण सं. –2042
23. गोरक्ष पद्धति – गोरखनाथ
24. बौद्ध गान ओ दोहा– हर प्रसाद शास्त्री, बंगीय साहित्य परिषद 1358 (बंगाब्द) कलकत्ता।
25. सिद्ध–नाथ संहिता विवेक सागर भाग–1–संग्रहकर्ता–विवेक नाथ, योगेश्वरमठ इन्दुबारी बाहर बीकानेर प्रथम संस्करण, संवत् 2021.
26. योगी सम्प्रदाय नित्यकर्म संचय–भभूल नाथ
27. कौल ज्ञान निर्णय–मत्स्येन्द्र नाथ

28. प्राण साकली–गोरखनाथ
29. कबीर ग्रंथावली–सं श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छठा संस्करण सं. 2013.
30. कबीर वचनामृत–परसनाथ तिवारी, हिन्दी परिषद प्रयाग विश्व विद्यालय द्वारा, 1969ई.
31. कबीर वाणी ज्ञानामृत– सं प्रियदर्शी राजीव, मधु सूदन, मनोज पाकेट बुक्स दिल्ली, प्रथम संस्करण
32. कबीर साखीसार – तारक नाथ बाली
33. कबरी वाड़.मय–खण्ड–1 2–सबद –डॉ. जयसिंह, डॉ. वासु देव सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी, संस्करण–1998
34. कबीर वाड़.मय–खण्ड–1 रमैणी– जयदेव, डॉ. वासुदेव सिंह, विश्व विद्यालय प्रकाशन वाराणसी, सं.–1993.
35. आदि गुरू ग्रंथ साहिब– शिरोमणि गुरू कमेटी अमृत सर 1951 ई.
36. संत बाणी संग्रह– भाग–1 बेलवेडियर प्रेस प्रयाग
37. श्री दादू वाणी– नारायण दास, दादूदयाल महासभा, पंचम संस्करण
38. दादू वाणी भाग–2 – वेलवीडियर प्रिन्टिंग वर्क्स इलाहाबाद
39. श्री दादू दयाल की वाणी–परशुराम चतुर्वेदी, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, 1941
40. दादू दयाल ग्रंथावली –परशुराम चतुर्वेदी, नागरी, प्रचारिणी सभा काशी, प्र. 2033 वि.
41. दादू वाणी– मंगल दास प्रकाशक, वैद्य जय राम दास स्वामी भिषागाचार्य जयपुर संस्करण, 1951
42. दादू वाणी–चन्द्रिका प्रसाद –वैदिक मंत्रालय अजमेर, सन् 1907.
43. नानक वाणी– अनुवादक–जयराम मिश्र, मित्र प्रकाशन इलाहबाद, संवत–2018
44. रविदास दर्शन–सं. पृथ्वी सिंह आजाद श्री गुरू रविदास संस्थान चंड़िगढ़–1973
45. संत सुधा सार–वियोगी हरि, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन–1953 ई.
46. कबीर ग्रंथावली–परसनाथ तिवारी, हिन्दी परिषद प्रयाग विश्व विद्यालय प्रयाग प्रथम संस्करण–1961 ई.
47. संत रैदास– योगेन्द्र सिंह, आर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड–1972 ई.
48. यारी साहिब की रत्नावली–वेलवेयिर प्रेस प्रयाग
49. हिन्दी काव्य धारा–राहुल जी, किताब महल इलाहबाद 1947 प्रथम संस्करण।
50. रैदास की वाणी–वेलवेडियर प्रेस प्रयाग
51. रामनंद की रचनाएं – पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी– 2012 वि.सं.
52. नाथ–योग– अक्षय कुमार वनर्जी, दिग्विजय ट्रस्ट गोरखपुर मंदिर गोरखपुर, 1986
53. संत रैदास–सं संत रैदास संगम लाल पाण्डेय, साहित्यवाणी गोसाई टोला

इलाहाबाद–प्रथम संस्करण–1970.

आलोचनात्मक ग्रंथ –

1. *सामान्य भाषा विज्ञान–डॉ. बाबू राम सक्सेना*
2. *सिद्ध साहित्य– धर्म वीर भारती, किताब महल इलाहाबाद, 1968*
3. *नाथ सम्प्रदाय और साहित्य– वेद प्रकाश जुनेजा, गोरख मंदिर गोरखपुर, संवत् 2042*
4. *साहित्य और समीक्षा–बाबू गुलाब राय, आत्माराम एण्ड सन्स कशमीरी गेट दिल्ली–6, 1956.*
5. *कबीर की विचारधारा डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य निकेतन कानपुर, सवत् 2008*
6. *संत काव्य में विद्रोह का स्वरूप – किरण कुमारी नंदास, नचिकेता प्रकाशन–1981*
8. *अलंकार परिजात–स्वामी, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक हॉस्पिटल रोड आगरा।*
9. *वृहत साहित्यिक निबंध–रामसागर त्रिपाठी, शांति स्वरूप, अशोक प्रकाशन नई सड़क, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1967.*
10. *कबीर–हजारी प्रसाद द्विवेदी, राज कमल प्रकाशन दिल्ली–1976*
11. *रस मीमांसा–आचार्य राम चन्द्र शुक्ल*
12. *रीति कालीन अलंकार साहित्य का शास्त्रीय विवेचन–ओम प्रकाश शर्मा*
13. *वाड़मय विमर्श–विश्वनाथ प्रसाद*
14. *हिन्दी साहित्य का छन्दों विधान–डॉ. गौरी शंकर मिश्र 'द्विजेन्द्र', बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी पटना–3*
15. *मध्ययुगीन संत साहित्य–डॉ. राम खेलावन पाण्डेय, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी– संस्करण–1965.*
16. *संत साहित्य में प्रतीक विधान–अहसन, भारत प्रकाशन मंदिर अलीगढ़ प्रथम संस्करण–1983*
17. *चितांमणि भाग–2– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य सरोवर, आगरा*
18. *सहज सिद्ध, साधना एवं सर्जना, रणजीत कुमार साहा, वाणी प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण–1980*
19. *साहित्येतिहास– सुमनराजे, ग्रंथम राम बाग कानपुर, प्रथम संस्करण–1976*
20. *उलटबांसी साहित्य– रमेश चन्द्र मिश्र, आर्य बुक डिपो, दिल्ली।*
21. *संत सहित्य – डॉ. प्रेम नारायण शुक्ल, ग्रंथम राम बाग, कानपुर, 1965 ई.*
22. *नाथ सम्प्रदाय–हजारी प्रसाद द्विवेदी, नवैध निकतन वाराणसी–5, संस्करण द्वितीय–1999*
23. *गोरखनाथ और उनकी परम्परा का साहित्य– डॉ. दिवाकर पाण्डेय, शोध संस्थान गोरखनाथ मन्दिर गोरखपुर–1980*
24. *नाथ और संत साहित्य (तुलनात्मक अध्ययन)– डॉ. नागेन्द्र नाथ उपाध्याय काशी*

हिन्दू विश्व विद्यालय प्रकाशन।
25. गोरख सि.स.–सं. गोपी नाथ कविराज गवर्नमेन्ट संस्कृत लाइब्रेरी बनारस 1925 सरस्वती भवन टेक्स्ट्स न 18 पार्ट प्रथम
26. नाथ सम्प्रदाय का इतिहास,दर्शन और साधना प्रणली–कल्याणी मल्लिक
27. सिरे मन्दिर जालोर–डॉ. भगवती लाल शर्मा
28. गोरक्ष नाथ–डॉ. नागेन्द्र मणि उपाध्याय, नागरी प्रचारिणी सभा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी–सरकरण–2033 वि.सं.
29. मंत्रयान, तंत्रयान–वज्रयान और सिद्ध–राहुल सांकृत्यायन–गंगापुरातत्त्वांक 1927
30. भारतीय संस्कृति और साधना–गोपीनाथ कविराज, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद–पटना, तृतीय संस्करण–1996
31. प्राचीन हिन्दी काव्य–रामरतन भटनागर
32. उत्तरी भारत की संत परम्परा–परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार प्रयाग–संवत् 2008
33. महाराष्ट्र के नाथपंथी कवियों का हिन्दी काव्य– डॉ. अशोक प्रभाकर
34. गोरखनाथ और उनका युग–रांगेय राघव, आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, 1963
35. नाथ सम्प्रदाय उदय ओर विस्तार– डॉ. प्रहलाद नारहर जोशी, राजीव प्रकाशन, 1977
36. हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि– गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य निकेतन कानपुर–प्रथम संस्करण–1961
37. गोरक्षनाथ–नागेन्द्र नाथ उपाध्याय, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, 2033 वि.सं.
38. शैवमत–यदुवंशी, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद पटना, 1955
39. भारतीय दर्शन–बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर वाराणसी, 1957
40. सहज साधना–हजारी प्रसाद द्विवेदी, म.प्र. शासन साहित्य परिषद् भोपाल
41. निर्गुण साहित्यः सांस्कृतिक पृष्ठभूमि–मोती सिंह, नागरी प्रचारिणी सभा काशी प्रथम संस्करण–वि.सं. 2019
42. बौद्ध कापालिक साधना और सहित्य –नागेन्द्र नाथ उपाध्याय
43. हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा–राम अवध बिहारी, भारतीय भण्डार इलाहाबाद, 1963
45. सिद्धों की संधा भाषा–डॉ. मंगल बिहारी शरण सिन्हा, बिहारी हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1973
46. बौद्ध दर्शन मीमांसा–बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर वाराणसी, 1957
47. पुरातत्त्व निबंधावली–राहुल सांकृतयायन, किताब महल इलाहाबाद, 1957
48. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन–भरत सिंह उपाध्याय, प्र.–बंगाल हिन्दी मण्डल 8 रॉयल एक्सचेंज प्लेस कलकत्ता, प्रथम संस्करण 2011
49. विश्व धर्म दर्शन–साँवलिया बिहारी लाल, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद पटना, 1953
50. भारतीय दर्शन–नन्द किशोर देवराज

51. छायावाद और वैदिक दर्शन–डॉ. प्रेम प्रकाश रस्तोगी, आदर्श साहित्य प्रकाशन दिल्ली संस्करण–1971
52. शंकर अद्वैत वेदांत का निर्गुण काव्य पर प्रभाव–शांति स्वरूप त्रिपाठी, रणजीत प्रिंटर्स, एण्ड पब्लिशर्स नई दिल्ली–1968.
53. भारतीय दर्शन–सतीश चन्द चट्टोपाध्याय, धीरेन्द्र मोहन दत्त
54. भारतीय दर्शन–डॉ. आर.पी. शर्मा
55. भागवत सम्प्रदाय– बलदेव उपाध्याय, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, 2010 वि.संवत्
56. भक्ति का विकास– मुंशीराम शर्मा, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 1958
57. मध्यकालीन भक्त कवियों की ब्रह्म परिकल्पना– प्रेम सागर
58. निर्गुण काव्य पर सूफी प्रभाव–डॉ. रामपति राय शर्मा, पुस्तक संस्थान, कानपुर संस्करण, 1977
59. संत काव्य का दार्शनिक विश्लेषण– मनमोहन सहगल
60. संत रविदास विचारक और कवि–डॉ. पदम गुरवचन सिंह, नव चिंतन प्रकाशक जालन्धर, प्रथम संस्करण–1977
61. व्यास बुद्ध और हिन्दी संत– डॉ. राधेश्याम जांगिड़, चिन्मय प्रकाशन, जयपुर प्रथम संस्करण–2000
62. भारतीय दर्शन–डॉ. राधाकृष्णन, राजपाल एण्ड सन्ज दिल्ली–1966 ई.
63. भक्ति कालीन हिन्दी साहित्य में योग भवना–डॉ. शिव शंकर शर्मा
64. कबीर : व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धांत–सरनाम सिंह शर्मा, भारतीय शोध संस्थान गुलाबपुरा राज0, 1969
65. कबीर जीवन और दर्शन–उर्वशी सूरती
66. संत रविदास– इन्द्रराज सिंह, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, द्वितीय संस्करण, 1999.
67. मध्ययुगीन निर्गुण चेतना–डॉ. धर्मपाल मैनी, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद–1972
68. दादू दयाल–राम बक्ष
69. हिन्दी काव्य मे नारी–वल्लभ दास तिवारी, जवाहर पुस्तकालय मथुरा, प्रथम संस्करण–1974
70. श्री करणी कथामृत–शार्दुल सिंह कविया, प्रकाशक–एम.सी. खण्डेलवाल एण्ड सन्स बी–210, जनता कॉलोनी, जयपुर, संस्करण–छठा।
71. भक्ति कालीन काव्य में नारी डॉ. गजानंद शर्मा जीतमल्होत्रा रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972
72. कबीर साहित्य की परख–परशुराम चतुर्वेदी, भारतीय भण्डार लीडर प्रेस प्रयाग, 2011
73. संत कवि दादू और उनका पंथ–डॉ. वासुदेव शर्मा, शोध प्रबंध प्रकाशन दिल्ली, 1969
74. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि–डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना
75. संत साहित्य ओर साधना–डॉ. भुवनेश्वर मिश्र 'माधव', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली–1996

इतिहास ग्रंथ

1. *हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास– रामकुमार वर्मा, राम नारायण लाल, प्रयाग,1948*
2. *हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रथवाली भाग–3,5 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी*
3. *हिन्दी साहित्य का उद्भव काल– डॉ. वासुदेव सिंह*
4. *प्राचीन व मध्यकालीन भारत का सांस्कृतिक व राजनीतिक इतिहास–अग्रवाल व सेठी सुल्तानचंद एण्ड सन्स दरियागंज, नई दिल्ली सातवों संस्करण–1990*
5. *प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति–के.सी.श्रीवास्तव यूनाईटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2000–2001*
6. *संस्कृति के चार अध्याय–रामधारी सिंह दिनकर, लोक भारती प्रकाशन इलाहबाद, 1999*
7. *प्राचीन भारत का इतिहास (प्रारम्भ से 78 ई.)–*
8. *भारत का इतिहास और संस्कृति (प्रथम भाग)–डॉ. राजशेखर व्यास, माया प्रकाशन मन्दिर जयपुर, चतुर्थ संस्करण 2001*
9. *भारत का इतिहास– रोमिला थापर, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, सोलहवी आवृत्ति, 2001*
10. *अद्भुत भारत– ए.एल. बाशम, शिवलाल अग्रवाल आगर, संस्करण*
11. *मध्यकालीन भारत (प्रथम भाग)– बी.के. शर्मा यूनिवर्सिटी बुक डिपो मेरठ, द्वितीय–संस्करण–1961*
12. *मध्यकालीन भारत–हरिशंकर शर्मा, पंचशील प्रकाशन जयपुर, पाँचवा संस्करण–1981*
13. *भारत का इतिहास–कामेश्वर प्रसाद, भारतीय भवन पटना*
14. *भारत की संस्कृति और कला– राधा कृष्ण मुखर्जी*
15. *भारतीय समाज व्यवस्था–डॉ. एम.एम. लवानिया, शाशि के. जैन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।*

पत्र-पत्रिकाएँ/कोश

1. *हिन्दी साहित्य कोश भाग–1– ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी तृतीय संस्करण–1925*
2. *हिन्दी सहित्य कोश–सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा*
3. *प्रमाणित हिन्दी कोष–सं. राम चन्द्र शर्मा*
4. *कबीर शब्दावली भाग–2 वेलवडियर प्रेस प्रयाग*
5. *नालन्दा विशाल शब्द सागर– श्री नवल जी, न्यू इम्पीरियल बुक डिपो–नई दिल्ली।*
6. *हलायुध कोश–सं. जयशंकर जोशी, ब्यूरो सूचना विभाग लखनऊ*
8. *श्री दादू चतुःशताब्दी निबंधमाला, शताब्दी समिति, जयपुर।*
9. *कल्याण योग तत्त्वांक– संख्या–1, वि.सं. 2048, गोरखपुर*
10. *कल्याण पत्रिका–मई 2000 ई. संख्या–5, गोरखपुर*
11. *धर्म शास्त्रांक (कल्याण)– जनवरी 1996 संख्या 1 गोरखपुर*
12. *कल्याण भवित्त अंक–सं. 2052, गोरखपुर*

डॉ. प्रमिला झीबा

प्रवक्ता : हिन्दी

वनस्थली विद्यापीठ

शिक्षा : एम.ए. हिन्दी

राजस्थान विश्वविद्यालय

एम. फिल

पी.एच.डी.

बी.एड.

Price : 600/-

ISBN : 978-81-8268-120-0